Published by
K. Mittra,
at The Indian Press, Ltd.,
Allahabad.

Printed by
A. Bose,
at The Indian Press, Ltd.,
Benares-Branch.

भूमिका

हिन्दी-साहित्य में सतसई-साहित्य का विशेष महत्त्व है। 'सतसई' शब्द संस्कृत शब्द 'सप्तशती' से बना है। संस्कृत में गोवर्धनाचार्य की आर्यासप्तशती और प्राकृत में सातवाहन की 'गाथा सप्तशती' प्रसिद्ध हैं। इन दोनों मे गाथा-सप्तशती प्राचीन है। 'दुर्गासप्तशती' भी एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इन्हीं ग्रन्थो के अनुकरण पर हिन्दी में सतसई लिखना आरम्भ हुआ। हिन्दी-साहित्य में तुलसी, रहीम, बिहारी, रसनिधि, मतिराम, वृन्द, विक्रम और रामसहाय आदि ने सतसई साहित्य की सेवा की है। सतसई में प्रत्येक दोहा अपने आपमें पूर्ण होता है, दो ही पंक्तियो में भाव पूर्ण हो जाता है। दोहों का परस्पर सम्बन्ध नहीं होता। अतएव दोहों का क्रम आगे-पीछे कर देने से कोई अन्तर नहीं पडता। भाव-चमत्कार में ही दोहे का प्राण है। रहीम ने कहा :—

दीरघ दोहा अर्थ के, आखर थोरे आहिं।
ज्यो रहीम नट कुण्डली, सिमिटि कूद चढ़ि जाहिं॥

किसी और कवि ने भी कहा है (कुछ लोग इसे बिहारी-कृत कहते हैं):—

सतसईया के दोहरा, ज्यों नावक के तीर।
देखत में छोटे लगे, घाव करें गम्भीर॥

एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (Encyclopædia Brittanica) में लिखा है :—

"विवरणात्मक तथा अन्य सरल शैलियों को छोडकर काव्य-कला में सतसई शायद सर्वश्रेष्ठ रचना है प्रत्येक दोहा स्वतन्त्र और अपने

आपमें पूर्ण है तथा भाषा-संहृति, वर्णन-प्रौढ़ता और अलंकार-चातुर्य में कौशल की विजय है।"*

उपरोक्त सतसईकारों में तुलसी, रहीम, बिहारी, मतिराम और वृन्द के नाम प्रसिद्ध हैं। रहीम की सतसई पूर्णरूप में अभी उपलब्ध नहीं हुई। लगभग ३०० दोहे मिलते हैं। रहीम के कविता-कौशल का अनुमान लगाने के लिए ये दोहे पर्याप्त हैं। सम्भव है भविष्य में कभी पूर्ण सतसई मिल जाय। मतिराम-सतसई भी पहले नहीं मिलती थी। कुछ ही वर्ष हुए हैं कि मतिराम-सतसई प्रकाशित हुई है। बड़ी कठिनाई से दो-चार हस्त-लिखित ग्रन्थ मिले हैं। इनकी सहायता से इस सतसई का प्रकाशन हो सका है। तुलसी-सतसई में कई दोहे सरल हैं, और कई गूढ़ भावों से भरे हैं और कुछ 'कूट' दोहे हैं। रहीम और वृन्द की सतसइयों में प्रधानतः नीति का उपदेश है। बिहारी तथा अन्य सतसईकारों ने प्रधानतया शृंगार-रस से ओत-प्रोत भावों का वर्णन किया है। दोहे का साथ बिहारी का नाम ही, कई कहते हैं, यह सूचित करता है कि इस दोहे का भाव शृंगार-रस पूर्ण होगा। कई सज्जन इस कारण बिहारी-सतसई को पाठ्य-क्रम में नियत नहीं करना चाहते। पंजाब-विश्वविद्यालय में पहले कई वर्षों से 'बिहारी सतसई' (पूर्ण) और स्वर्गीय श्री पद्मसिंह की बिहारी-सतसई पर वृहत् समालोचना पाठ्य-क्रम में नियत रही हैं। कुछ वर्ष हुए, बिहारी-सतसई के बदले 'संक्षिप्त-बिहारी'(इंडियन प्रेस, प्रयाग) नियत की गई थी। परन्तु उसमें भी कई एक दोहे शृंगार-रस के कारण आपत्तिजनक थे। अतएव वह पुस्तक हटा दी गई। परन्तु बिहारी एक उच्चकोटि का कवि है। उससे क्या परिचय प्राप्त करना

* "The Satsai is perhaps the most celebrated work of poetic art, as distinguished from narrative and simpler styles. Each couplet is independent and complete in itself and is a triumph of skill in comparison of language, felicity of description and rhetorical artifice."

भी अवाञ्छित है ? ऐसी रचना जिस पर तीस से अधिक टीकायें प्रकाशित हो चुकी हो, और अभी भी बिहारी-रत्नाकर मे से लोगों ने रत्नों की खोज बन्द न की हो, साहित्य में क्या आदर-सम्मान का पात्र है वा घृणा का, ग्राह्य है या त्याज्य ! इससे मेरा यह तात्पर्य नहीं कि शृंगार-रसमय दोहो को भी अल्प-वयस्क छात्र और छात्राये पढ़े परन्तु मैं यह चाहता हूँ कि बिहारी के ऐसे दोहे जो शृंगार-रस से रहित हैं उनसे छात्र वंचित न रहे। मैंने इसी लिए बिहारी के ऐसे दोहे चुने हैं जिनमे ऐसी कोई आपत्ति नहीं हो सकती। इस कार्य मे काफ़ी परिश्रम करना पडा है। इसी प्रकार मैने अन्य सतसइयों में से भी कुछ दोहे संग्रह करके इस पुस्तक का विस्तार एक सतसई के बराबर कर दिया है। कुछ दोहे केवल इसलिए ही लिखे हैं कि कवियो की परस्पर भाव-साम्यता दिखाई जा सके। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उस भाव का मूल-लेखक, अथवा उसी भाव मे उत्कृष्ट लेखक कौन है। इस पुस्तक के अध्ययन से पाठकगण बिहारी-सतसई के अतिरिक्त, तुलसी-सतसई, रहीम-सतसई, रसनिधि-सतसई, मतिराम-सतसई, वृन्द-सतसई, विक्रम-सतसई, राम-सतसई और वीर-सतसई से भी परिचित हो जायँगे। इन नव-सतसइयों मे अन्तिम सतसई "वीर-सतसई" आधुनिक रचना है। इसके रचयिता है श्री वियोगी हरि। इन नव-सतसइयो के अध्ययन से पाठकगण यह भली भाँति जान लेंगे कि अमुक कवि में कितनी मौलिकता है, और कितना पर-रचना का अनुकरण। इस प्रकार अध्ययन करने से पाठकगण एक अद्भुत रसास्वादन का आनन्द प्राप्त करेंगे। परन्तु ऐसा आनन्द प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि कवि का जन्म-काल आदि विषयों का ज्ञान हो। अतएव यहाँ संक्षिप्त रूप मे प्रत्येक कवि का परिचय लिख देना उचित है।

१—तुलसीदास—जन्म-सं० १५५४ (?) मृत्यु सं० १६८०।

गोस्वामी तुलसीदास के जन्म के विषय मे एक मत नहीं। पं० रामगुलाम द्विवेदी के कथनानुसार गोसाईं जी का जन्म सं० १५८९ मे हुआ

था। डाक्टर ग्रियर्सन, मान्यवर मिश्रबन्धु आदि कुछ विद्वान् इसी विचार से सहमत हैं। शिवसिंह सेंगर ने अपनी पुस्तक 'शिवसिंह-सरोज' में इनका जन्म सं० १५८३ में माना है। गोस्वामी जी की शिष्य-परम्परा में इनका जन्म सं० १५५४ माना जाता है। बाबू श्यामसुन्दरदासजी तथा कुछ अन्य विद्वान् इससे सहमत हैं। गोस्वामीजी का स्वर्ग-वास सं० १६८० में हुआ था। इस विषय में सब विद्वानों का एक मत है। इनका जन्म राजापुर में हुआ। (जन्म-स्थान के विषय में भी मत-भेद है।) ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे। इनके विषय में प्रसिद्ध है—

"तुलसी परासर गोत दूबे पतिऔजा के"

इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। कहा जाता है कि ये उत्पन्न होते ही रोये नहीं, वरञ्च इन्होंने 'राम' शब्द का उच्चारण किया। इनकी माता ने इन्हें अपनी दासी मुनिया को पालने के लिए दे दिया। वह इन्हें अपनी सास के पास लेकर चली गई। वहाँ ये पाँ वर्ष रहे। इनके जन्म के दो दिन पश्चात् हुलसी का देहान्त हो गया। जो स्त्री इनका पालन-पोषण करती थी, उसे साँप ने डस लिया। वह मर गई। आत्माराम दुबे ने इन्हें कुलक्षणी जानकर इनकी कुछ पर्वाह नहीं की। कुछ समय इसी प्रकार व्यतीत हो गया। इसके अनन्तर नरहरिदासजी ने इन्हें दीक्षा देकर अपना शिष्य बना लिया। उन्होंने इनका नाम तुलसीदास रखा। रामचरितमानस के आरम्भ में "बंदउँ गुरु-पद-कञ्ज कृपासिन्धु नर-रूप-हरि" द्वारा इन्होंने अपने गुरु की वन्दना की है। ये अपने गुरु के साथ भ्रमण करते रहे और समय समय पर रामायण की कथा सुनते रहे। इससे इनके विमल हृदय पर राम-नाम का बीज बोया गया। नरहरिदासजी के साथ ये काशी में आ गये। यहीं इन्होंने महात्मा शेषसनातनजी से वेद, वेदांग, दर्शन, इतिहास, पुराण आदि का अध्ययन किया। लगभग १५ वर्ष के निरन्तर परिश्रम से तुलसीदास विद्या-निपुण हो गये।

विद्या-ग्रहण कर तुलसीदास अपने घर राजापुर पहुँचे। वहाँ इनके परिवार में कोई नहीं बचा था। इनकी विद्या, विनय आदि गुणों से आकर्षित होकर भारद्वाजगोत्री दीनबन्धु ब्राह्मण ने अपनी कन्या इन्हें ब्याह दी। दीनबन्धु यमुना नदी के दूसरे तट पर स्थित तारपिता गाँव का निवासी था। तुलसीदास की स्त्री का नाम रत्नावली था। गोस्वामी जी अपनी स्त्री से अतीव प्रेम करते थे। एक बार रत्नावली अपने भाई के साथ गोस्वामी जी से बिना पूछे अपने पितृ-गृह चली गई। घर पर आकर जब गोस्वामी जी ने देखा कि रत्नावली नहीं है, तो वे तुरन्त समझ गये कि वह अपने पिता के पास चली गई है। घोर वर्षा हो रही थी, ये रुके नहीं, झट वहाँ पहुँचे। रत्नावली इन्हें देखकर लज्जित हो गई। उसने इन्हें बड़ा लज्जित किया। कहा—

लाज न लागत आपु को दौरे आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को कहा कहौ मैं नाथ॥
अस्थि-चर्म-मय देह मम तामें जैसी प्रीति।
तैसी जौ श्रीराम महँ होति न तौ भव भीति॥

तुलसीदास के हृदय पर इन तीक्ष्ण वचनों का गहरा प्रभाव पड़ा। वे संसार से विरक्त हो गये। उन्होंने अपना घर छोड़ दिया। भिन्न-भिन्न तीर्थों की यात्रा आरम्भ कर दी। इन्होंने चारो धाम अर्थात् जगन्नाथपुरी, रामेश्वर, द्वारिका और बदरिकाश्रम की यात्रा की। बदरिकाश्रम से ये कैलास और मानसरोवर गये। इस लम्बी यात्रा में इन्हे १९-२० वर्ष लगे। वहाँ से लौटकर ये चित्रकूट रहने लगे। सं० १६१६ में कवि सूरदास इन्हे यहीं मिले थे और अपना सूरसंग्रह दिखाया था। कहा जाता है कि यहाँ गोस्वामी जी ने गीतावली रामायण और कृष्णगीतावली लिखी। सवत् १६३१ में ये अयोध्या चले गये। वहाँ रामचरितमानस लिखा गया। इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के रचने में इनको दो वर्ष और सात मास लगे।

"दुइ वत्सर सात के मास परे। दिन छब्बिस माँझ सो पूरे करे।
तैतीस के संवत् और मगसर। सुभ द्यौस सुराम विवाहित पर॥
सुठि सत जहाज तयार भयो। भवसागर पार उतारन को॥"

रामायण समाप्त हो जाने पर गोस्वामी जी अधिकतर काशी में ही रहने लगे। इनकी विद्वत्ता और पाण्डित्य की चारो ओर धाक जम गई। अपने समय में ये एक उच्च कोटि के विद्वान् थे। भगवद्भक्ति में भी ये बढ़े-चढ़े थे।

नवाब अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना, महाराज मानसिंह, नाभा जी और मधुसूदन सरस्वती आदि से गोस्वामी जी का अच्छा मित्र-भाव था। रहीम के साथ इनका पत्र-व्यवहार रहता था। कहा जाता है कि उन्हीं के अनुरोध से गोस्वामी जी ने 'बरवै रामायण' रची थी। रहीम को बरवै छन्द से बहुत प्रेम था। इन दोनों के विषय मे एक किंवदन्ती प्रसिद्ध है :—

एक निर्धन ब्राह्मण को अपनी कन्या के विवाह के लिए धन की बड़ी चिन्ता थी। उसने गोस्वामी जी से सहायता माँगी। गोस्वामी जी ने निम्नलिखित पंक्ति लिखकर रहीम के पास उस ब्राह्मण के हाथ भेज दी :—

सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सब चाहत अस होय।

रहीम ने उस ब्राह्मण को बहुत धन देकर विदा किया और गोस्वामी जी को उसी के हाथ दोहे की पूर्त्ति कर भेजी :—

गोद लिये हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय॥

गोस्वामी जी की मृत्यु के विषय में निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है :—

संवत् सोरह सै असी, असी गंग के तीर।
श्रावण कृष्णा तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर॥

बेनीमाधवदास

दूसरे मतानुसार दूसरी पंक्ति में "श्रावण शुक्ला सप्तमी" कही जाती है। परन्तु जाँच करने पर पहला मत ठीक प्रतीत हुआ है। टोडरमल के वंशज अब तक इसी तिथि पर गोस्वामी जी के नाम सीधा देते हैं। टोडरमल गोस्वामी जी के परम मित्र थे। ये काशी में एक बड़े ज़मींदार थे। उनकी मृत्यु पर गोस्वामी जी ने कई दोहे लिखे थे।

गोस्वामी जी ने अपनी सतसई की रचना का काल यों दिया है:—

अहि-रसना थन-धेनु रस गनपति द्विज गुरुवार।
माधव सित सिय जनम तिथि सतसैया अवतार॥

अर्थात् सं० १६४२ के वैशाख मास में सीता की जन्म-तिथि पर सतसई लिखी गई। तुलसी-सतसई मे सात सर्ग हैं। पहले सर्ग मे भक्ति-विषयक दोहे हैं, दूसरे में उपासना, तीसरे में साकेतिक वक्रोक्ति से राम-स्तुति की गई है। चौथे, पाँचवें और छठे सर्ग मे क्रमशः आत्मबोध, कर्म-सिद्धान्त और ज्ञान-सिद्धान्त-विषयक दोहे है। सातवें सर्ग मे राज-नीतिक दोहे हैं।

सतसई के अतिरिक्त इनके १५-१६ ग्रन्थ और भी हैं।

हिन्दी-साहित्य में तुलसीदास का स्थान बड़े गौरव का है। भारतीय जाति का "प्रतिनिधि कवि यदि किसी को कह सकते हैं तो इन्हीं महा-नुभाव को।" भाषा को भावो के अनुकूल बना लेने मे ये सिद्धहस्त थे। भाषा का ऐसा परिमार्जित रूप और किसी कवि में नहीं पाया जाता। सूरदास जैसे उच्च कोटि के कवि के कई वाक्यो मे कई बार शब्द केवल पादपूर्ति के लिए ही रखे हुए प्रतीत होते है। बिहारी के दोहों में भी उन्होंने ब्रजभाषा के साथ उर्दू और फारसी के शब्द भी मिला दिये हैं। ऐसी बात गोस्वामी जी की रचना में नहीं पाई जाती। इनकी रचनाओ में एक भी शब्द निरर्थक नहीं मिलता। इसी लिए गोस्वामी जी की भाषा मे इनकी सर्वांगपूर्णता, काव्य-कुशलता, साहित्य-मर्मज्ञता, भावु-कता, गंभीरता और अलंकारों की सम्यक योजना अपने अपने स्थान

चमक-दमक रही हैं, और गोस्वामी जी का नाम हिन्दी-साहित्य-गगन में देदीप्यमान हो रहा है।

यहाँ गोस्वामी जी के दो तीन दोहे उदाहरण के लिए दिये जाते हैं:—

हरे चरहिं तापहिं बरे फरे पसारहिं हाथ।
तुलसी-स्वारथ-मीत जग परमारथ रघुनाथ॥ (दोहा १४)
स्वामी होनो सहज है दुरलभ होनो दास।
गाडर लाये ऊन को लाग्यो चरन कपास॥ (दोहा १२)

अर्थात् 'नाम का स्वामी सब कोई बन सकता है, इसमें कुछ कठिनाई नहीं, यह पद सुलभ है। दुर्लभ पद तो दास का है। ऊन के लिए यदि कोई भेड़ लावे और उनकी देख-भाल और टहल-सेवा का काम न करे, तो ऊन क्या, वे भेड़ें उसकी कपास भी चर जायँगी और लापरवाही होने से उनके खो जाने पर ऊन भी न मिलेगी।

बरखत हरखत लोग सब करखत लखै न कोइ।
तुलसी भूपति भानु सम प्रजा भाग बस होइ॥ (दोहा ८४)

इस दोहे में गोस्वामी जी ने राजा का आदर्श दिखाया है।

२—रहीम—जन्म सं० १६१३ मृत्यु सं० १६८६।

रहीम का पूरा नाम अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना था। इनका जन्म संवत् १६१३ में लाहौर में हुआ था। इनके पिता का नाम बैरामख़ाँ था। बैरामख़ाँ अकबर का रक्षक (Guardian) था। बैरामखाँ की मृत्यु पर रहीम की आयु केवल चार वर्ष थी। अकबर ने इन्हें अपने पास ही रखा और इनकी शिक्षा का सब प्रबन्ध कर दिया। कुशाग्र-बुद्धि रहीम ने विद्या-ग्रहण के लिए पूर्ण परिश्रम किया और अरबी, फारसी, तुर्की, संस्कृत और हिन्दी भाषाओं में प्रवीण हो गये। अकबर ने इनका विवाह ख़ाने आज़म की बहन माहबानू बेगम से कर दिया। इसके पश्चात् रहीम ने अकबर के लिए अनेकों युद्धों में विजय प्राप्त की।

विजयों के उपलक्ष्य में इन्हें विशेष सम्मान प्राप्त हुआ। इन्हें कई जागीरें मिलीं। समय समय पर ये कई एक प्रान्तों के सूबेदार भी रहे। इस ऐश्वर्य के दिनों में इन्होंने खूब दान किया। वर्ष में एक दिन नियत रहता था जब घर की सब सामग्री याचकगणों में बाँट दी जाती थी। इनका स्वभाव बड़ा सरल और दयालु था। ये श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक थे। इन्होंने गंग कवि के एक दोहे पर प्रसन्न होकर उसे ३६ लाख रुपये की हुण्डी, जो इनके नाम आई थी, दे डाली थी।

अन्तिम व र्षों में इनके भाग्य ने पलटा खाया। इनके दो लड़के पहले मर चुके थे, शेष दो लड़के भी मर गये। नूरजहाँ ने इनका ख़ानख़ाना का पद महाबत खाँ को दे दिया। शाहजहाँ और रहीम ने विद्रोह किया। जहाँगीर ने इन्हें क्षमा कर दिया और इनको ख़ानख़ाना की पदवी और मंसब भी दे दिये। नूरजहाँ के बर्ताव से महाबतखाँ रुष्ट हो गया और उसने विद्रोह कर दिया। ख़ानख़ाना रहीम को उस पर चढ़ाई करने को भेजा गया। परन्तु मार्ग में ही दिल्ली में सं० १६८६ में रहीम का ७२ वर्ष की आयु में देहान्त हो गया। दिल्ली में इनका मक़बरा है जो बड़ी जीर्ण-शीर्ण दशा में है। लोग इन दान-वीर की क़ब्र के पत्थर भी निकालकर ले गये हैं।

रहीम का नाम इनकी साहित्य-सेवा ने अमर कर दिया है। इनका पुस्तकालय प्रसिद्ध था और स्वय विद्या-पारङ्गत थे। इन्होंने संस्कृत-साहित्य के अतिरिक्त शास्त्रों और दर्शनो का भी अध्ययन किया था। इन्होंने समय निकालकर 'तुज़के बाबरी' का फारसी मे अनुवाद कर दिया। यह पुस्तक बाबर की आत्म-कथा तुर्की भाषा में है। ये स्वयं गुणी भी थे और दानी भी। कई कवियों ने इनके दान का यश-गान किया है। इनका गोस्वामी तुलसीदास से घनिष्ठ सम्बन्ध था जैसा कि पहले बताया गया है। हिन्दी के मुसलमान कवियो में रहीम का बहुत ऊँचा स्थान है। वैसे समग्र हिन्दी-साहित्य में भी इनका अच्छा पद है।

इनकी कविता की भाषा साधारण बोल-चाल की भाषा थी।

अतएव इनकी कविता सरस, मधुर और हृदय-ग्राही है। रहीम को संसार का बड़ा अनुभव था। ये राजनीति में प्रवीण थे। इन्होंने अपने कुछ दोहों मे राजनीति के विचार दिखाये हैं। यह इन्हीं के प्रयत्न का फल है कि दोहा हिन्दी-साहित्य मे घर कर गया। इनके कई दोहे कहावत बन गये हैं। यह तो पहले बताया गया है कि ये संस्कृत मे भी निपुण थे। यही कारण है कि इनके दोहो में कहीं कहीं संस्कृत-पद्यों का अनुकरण झलकता है। उदाहरण के लिए कुछ दोहे यहाँ दिये जाते हैं:—

रहिमन दानि दरिद्रतर तऊ जाँचिबे जोग।
ज्यो सरितन सूखा परे कुआँ खनावत लोग॥ (दोहा १६)

संस्कृत-पद्य यह है:—

साधुरेवार्थिभिर्याच्यः क्षीणवित्तोऽपि सर्वदा।
शुष्कोऽपि हि नदीमार्गः खन्यते सलिलार्थिभिः॥

अन्य उदाहरण के लिए देखिए दोहा ११, २३, ७०, ७५ और ८७।

रहीम के भाव कुछ स्थानो पर तुलसी के भावों से मेल खाते हैं। इससे यह नहीं कहा जा सकता कि रहीम ने उनके भावों का अनुकरण किया है। यह असंभव है कि एक ही पुरुष को एक भाव सूझे, अन्य किसी को नहीं। रहीम भी तीक्ष्णबुद्धि थे, दोनो का मेल-जोल था। इससे कुछ भाव-साम्य हो जाना असंभव नहीं।

नीचे एक रहीम का दोहा दिया जाता है:—

जो रहीम विधि बड़ किये, को कहि दूषण काढ़ि।
चन्द दूबरो कूबरो, तऊ नखत ते बाढ़ि॥ (दोहा १२)

यही भाव तुलसीदास का है:—

होहि बडे लघु समय पर, तो लघु सकहिं न काढ़ि।
चन्द दूबरो कूबरो, तऊ नखत ते बाढ़ि॥

इन दोहो में दूसरी पंक्ति समान है। यही बात दोहा ६६ में है।

पहले अभी कहा गया है कि एक समय रहीम की सब जागीरें आदि छीन ली गई थीं। रहीम के तब दरिद्रता का मुख देखना पड़ा था। वैसे तो रहीम के इससे कुछ दुःख न था परन्तु जब याचक लोग इनसे निराश लौटते थे तो इनका हृदय द्रवित हो जाता था। निम्नलिखित दोहे में रहीम ने अपनी दरिद्रता ऐसे वर्णन की है :—

तब ही लौ जीबो भलो दैबो होय न धीम।
जग मे रहिबो कुँचित गति उचित न होय रहीम ॥

धन नाश हो जाने पर मित्र भी मुख मोड लेते है, यह भाव नीचे के दोहे मे है :—

ये रहीम दर दर फिरै, माँगि मधुकरी खाहिँ।
यारो यारी छाँडिये, अब रहीम वे नाहिँ ॥

एक बार एक याचक ने इसी दीन दशा मे इन्हे आ घेरा। इन्होंने एक दोहा लिखकर उसे रीवाँ-नरेश के पास भेज दिया। उन्होने उसे एक लाख रुपया दे दिया। दोहा यह था :—

चित्रकूट में रमि रहे रहिमन अवध-नरेस।
जा पर विपदा पडत है सो आवत यहि देस ॥ (दोहा ८१)

रहीम के दोहावली के अतिरिक्त कुछ और भी ग्रन्थ हैं :—नगर-शोभा, बरवै नायिका-भेद, बरवै मदनाष्टक।

३— बिहारीलाल—जन्म स० १६५२, मृत्यु सं० १७२० (?)

बिहारीलाल का जन्म सवत् १६५२ में ग्वालियर के पास बसुवा गोविदपुर गाँव मे हुआ था। कुछ विद्वान् सं० १६६० मे इनका जन्म होना मानते हैं। इनके पिता का नाम केशवराय था। ये माथुर चौबे थे। इनकी माता का देहान्त हो जाने पर सं० १६५९ में इनके पिता ओड़छा (बुन्देलखण्ड) चले गये। उसके पास ही गुढो नाम के गाँव में नरहरिदास जी रहते थे। इनके पास केशवदास जी का आना-जाना था। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि नरहरिदास जी के अनुरोध से केशवदास जी

ने बिहारीलाल को कुछ समय तक काव्य-रीति की शिक्षा दी। संवत् १६७० में ये अपने पिता के साथ वृन्दावन गये। वृन्दावन में बिहारीलाल का नागरीदास जैसे साहित्य-प्रेमियों से सम्पर्क हुआ। यहीं सं० १६७५ में इ० का शाहज़ादा शाहजहाँ से परिचय हुआ। शाहजहाँ अपने पिता जहाँगीर के साथ वृन्दावन आये थे बिहारी की कविता सुनकर शाहजहाँ बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें अपने साथ आगरे ले गये। यहाँ उनका रहीम के साथ परिचय हुआ। बिहारी की ख़ूब प्रशंसा हुई। चारों ओर इनकी प्रसिद्धि फैलने लगी। सं० १६७७ के लगभग शाहजहाँ के पुत्र उत्पन्न हुआ और देश में उत्सव मनाये गये। राजकीय महोत्सव पर ५० के ऊपर राजा उपस्थित थे। बिहारी का सबसे परिचय हो गया। कई एक रियासतों मे आने-जाने लगे और वहाँ से भी इनकी वार्षिक वृत्ति बँध गई।

एक-बार ये अपनी वार्षिक वृत्ति लेने के लिए आमेर गये। महाराज जयसिंह तब आमेर के राजा थे। उन्होंने अभी हाल ही में अपना नया विवाह किया था। वे नई रानी के प्रेम में मग्न हुए राज-काज को छोड बैठे थे। अन्तःपुर से निकलने का नाम ही न लेते थे। राजा साहब की आज्ञा थी कि यदि कोई हमारे रङ्ग में भङ्ग करेगा तो हम उसका अङ्गभङ्ग कर देंगे। इसलिए किसी का साहस न होता था कि राजा को कुछ कहे। मन्त्री लोग निरुपाय थे। पहली रानी महारानी अनन्तकुमारी भी दुःखी थी। इन सबके अनुरोध से बिहारी ने राजा को चेतावनी देने का काम अपने ऊपर लिया। वे शाहजहाँ के प्रीतिपात्र थे। अतएव किसी को उन्हे कुछ कहने का साहस न हो सकता था। यह सोचकर बिहारी ने राजा के पास एक दोहा लिख भेजा :—

नहि पराग नहि मधुर मधु नहि विकास इहि काल।
अली कली ही सौं बँध्यौ आगैं कौन हवाल॥

"आगैं कौन हवाल" की गूढ़ व्यञ्जना से राजा को चेत हुआ। इसका गूढ़ भाव यह था कि "इस तरह बेख़बर रहोगे तो आगे कैसे निभेगी। शाहजहाँ तुमसे भिड़ने का अवसर ही देख रहा है।"

महाराज ने विहारी पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए उनका बहुत-सी स्वर्ण-मुद्राओं से सम्मान किया और यह भी वचन दिया कि भविष्य में प्रतिदोहा एक स्वर्ण-मुद्रा दूँगा। राजा अन्तःपुर से बाहर निकले तो वड़ी रानी ने भी कवि को पारितोषिक दिया और काली पहाडी का गाँव भेंट किया। उस समय विहारी का एक चित्र भी खिचवाया गया जो अब तक जयपुर के राज-प्रासाद मे लगा है।

इसके पश्चात् विहारी समय समय पर महाराज जयसिंह के पास दोहे भेजते रहे। यही दोहे भविष्य में सतसई के रूप में एकत्र किये गये। बिहारी ने भी यह बात स्वीकार की है कि महाराज जयसिंह के आदेशानुसार उन्होने सतसई के दोहे लिखने आरम्भ किये :—

हुकुम पाइ जयसाहि को हरि राधिका प्रसाद।
करी बिहारी सतसई भरी अनेक संवाद॥

सतसई के अन्तिम दोहे से बाबू श्यामसुन्दरदास जी का अनुमान है कि सतसई संवत् १७०४ के शीतकाल मे पूर्ण हुई होगी। उनका कहना है कि बलख की लड़ाई इसी संवत् में समाप्त हुई थी, इसके बाद की किसी घटना का उल्लेख नहीं है, इसलिए सतसई सं० १७०४ मे समाप्त हो गई होगी। परन्तु ऐसा मानने में एक बाधा उपस्थित होती है। सतसई का क्रम बिहारी ने नहीं किया था। सतसई का जो क्रम आजकल प्रचलित है, वह आज़मशाह का बँधवाया हुआ है। आज़मशाह औरङ्गज़ेब का तीसरा लड़का था। अतएव निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि अन्तिम दोहा बिहारी ने बलख़ के युद्धवाला रचा था या कोई और। सतसई का सबसे पहला क्रम कोविद कवि ने सं० १७४२ मे किया था। उस क्रम के अन्त मे यह दोहा लिखा है :—

किए सात सौ दोहरा, सुकवि बिहारीदास।
बिनहिं अनुक्रम ए भए, महि-मण्डल सुप्रकास॥

इससे स्पष्ट है कि कवि ने सतसई का क्रम कोई नही रखा था। सतसई के रचना-काल के सम्बन्ध मे एक दोहा आगे दिया जाता है :—

संवत ग्रह ससि जलधि छिति, छठि तिथि, बासर चंद।
चैत मास, पख कृष्ण में, पूरन आनँद-कंद॥

इस दोहे से प्रकट होता है कि सतसई सं० १७१६ में समाप्त हुई होगी। सतसई के अतिरिक्त बिहारी ने और कोई ग्रन्थ नहीं लिखा।

बिहारी के कोई सन्तान नहीं हुई। इन्होने अपने भतीजे निरञ्जन-कृष्ण को गोद ले लिया था। निरञ्जनकृष्ण को ये आमेर छोड गये। पत्नी की मृत्यु हो जाने पर बिहारी विरक्त होकर वृन्दावन चले गये। संभव है कि विरक्त हो जाने के कारण इन्होने फिर कविता लिखना ही छोड़ दिया हो और अपना शेष जीवन भगवद्भक्ति मे व्यतीत किया हो। यदि इन्होने कविता छोडी न होती तो कोई और ग्रन्थ अवश्य मिलता। लगभग सं० १७२०-२१ में इनका देहान्त हो गया, ऐसा अनुमान किया जाता है।

कहा जाता है कि बिहारी ने वास्तव में ७०० से अधिक दोहे लिखे थे। जोधपुर मे "दूहा-संग्रह" नाम से १५००-१६०० दोहों का संग्रह है जिसमें बहुत-से दोहे बिहारी के हैं।

"बिहारी-सतसई" की प्रसिद्धि का अनुमान इससे स्पष्ट होता है कि इस पर अब तक ३० से अधिक टीकाये हो चुकी है। इस सतसई का संस्कृत और उर्दू-अनुवाद हो चुका है।* संवत् १९८३ में स्वर्गीय बाबू जगन्नाथदास जी की "बिहारी-रत्नाकर" नाम की टीका प्रकाशित हुई है। यह टीका बहुत बढिया है। बिहारी की अमर-कीर्ति के लिए यह अकेली सतसई ही पर्याप्त है। गोस्वामी तुलसीदास की रामायण के अतिरिक्त और कोई भी भापा-ग्रन्थ इतना लोक-प्रिय नहीं हुआ जितनी यह सतसई

* संस्कृत-अनुवाद का नाम है "शृङ्गार-सप्तशतिका", अनुवादक हैं पं० परमानन्द; उर्दू-अनुवाद का नाम है "गुलदस्तए-बिहारी", अनुवादक हैं मुंशी देवीप्रसाद 'प्रीतम' बुन्देलखण्ड-निवासी।

हुई है। इसका कारण यह है कि "कहीं कहीं एक ही दोहे में रस की मधुर व्यंजना, अलङ्कारों की सुष्ठु योजना और शब्दों का लालित्य साथ साथ देखने को मिलता है।...इनकी वाक्य-रचना भी बहुत गठी हुई है।" बिहारी की दृष्टि से सूक्ष्म से सूक्ष्म बातें भी बच नहीं सकीं। इनके वर्णन पढ़ने से "एक चल-चित्र-सा आँखों के सामने खिँच जाता है।" बिहारी के एक ही दोहे में अद्‌भुत चमत्कार भरा होता है। चमत्कार की दृष्टि से प्रत्येक दोहा अनमोल रत्न है। दो-एक दोहे नीचे दिये जाते हैं :—

बिथुर्‌यौ जावुक सौति-पग निरखि हँसी गहि गाँसु।
सलज हँसौहीं लखि, लियौ, आधी हँसी उसाँसु॥

अर्थात् सौत के पाँवों मे बिथुरा (फैला हुआ) जावक (महावर) देखकर वह मन मे गाँस (गुप्त भावना) रखकर हँसी। (परन्तु फिर उस सौत को) लज्जायुक्त हँसती देखकर (उसने आधी ही हँसी मे अर्थात् हँसी के बीच मे ही) शोक से गहरा साँस लिया।" वह समझ गई कि यह महावर स्वामी ने स्वयं इसके पैरों पर लगाया है, इसलिए यह ठीक नहीं लगा। अतएव स्वामी का सौतन पर अगाध प्रेम विचार कर सौतन ने गहरा साँस लिया।

चिरजीवौ जोरी, जुरै क्यो न सनेह गम्भीर।
को घटि ए वृषभानुजा वे हलधर के बीर॥ (दोहा ६२)

इस दोहे के भिन्न-भिन्न अर्थों के लिए देखिए पुस्तक-पृष्ठ ११५-११७।

इसी लिए कहा गया है कि "इस एक छोटे-से ग्रन्थ मे इन कविरत्न ने मानो गागर मे सागर भर दिया है।......कविता का प्रायः कोई अंग, सिवा पिंगल के, नही छूटा। काव्य का यह छोटा-सा ख़ज़ाना पाठक को चकित और स्तंभित कर देता है। इतने छोटे-से ग्रन्थ में इतना चमत्कार अन्य कोई भी हिन्दी-कवि नहीं ला सका।" (मिश्रबन्धु)

४—रसनिधि—रचनाकाल सं० १६६०-१७२७।

रसनिधि उपनाम है। इनका असली नाम पृथ्वीसिंह था। ये दतिया रियासत में बरौनी इलाक़े के जागीरदार थे। इनके जीवन के विषय में कुछ ठीक ज्ञात नहीं। इनकी रचनाओं से विदित होता है कि इनका रचनाकाल सं० १६६० से सं० १७१७ तक रहा होगा। इन्होंने विहारी-सतसई के अनुकरण पर "रतन-हज़ारा" नामक दोहों का एक ग्रन्थ बनाया। कहीं कहीं इन्होंने फारसी की शृंगार-रस पूर्ण कविता के शब्दों का प्रयोग किया है। कहीं कहीं इनके दोहों का भाव शृङ्गार की सीमा पार कर गये हैं। कुछ स्थलों पर इनके दोहों में पुनरुक्ति पाई जाती है। बिना कुछ नवीनता के मज़ा किरकिरा हो जाता है। इन्होंने कुछ दोहे आत्म-तत्त्व पर लिखे हैं। जैसे—

आपु भँवर आपुहि कमल आपुहि रङ्ग सुवास।
लेते आपुहि बासना आपु लसत सब पास॥ (दोहा ८)
आपु फूल आपुहिं भँवर आपु सुबास बसाइ।
आपुहि रस आपुहि रसिक लेत आपु रस आइ॥ (दोहा १०)

इन दोनों दोहों का विषय आत्म तत्त्व है और दोनों में पुनरुक्ति पाई जाती है। अन्तर केवल इतना है कि पहले दोहे का कमल पर भाव घटाया है, दूसरे में साधारण फूल।

इनके धार्मिक विचारों पर सूफियों के संसर्ग की छाप थी। कहते हैं:—

हिंदू में क्या और हैं, मुसलमान में और।
साहब सबका एक है, व्याप रहा सब ठौर॥

दो एक दोष होने पर शेष गुण विस्मरण नहीं किये जा सकते। पं० रामचन्द्र जी शुक्ल के मतानुसार कहा जा सकता है कि "जिस ढङ्ग की कविता इन्होंने की है उसमें इन्हें सफलता हुई है।"

५—मतिराम—जन्म सं० १६७४ (?) मृत्यु सं० १७५० (?)

मतिराम त्रिपाठी का जन्म सं० १६७४ के लगभग तिकवाँपुर (ज़िला कानपुर) मे हुआ था। मिश्रबन्धु इनका जन्म सं० १६६० के लगभग अनुमान करते है। इनकी 'रस-राज' सर्वोत्कृष्ट रचना समझी जाती है। इस पर तीन-चार टीकाएँ कवियो-द्वारा ही लिखी जा चुकी हैं। पहली टीका सं० १८२२ में बख्तेश कवि ने लिखी थी। यह पुस्तक किसी राजा को समर्पित नहीं। संभव है कि तब इनका किसी राजा से सम्बन्ध अभी न बना हो। इसके बाद ये बूँदी-नरेश छत्रसाल के पुत्र भाऊसिह के पास बहुत समय तक रहे। उन्हीं के आश्रय में इन्होंने अलंकार का ग्रन्थ 'ललितललाम' लिखा। बूँदी-नरेश को यह ग्रन्थ इतना अच्छा लगा कि उन्होंने मतिराम को सब वस्त्र, आभूषण, ४,००० रुपये, ३२ हाथी और पाटन-परगने के रिडी और चिडी दो गाँव पुरस्कार में दिये। मिश्रबन्धुओ का विचार है कि यह ग्रन्थ सं० १७१८-१९ में बना होगा। इनका 'छन्दसार पिंगल' श्रीनगर (गढ़वाल) के फतेहसाहि को समर्पित है इनकी 'अलंकारचन्द्रिका' कमायूँ-नरेश उदोतचन्द के पुत्र ज्ञानचन्द को समर्पण की गई है। इसका रचना-काल सं० १७४७ के लगभग अनुमान किया जाता है। इनकी सतसई राजा भोगनाथ को समर्पित है। इनकी सतसई में कई दोहो में भी भोगनाथ का नाम आया है। प्रतीत होता है कि यह राजा भी कोई गुण-प्रिय और साहित्य-प्रेमी था। मतिराम-सतसई में एक दोहा शिवाजी की प्रशंसा का है और एक छत्रसाल की प्रशंसा मे भी। इससे विदित होता है कि मतिराम को शिवाजी और छत्रसाल का भी आश्रय मिला होगा। मतिराम की मृत्यु के विषय में ठीक कहा नहीं जा सकता। मिश्रबन्धुओं का अनुमान है कि इनका देहान्त सं० १७५० के लगभग हुआ होगा।

मतिराम एक मौलिक कवि थे। ये बिहारी के समकालीन थे। इनके कई दोहे बिहारी के दोहो की टक्कर के हैं। इनकी भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। इनकी भाषा में माधुर्य और प्रसाद गुण की अधिक मात्रा

है। इनकी कविता मे संयुक्त वर्ण बहुत कम आये हैं। इन्हें अनुप्रास आदि का प्रेम नहीं था। हाँ, एक बात है। बाबू श्यामसुन्दरदास जी का विचार है कि इनकी कविता मे गठन इतना चुस्त नहीं है जितना बिहारी की कविता में, परन्तु इतना अन्तर नहीं है कि यह कोई दोष समझा जाय। वरञ्च मतिराम ने अपनी भाषा मे कोई अप्रचलित और विकृत शब्दों का प्रयोग नहीं किया। बिहारी ने किया है और यही कारण है कि वाग्वैदग्ध्य के द्वारा बिहारी के दोहे अधिक प्रसिद्ध हो गये हैं। मतिराम ने भी कहीं-कहीं बहुत अच्छा उपमाओं का प्रयोग किया है। इनके कवित्त और सवैये भी बड़े बढ़िया हैं। इनकी भाषा में भी अर्थ-गाम्भीर्य का बहुत बड़ा गुण है जैसा कि निम्नलिखित दोहे से प्रकट होता है :—

जानत-सौति अनीति है, जानत-सखी सुनीति।
गुरुजन-जानत लाज है, पीतम जानत प्रीति॥ (दोहा ६०)

भाषा के समान इनके भाव भी कृत्रिम नहीं हैं। ये भावों को आकाश पर चढ़ा देने और असंभव बातो के चक्कर में नहीं पड़े। इनके भाव मधुर और सरल हैं। शब्द-वैचित्र्य के समान इन्होंने भावों की कृत्रिम-सूक्ष्मता को भी काव्य में त्याज्य समझा। यदि इन्होंने कोई इधर-उधर से भाव लिया भी है, तो उसे अपना लिया है। इन्हीं कारणों से कुछ विद्वानो की सम्मति है कि यदि किसी के दोहे बिहारी के दोहों की समानता को पहुँचते हैं तो वे मतिराम के ही हैं।

६—वृन्द—जन्म सं० १७००, मृत्यु सं० १७८०।

वृन्द का जन्म सं० १७०० के आश्विन शुक्ला प्रतिपदा बृहस्पति के दिन मेडता (जोधपुर) में हुआ। इनके पिता का नाम कविरूप था जो डिंगल भाषा के कवि थे। वृन्द ने शिक्षा काशी मे पाई। इनके गुरु का नाम तारा पण्डित था। उनसे वृन्द ने संस्कृत तथा छन्दशास्त्र का अच्छा अध्ययन किया। काशी से लौटकर ये जोधपुर के महाराज जसवन्तसिंह के दरबार में कुछ समय तक रहे। सं० १७२० में वज़ीर

नवाब मुहम्मदशाह के द्वारा इनकी पहुँच औरङ्गज़ेब के दरबार में हुई। वहाँ इन्हें १०) प्रतिदिन के अनुसार वेतन मिलने लगा। ये दरबारी कवि हो गये। सं० १७४२ मे कृष्णगढ़ के महाराज मानसिह ने इन्हे अपने राजकुमार राजसिह की शिक्षा के लिए नियुक्त किया था। कुछ समय तक ये अजमेर के सूबेदार मिरज़ा कादरी की लडकी के भी शिक्षक रहे।

औरङ्गज़ेब के दरबारी कवि होने के कारण ये समय समय पर दिल्ली जाते रहते थे। कुछ वर्ष पीछे औरङ्गज़ेब से उनके पोते अज़ीमुश्शान ने इन्हे मांग लिया। अज़ीमुश्शान बंगाल, बिहार और उडीसा का सूबेदार था और ढाके रहा करता था। वृन्द को वह सदा अपने साथ ढाके में रखता था। अजीमुश्शान उर्दू का अच्छा कवि और साहित्य-प्रेमी था। इनके दरबार में कई कवि आश्रय पाते थे।

वृन्द-सतसई के एक दोहे से विदित होता है कि यह सतसई संवत् १७६१ की कार्तिक शुक्ला सप्तमी सोमवार के दिन ढाका नगर मे पूरी हुई थी।

यंवत् ससि रस बार ससि, कातिक सुदि ससिवार।
सातैं ढाका सहर में, उपज्यो यहै विचार॥

अन्त मे औरंगज़ेब के पुत्रों से उत्तराधिकार के युद्ध आरम्भ हो जाने पर महाराज राजसिह ने नये बादशाह से वृन्द को मांग लिया। महाराज राजसिंह ने नये बादशाह को विजय प्राप्त करने में सहायता दी थी। तब से लगभग १५ वर्ष तक वृन्द कृष्णगढ़ में ही रहे। वहीं ८० वर्ष की आयु में सं० १७८० में इनका देहान्त हुआ।

वृन्द बड़े स्वतन्त्र प्रकृति के मनुष्य थे। ये औरंगजेब को भी खरी खरी सुना दिया करते थे। इसी लिए औरंगज़ेब ने इन्हें "सच्ची कहनेवाला कविराज" की उपाधि दी थी। सं० १७३६ में जोधपुर-नरेश जसवन्तसिंह की मृत्यु हो जाने पर औरंगज़ेब ने ५० मन्दिर तुडवाने की आज्ञा दी। वृन्द ने खूब खरी सुनाई।

एहो शाह औरंग कहावत हो पातिशाह
आप ही विचारो यह कैसी सवहानगी।
जब महाराज लाल ने डेरा लगाइ लूटे
तब क्यो न लरिकै दिखाई तेग-बानगी ॥
देस पर देस सूबा केतक इनाम दीन्हे
कीन्हीं दिलजोई प्यार परवानगी।
जब जसवंत सुरपुर को सिधाए तब
तेग बाँध आए, यह कैसी मरदानगी ॥

वृन्द-सतसई मे नीति का उपदेश है। इन जैसा रहीम ही दूसरा नीति का उपदेश देनेवाला कवि हुआ है। रहीम और वृन्द के कई भाव मिलते-जुलते है। पाठकगण भाव-साम्यता रखनेवाले भिन्न-भिन्न दोहों के अध्ययन से सम्यक् रूप में जान सकेंगे कि अमुक भाव के प्रदर्शन में कौन सिद्ध-हस्त है। इन दोनो सतसइयो की भाषा बहुत सरल है। यही कारण है कि इन दोनो सतसइयो के कई दोहे कहावतें बन गये है।

वृन्द ने सतसई के अतिरिक्त अलंकार-सतसई, शृंगार-शिक्षा, हितोपदेशाष्टक, भाव-पंचाशिका आदि कुछ ग्रन्थ भी लिखे थे परन्तु सतसई जितना इनका कोई ग्रन्थ प्रसिद्ध नहीं हुआ।

७—विक्रमसिंह— राज्य-काल सं० १८३९-१८८६।

राजा विक्रमसिह बुन्देलखण्ड की चरखारी रियासत के राजा थे। इन्होने सवत् १८३९ से १८८६ तक राज्य किया। इनका पूरा नाम विक्रमादित्य था। ये बड़े साहित्य-प्रेमी और गुण-ग्राही थे। ये कवियो का बडा सम्मान करते थे। इसी लिए कवि लोग भी इन्हे घेरे रहते थे। ये स्वयं बहुत अच्छे कवि थे और विक्रम के नाम से कविता किया करते थे। इन्होंने सतसई के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध का हिन्दी में पद्यमय अनुवाद किया है और "व्रज-लीला" इत्यादि ग्रन्थ लिखे हैं।

"बिहारी-सतसई" के आदर्श पर इन्होने भी सतसई लिखी है परन्तु अनुकरण अनुकरण ही है। बिहारी व मतिराम से ये बहुत पीछे रह गये हैं। "फिर भी इनकी कविता में रस की पर्याप्त व्यञ्जना है।" ऐसा बाबू श्यामसुन्दरदास जी का विचार है।

कवि ने सतसई के अन्त में लिखा है :—

जो कछु पूरब कविन तै बरनी काव्य सुबानि।
से बिचार करु चारु मै दोहा कहे बखानि॥

इससे स्पष्ट है कि कवि ने अन्य कवियो के भाव आदि के ग्रहण करने में कोई संकोच नहीं किया।

८—रामसहायदास—रचना-काल सं० १८६०-१८८०।

रामसहायदास चौबेपुर (ज़िला बनारस) के रहनेवाले थे। इनके पिता का नाम मुंशी भवानीदास था। ये अस्थाना कायस्थ थे। रामसहाय-दास काशी-नरेश महाराज उदितनारायणसिंह के आश्रित कवि थे। ये बड़े भक्त-जन थे। इन्हे लोग भगत कहा करते थे। इन्होने कविता में अपना उपनाम भगत ही रखा है। इनका कविता-काल स० १८६० से १८८० तक प्रतीत होता है। इनकी कविता में बिहारी के शब्दों का कौशल और वाग्वैदग्ध्य का स्मरण हो आता है परन्तु हाव-भाव के चित्रण में ये बिहारी से कहीं पीछे रह गये हैं। शब्द-विन्यास आदि बातें तो बाहरी हैं, उनका अनुकरण सहज है। भावों का, जिनका मूल उद्गम-स्थान हृदय है, अनुकरण करना अधिक कठिन है। इस सतसई मे माधुर्य और प्रसाद गुण विशेष रूप से है। "बहुत-से दोहे सरस उद्भा-वना मे बिहारी के दोहों के पास तक पहुँचते हैं।...रामसतसई...एक उत्तम ग्रन्थ है।" (पं० रामचन्द्र जी शुक्ल)

इस सतसई के अतिरिक्त रामसहायदास ने "वाणी-भूषण" (अलं-कार), "वृत्त-तरंगिणी" (छन्द) और ककहरा (अखरावट के ढँग पर) तीन ग्रन्थ लिखेहैं।

इनकी सतसई के दो एक भाव-गर्भित दोहे नीचे दिये जाते हैं :—

ज्यौं ज्यौं फूकै नव वधू पगी रसोई लागि।
त्यौं त्यौं धूमै दै अहो लगी तमासे आगि॥ (दोहा २६)
मुख देखन कों पुर-वधू जुरि आईं नँदनंद।
सबकी अँखियाँ ह्वै गईं घूँघट खोलत बंद॥ (दोहा २८)

९—श्री वियोगी हरि—जन्म सं० १६५३।

श्री वियोगी हरि का जन्म छत्रपुर राज्य (बुन्देलखण्ड) में चैत्र शुक्ला रामनवमी सं० १६५३ में हुआ था। इनका वास्तविक नाम हरिप्रसाद द्विवेदी है। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। इनके पिता का नाम प० बलदेवप्रसाद जी द्विवेदी था। इनके पिता इन्हें ५-६ मास की आयु में ही छोडकर परलोक सिधार गये। अतएव इनकी बाल्यावस्था इनके नाना पं० अच्छेलाल तिवारी के पास व्यतीत हुई। विद्यारम्भ के पहले ही ७ वर्ष की आयु में इन्होंने सर्वप्रथम एक कुण्डलिया बनाई थी। आठ वर्ष की अवस्था में इन्होंने हिन्दी और संस्कृत का अध्ययन आरम्भ किया। सं० १६७२ (सन् १९१५) में इन्होने मेट्रीकुलेशन की परीक्षा पास की। छात्रावस्था से ही ये एकान्त-प्रिय हैं। स्कूल छोड़ते ही इनका प्रेम दर्शन-शास्त्र की ओर हो गया। लगभग १८ वर्ष की आयु में इन्होंने प्रेम-शतक, प्रेम-पथिक प्रेमाञ्जलि और प्रेम-परिषद नाम की पुस्तकें प्रेम-धर्म पर लिखीं जो प्रकाशित हो चुकी हैं। इन्होंने आजन्म ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करने का दृढ़ निश्चय कर रखा है।

सं० १६७६ (सन् १६१६) में ये प्रयाग गये। वहाँ बाबू पुरुषोत्तमदास जी टण्डन ने इन्हें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के काम के लिए रोक लिया। इन्होंने 'सम्मेलन-पत्रिका' के सम्पादन के अतिरिक्त 'संक्षिप्त सूरसागर' का भी सम्पादन किया। ये सम्मेलन-पत्रिका के चार वर्ष सम्पादक रहे।

बाल-काल से ही छत्रपुर-नरेश महाराज विश्वनाथसिंह जू देव की धर्मपत्नी स्वर्गवासिनी श्रीमती कमलकुमारी देवी इन्हें पुत्रवत् स्नेह करती

थीं। उनके साथ इन्हे तीर्थाटन का अच्छा अवसर मिलता रहा। सं० १९७८ में उनका देहान्त हो जाने पर संसार से विरक्त होकर इन्होंने संन्यास ले लिया। तब से इन्होंने अपना नाम वियोगी हरि रख लिया है।

इनके कई ग्रन्थ निकल चुके हैं। "विनय-पत्रिका" पर इन्होंने हरि-तोषिणी नाम की एक उत्तम टीका भी निकाली है। इन्हें ब्रजभाषा से अधिक प्रेम है। ये विशेष कर कविता ब्रजभाषा में किया करते हैं, खड़ी बोली में बहुत कम। इनकी रचनाओं में भक्ति, प्रेम और विरह का अच्छा वर्णन मिलता है। इन्होंने वीर-रस-सम्बन्धिनी 'वीर-सतसई' लिखी है। इस सतसई पर इन्हे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से १२००) का पुरस्कार मिला है। इस सतसई के सात खण्ड हैं। प्रत्येक खण्ड में सौ-सौ दोहे हैं। इसमें भारत के प्रसिद्ध वीरों की प्रशस्तियाँ है। कई एक स्थलों पर भारत की आधुनिक अवस्थाओं पर ख़ूब चुट-कियाँ ली हैं। अन्य सतसइयों की तरह यह सतसई भी ब्रजभाषा मे लिखी गई है। भाषा अच्छी परिमार्जित है। यह सतसई कुछ विश्व-विद्यालयो में पाठ्य-पुस्तक है। पंजाब-विश्वविद्यालय में यह सतसई कुछ वर्ष प्रभाकर परीक्षा के लिए पाठ्य-पुस्तक रही है।

हिन्दी का साधारण प्रेमी भी इस पुस्तक से लाभ उठा सके इस-लिए मैंने दोहों के नीचे शब्दार्थ दे दिये हैं। जिन दोहों के भाव तक भी स्पष्ट नहीं होते, अथवा भावार्थ जहाँ विशेष स्पष्ट करने के लिए आवश्यक समझे गये हैं वहाँ भावार्थ दे दिये गये हैं। जहाँ जहाँ ऐतिहासिक तथा पौराणिक कथाओ का संकेत है, उनका भी 'विशेष" में वर्णन कर दिया है। दोहो में कहीं कहीं भाव-साम्यता होने पर "विशेष" में अन्य कवियो के उसी भाव को व्यक्त करनेवाले दोहे वा पद्य वहाँ उद्धृत कर दिये हैं। पुस्तक का आकार अधिक बढ़ जाने के भय से सब भाव-साम्य दोहे उद्धृत नहीं किये जा सके। साधारण रूप में दोहा-साहित्य अध्ययन करने का मार्ग निर्देश कर दिया गया है। इससे पाठक-गण अपूर्व रस का आस्वादन करेंगे और वे स्वयं निश्चय भी कर सकेंगे

कि अमुक कवि का वास्तविक महत्त्व कितना है। इस पुस्तक के अध्ययन से तुलसीदास के समय से लेकर आधुनिक काल तक के सतसई-साहित्य का परिचय प्राप्त हो सकेगा।

इस पुस्तक को दो भागों में बाँट दिया गया है। पहले भाग में तुलसीदास, रहीम और बिहारी के दोहे संगृहीत हैं और दूसरे भाग में शेष छः कवियों के (अर्थात् रसनिधि, मतिराम, वृन्द, विक्रम, राम और वियोगी हरि के)। दोनों भागों की पृथक्-पृथक् प्रतीप-अनुक्रमणिका है। इससे ग्रन्थ की उपयोगिता बढ़ जायगी। कवियों का क्रम उनके जन्म-काल के अनुसार रखा है। आशा है हिन्दी-जनता इस पुस्तक को अपनायेगी।

अन्त में मैं श्रीवियोगी हरि जी को धन्यवाद देता हूँ। इनकी सतसई में से कुछ दोहे यहाँ उद्धृत किये गये हैं। बाबू श्यामसुन्दरदास जी का मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ क्योंकि इस पुस्तक मे मुझे उनके 'सतसई-सप्तक' से काफी सहायता मिली है। कुछ सतसइयों के मूल दोहे भी इस पुस्तक के आधार पर रखे गये है। पं० रामचन्द्र जी शुक्ल और मिश्रबन्धुओं को भी धन्यवाद देता हूँ। उनके क्रमशः 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' और "नव-रत्न" नाम की पुस्तकों से इस पुस्तक की भूमिका लिखने में मुझे सहायता मिली है। इस पुस्तक के पहले भाग के कुछ अंश में पं० बद्रीदत्त जी ने सहायता दी है, अतएव मैं उनका भी कृतज्ञ हूँ। पहले भाग की प्रतीप-अनुक्रमणिका मेरे बहनोई श्रीयुत लक्ष्मीशंकर जी एम० ए० ने तैयार की है। मैं उनका आभारी हूँ। मैं यहाँ 'इंडियन-प्रेस, प्रयाग' के अधिकारियों को अपना हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। उन्होंने बहुत थोड़े समय मे यह पुस्तक छाप देने में विशेष परिश्रम उठाया है। अन्यथा यह पुस्तक अभी प्रकाशित न हो सकती।

सनातनधर्म कालेज,
लाहौर

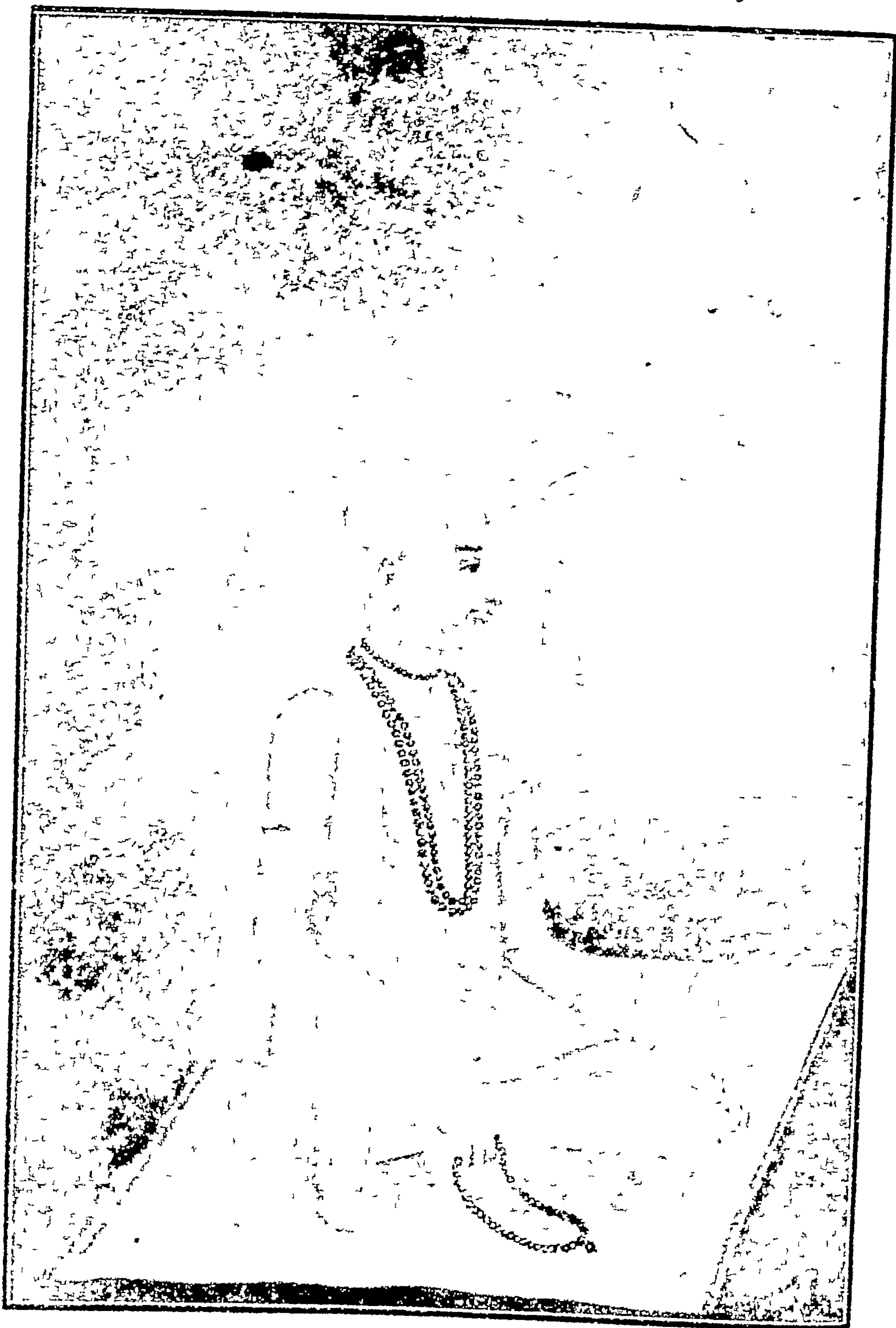
कैलाशनाथ भटनागर

सूची

प्रथम भाग

द्वितीय भाग

प्रथम भाग



गोसाईं तुलसीदास

नवसतसईसार

तुलसीदास जी के दोहे

(१)

नमो नमो श्रीराम प्रभु परमातम परधाम।
जेहि सुमिरे सिध होत है तुलसी जन-मन-काम ॥

शब्दार्थ :—परमातम = परमात्मा, ईश्वर। परधाम = जिसका स्थान सबसे दूर हो अर्थात् गोलोकवासी, "न तद्भासयते......" गीता १५.६। जेहि = जिसके। सुमिरे = स्मरण करने से। सिध होत है = पूरे होते हैं। जन-मन-काम = भक्तों के मन की इच्छाएँ।

(२)

बुद्धि-विनय-गति-हीन सिसु सुपथ कुपथ गत-ग्यान।
जननि जनक तेहि किमि तजहिं तुलसी सरिस अजान ॥

शब्दार्थ :—सिसु—शिशु, बालक। जननि = माता। जनक = पिता। किमि = किस प्रकार। सरिस = सदृश।

भावार्थ :—तुलसीदास जी कहते हैं कि जो बालक बुद्धि और विनय से रहित है तथा जिसे चलना भी नहीं आता और न जिसे भले और बुरे रास्ते का ही पता है उस अबोध बालक को भला माता-पिता कैसे त्याग सकते हैं, इसी प्रकार तुलसीदास भी है इसे राम क्योंकर छोड़ देंगे अर्थात् कभी नहीं छोड़ेंगे।

(३)

ससि रवि सीता राम नभ तुलसी उरसि प्रमान।
उदित सदा अथवत न सो कुतसित तम कर हान॥

शब्दार्थ :—ससि = चन्द्रमा। रवि = सूर्य। नभ = आकाश। उरसि = हृदय। उदित = उदय। अथवत = अस्त होना। कुतसित = बुरे, अज्ञान-युक्त। तम = अँधेरा। कर = का। हान = नाश।

भावार्थ :—राम और सीता सूर्य और चन्द्रमा हैं, तुलसी-दास का हृदय आकाश है। उसमें वे सदा उगे ही रहते हैं, कभी अस्त नहीं होते और अज्ञानरूपी अँधेरे को दूर कर देते हैं।

यहाँ साङ्गरूपक और व्यतिरेकालंकार हैं।

(४)

रेफ रमित परमातमा सह अकार सिय रूप।
दीरघ मिलि बिधि जीव इव तुलसी अमल अनूप॥

शब्दार्थ :—रेफ = "र" अक्षर। रमित = रहता है, क्रीड़ा करता है। सह = साथ। अकार = "अ" अक्षर। विधि = ईश्वर। अमल = निर्मल। अनूप = अनोखा।

भावार्थ :—"राम" शब्द में "र" परमात्मा का रूप है। "अ" सीता का रूप है। दीर्घ "आ" मिलने पर वह जीव और ब्रह्म के मिलान की तरह निर्मल और अनोखा हो जाता है। अर्थात् राम-नाम की महिमा विचित्र है।

(५)

अनुस्वार कारन जगत श्रीकर करन अकार।
मिलित अकार मकार भो तुलसी हर-दातार॥

शब्दार्थ :—कारन = बनानेवाला। श्रीकर = लक्ष्मी या शोभा को करनेवाला। हर-दातार = शिव को भी वरदान देनेवाला अर्थात् राम-नाम।

(६)

अहि रसना थन-धेनु रस गनपति-द्विज-गुरुवार।
माधव सित सिय-जनम-तिथि सतसैया अवतार॥

(इस दोहे से तुलसीसतसई के बनाने की तिथि का पता लगता है)

शब्दार्थ :—अहि-रसना = २। थन-धेनु = ४। रस = ६। गनपति-द्विज = १। संस्कृत में अंक बाईं ओर से गिने जाते हैं अतः १६४२ संवत् हुआ। गुरुवार = बृहस्पतिवार। माधव = वैशाख मास। सित = शुक्ल पक्ष। सिय-जनम-तिथि = ९। अवतार = शुरू हुई।

(७)

दंपति रस रसना दसन परिजन बदन सुगेह।
तुलसी हर-हित बरन सिसु संपति सहज सनेह॥

शब्दार्थ:—दंपति = सीताराम। रस = काव्यरस। रसना = जिह्वा। दसन = दाँत। परिजन = नौकर। सुगेह = सुन्दर घर। हर-हित बरन = शिव के भी हितकारी अक्षर अर्थात् राम-नाम। संपति = धन। सहज = स्वाभाविक। सनेह = प्रेम।

(८)

तुलसी सोहत नखत-गन सरद सुधाकर साथ।
मुकुता झालर झलक जनु राम सुजस-सिसु-हाथ॥

शब्दार्थ :—सोहत = शोभित हैं। नखत-गन = तारे। सरद सुधाकर = आश्विन और कार्तिक का साफ चन्द्रमा। मुकुता = मोती। राम...हाथ = श्रीराम के सुन्दर यशरूपी बालक के हाथ में।

(९)

बरु मराल मानस तजै चंद सीत रबि घाम ।
मोह मदादिक कै तजै तुलसी तजै न राम ॥

शब्दार्थ—बरु = चाहै । मराल = हंस । मानस = मानसरोवर । सीत = ठण्ढक । घाम = धूप । मोह = बेहोशी । मदादिक = शराब वग़ैरह ।

(१०)

राम-चरन-अवलंब बिनु परमारथ की आस ।
चाहत बारिद-बुंद गहि तुलसी चढ़न अकास ॥

शब्दार्थ :—अवलंब = सहारा । बिनु = बिना । परमारथ = मुक्ति । बारिद-बुंद = बादल की बूँद । गहि = पकड़कर ।

(११)

हित सन हित रति राम सन रिपु सन बैर बिहाय ।
उदासीन संसार सन तुलसी सहज सुभाय ॥

शब्दार्थ :—हित = मित्र । सन = से । रति = प्रेम । रिपु = शत्रु । बिहाय = छोड़कर । उदासीन = दूर ।

(१२)

स्वामी होनो सहज है दुर्लभ होनो दास ।
गाडर लाए ऊन को लाग्यो चरन कपास ॥

शब्दार्थ :—दुरलभ = कठिन । गाडर = भेड ।

(१३)

जाय कहब करतूति बिनु जाय जोग बिनु छेम ।
तुलसी जाय उपाय सब बिना राम-पद-प्रेम ॥

शब्दार्थ :—जाय = नष्ट होता है। कहब = डींग मारना, केवल कहना। करतूति = काम करना। जोग = किसी शक्ति या वस्तु का प्राप्त करना। छेम = रक्षा करना। पद = चरण।

(१४)

हरे चरहिँ तापहिँ बरे फरे पसारहिँ हाथ।
तुलसी स्वारथ-मीत जग परमारथ रघुनाथ॥

शब्दार्थ :—हरे = हरे रहने पर अर्थात् धनी अवस्था में। चरहिँ = खाते हैं। तापहिँ = तपते हैं। बरे = जलने पर। फरे = फलने पर, धनी होने पर। पसारहिँ हाथ—माँगते हैं।

भावार्थ:—जैसे मनुष्य या पशु हरे वृक्ष को चरते हैं, जलने पर उससे आग सेकते हैं और फल लगे तो उसके लिए हाथ पसार, हर हालत में अपना ही स्वार्थ सिद्ध करते हैं उसी प्रकार मित्र लोग भी हैं। बिना स्वार्थ के तो केवल राम ही प्रीति करते हैं।

(१५)

तुलसी हम सों राम सों भलो मिलो है सूत।
छोड़े बनइ न संग्रहे ज्यों घर माँह कपूत॥

शब्दार्थ :—सूत = पुत्र। छोडे बनइ न = छोडा भी नहीं जाता। सग्रहे = रखना। माँह = में।

(१६)

लगन मुहूरत्त जोग बल तुलसी गनत न काहि।
राम भए जेहि दाहिने सबै दाहिने ताहि॥

शब्दार्थ :—लगन मुहूरत जोग = यात्रा के लिए ज्योतिषियों का बताया हुआ अच्छा समय। गनत = परवाह करना। काहि = किसी की। दाहिने = प्रसन्न।

(१७)

साधन साँसति सब सहत सुमन सुखद फल लाहु ।
तुलसी चातक जलद की रीझ बूझ बुध काहु ॥

शब्दार्थ :—साँसति = दुःख । सुमन = विद्वान् । सुखद = सुखदायी । लाहु = लाभ । जलद = बादल । बूझ = समझ । बुध = विद्वान् । काहु = किसी को ।

(१८)

डोलत विपुल बिहंग बन पियत पोखरिन बारि ।
सुजस धवल चातक नवल तोर भुवन दस-चारि ॥

शब्दार्थ :—डोलत = फिरते हैं । बिपुल = बहुत । बिहंग = पक्षी । पियत = पीते हैं । पोखरिन = तालाबों का । बारि = जल । सुजस = सुन्दर यश । धवल = सफेद । नवल = नया । तोर = तुम्हारा । दस-चारि = १४ । भुवन = लोक (लोक १४ होते हैं) ।

(१९)

ऊँची जाति पपीहरा पियत न नीचो नीर ।
कै जाँचै घनस्याम सों कै दुख सहै सरीर ॥

शब्दार्थ :—पपीहा = चातक, एक पक्षी जो केवल वर्षा का ही जल पीता है । घनस्याम = बादल । कै = या ।

(२०)

ह्वै अधीन जाँचै नहीं सीस नाय नहिं लेइ ।
ऐसे मानी माँगनहिं को बारिद बिनु देइ ॥

शब्दार्थ :—ह्वै अधीन = अधीन होकर, सेवक बनकर । जाँचै = माँगे । नाय = झुकाकर । मानी = अभिमानी । माँगनहि = भिखमंगे

को (चातक को)। को = कौन। वारिद = बादल। बिनु = बिना। देइ = देवे।

(२१)

उपल बरखि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक जलद तजि कबहुँ आन की ओर॥

शब्दार्थ :—उपल = पत्थर, ओले। बरखि = बरसाकर। गरजत = गरजता है। तरजि = डराकर। डारत = डालता है। कुलिस = बिजली। चितव कि = क्या देखता है? अर्थात् नहीं देखता। चातक = एक पक्षी। तजि = छोड़कर। कबहुँ = कभी। आन = दूसरे।

(२२)

गंगा जमुना सुरसती सात सिंधु भरि पूरि।
तुलसी चातक के मते बिना स्वाति सब धूरि॥

शब्दार्थ :—सिंधु = समुद्र। मते = मत से, विचार से। स्वाति = एक नक्षत्र का नाम है जिसमे बरसा हुआ जल चातक पीता है।

(२३)

चरग चंगु-गत चातकहिँ नेम प्रेम की पीर।
तुलसी पर-बस हाड़ पर परिहैं पुहुमी-नीर॥

शब्दार्थ:—चरग = बाज़। चंगु = चंगुल, पंजा। गत = पड़े हुए। नेम = नियम। पीर = पीडा, दुःख। पुहुमी = पृथ्वी।

भावार्थ :—बाज़ के पंजे में पड़े हुए चातक को भी अपने नियम और वर्षा-जल के प्रेम का ख़याल है और उसे केवल इसी बात का कष्ट है कि अब मैं पराधीन हूँ, कहीं मेरी हड्डियाँ पृथ्वी के पानी में न फेंक दी जायँ, और इससे कहीं मेरा व्रत भंग न हो जाय।

(२४)

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
स्वाति सलिल रघुनाथ बर चातक तुलसीदास॥

शब्दार्थ :—सलिल = जल। बर = श्रेष्ठ। आस = आशा। बिस्वास = भरोसा।

(२५)

खेलत बालक ब्याल सँग मेलत पावक हाथ।
तुलसी सिसु पितु मातु इव राखत सिय-रघुनाथ॥

शब्दार्थ—ब्याल = सर्प। मेलत = डालना है। पावक = आग। सिसु = बच्चा। राखत = रक्षा करते हैं।

(२६)

तुलसी केवल राम-पद लागै सरल सनेह।
तौ घर घट बन बाट महँ कतहुँ रहे किन देह॥

शब्दार्थ :—सरल = स्वाभाविक। सनेह = प्रेम। घट = ऊँची नीची जगह। बन = जंगल। बाट = रास्ता। महँ = में। कतहुँ = कहीं पर। रहे किन = क्यों न रहे। देह = शरीर।

(२७)

कै ममता करु राम-पद कै ममता परिहेलु।
तुलसी दुइ महँ एक अब खेल छाँड़ि छल खेलु॥

शब्दार्थ :—कै = या तो। ममता = प्रेम। परिहेलु = परित्याग, छोड़ना। दुइ महँ = दो में से। खेल = खेल (संज्ञा शब्द)। छाड़ि छल = छल-कपट छोड़कर। खेलु = खेलो (क्रिया शब्द)।

(२८)

तुलसी-पात दरबार मों कमी वस्तु कछु नाहिं।
करम-हीन कलपत फिरत चूक चाकरी माहिं॥

शब्दार्थ :—तुलसी-पति = राम। कलपत = रोता हुआ। चूक = चूककर। चाकरी = नौकरी, सेवा।

(२९)

राम-नाम सुमिरत सुजन-भाजन भएउ कुजाति।
कु-तरुक सुर-पुर-राज-मग लहत भुवन बिख्याति॥

शब्दार्थ :—सुजन-भाजन = सज्जनों के भी स्मरण करने योग्य। कुजाति = नीच। कु-तरुक = बुरे वृक्षोंवाला दण्डकारण्य वन। सुर-पुर-राज-मग = स्वर्ग के रास्ते की तरह। लहत = प्राप्त करता है। विख्याति = प्रसिद्धि।

(३०)

पग अंतर मग आगम जल जल-निधि जल संचार।
तुलसी करिया करम बस बूड़त तरत न बार॥

शब्दार्थ :—पग एक क़दम। अंतर = फ़ासिला, दूरी। मग = रास्ता। अगम = गहरा। जल-निधि = समुद्र। करिया = नाव चलानेवाला, ईश्वर। बार = देरी। बूडत = डूबना। तरत = पार लगना, तैरना।

(३१)

मरजादा दूरहि रहे तुलसी किए बिचारि।
निकट निरादर होत है जिमि सुरसरि-बर-बारि॥

शब्दार्थः—मरजादा = मर्यादा, सीमा, भलाई। जिमि = जिस तरह। सुरसरि-बर-बारि = गङ्गा का पवित्र जल। (गङ्गा के पास रहनेवाले उसी जल से सब काम लेते हैं।)

(३२)

तुलसी-पति-रति अंक सम सकल साधना सून।
अंक रहित कछु हाथ नहिं अंक सहित दस गून॥

शब्दार्थ :—तुलसी-पति-रति = राम का प्रेम। अंक = १ से ९ तक के अंक। साधना = इच्छा। सून = बिन्दी ० की तरह है। दस गून = दस गुणा।

भावार्थ :—बिना अंक के जैसे केवल शून्य का कुछ मूल्य नहीं होता और अंक लगने पर दस गुणी कीमत हो जाती है वैसे ही राम के भजन बिना केवल सांसारिक इच्छाओं का कुछ मूल्य नहीं है।

(३३)

तुलसी अपने राम कहँ भजन करहुँ निरसंक।
आदि अंत निरबाहिबो जैसे नव को अंक॥

शब्दार्थ :—निरसंक = निडर होकर। निरबाहिबो = निर्वाह करता है। (९ के पहाड़े के अक्षरों को जोड़ा जाय तो वे ९ से कम कभी नहीं होते, आरम्भ से अन्त तक ९ की संख्या में कमी नहीं होती।)

(३४)

त्रिबिध-ताप-हर ससि सतर जानहु मरम मकार।
बिधि हरि हर गुन तीन को तुलसी नाम अधार॥

शब्दार्थ :—त्रिविध—तीन प्रकार के—शारीरिक, मानसिक, दैविक। ताप—दुःख। हर = दूर करनेवाला। ससि = चन्द्रमा। सतर = शीघ्र। मरम = भेद, रहस्य। नाम = राम-नाम।

(३५)

एक छत्र इक मुकुटमनि सब बरणन पर जोउ।
तुलसी रघुबर-नाम के बरन बिराजत दोउ॥

शब्दार्थ : - बरणन पर = अक्षरों पर। जोउ = देखो।

भावार्थ :—"रकार" वर्णों पर छत्र की तरह ऊपर रहता है और "मकार" भो अनुस्वार के रूप में वर्णों के सिर पर मणि की तरह रहता है। राम-नाम के यही दोनों अक्षर हैं। इन्हीं का महत्त्व इसमें कहा है।

(३६)

होनहार सह जान सब बिभव बीच नहिँ होत।
गगन गिरह करिबो कबै तुलसी पढ़त कपोत॥

शब्दार्थ :—होनहार = होनेवाली बात। सह = साथ। बिभव = धन-दौलत। गगन = आकाश। गिरह = कलाबाज़ी। कपोत = कबूतर।

(३७)

गिरत अंड संपुट अरुन जलज पच्छ अनयास।
अलल सुअन उपदेस केहि जात सो उलटि अकास॥

शब्दार्थ :—अंड संपुट = अंडा। अरुन = लाल। जलज = कमल (के समान)। पच्छ = पंख। अनयास = बिना कष्ट। अलल = एक पक्षी का नाम जो जन्म से ही आकाश में उड़ता रहता है कभी

ज़मीन पर नहीं बैठता । सुअन = बच्चा । केहि = किसके । जात = जाता है । सो = वह ।

भावार्थ :—जिसका जो स्वभाव होता है वह उसे जन्म से ही अपने आप सीख लेता है। अलल के बच्चे को कोई उपदेश नहीं देता पर वह अंडे के फूटते ही आकाश में उड़ जाता है।

(३८)

नाना विधि की कलपना नाना विधि को सोग।
सूछम अरु असथूल तन कबहुँ तजत नहिं रोग॥

शब्दार्थ :—कलपना = विचार, रोना धोना। सोग = शोक। सूछम = सूक्ष्म। असथूल = स्थूल। तन = शरीर।

(३९)

तुलसी संत सु-अंब-तरु फूलि फरहिं पर हेतु।
ये इत तें पाहन हनैं वे उत तें फल देतु॥

शब्दार्थ :—संत = भले आदमी। सु-अंब-तरु = आम का पेड़। फरहि = फलते हैं। पर-हेतु = दूसरों के लिए। पाहन = पत्थर। हनैं = मारें। उत तें = उधर से।

(४०)

गुरु कह तब समझै सुनै निज करतब कर भोग।
कह तब गुरु करतब करै मिटै सकल भव-सोग॥

शब्दार्थ :—भव-सोग = संसार के शोक, दुःख आदि।

(४१)

सरनागत तेहि राम के जिन्ह दिय धी सिय-रूप ।
जा पदनि-घर उदय भए नासे भ्रम-तम-कूप ॥

शब्दार्थ :—धी = बुद्धि । सिय-रूप = सीता-स्वरूप अर्थात् भक्तिमय । पदनि = भक्तिरूप भगवान् की स्त्री । घर = हृदयरूप गृह । नासे = नष्ट करे । तम = अँधेरा ।

(४२)

डाबर सागर कूप गत भेद दिखाई देत ।
है एकै दूजो नहीं द्वैत आन के हेत ॥

शब्दार्थ :—डाबर = तालाब । सागर = समुद्र । द्वैत = दूसरी चीज़ का भान । आन = दूसरे । के = को ।

(४३)

तुलसी तरु फूलत फरत जेहि बिधि कालहि पाय ।
तैसे ही गुन-दोख-गत प्रगटत समय सुभाय ॥

शब्दार्थ :—कालहि पाय = समय पाकर । जैसे समय पाकर वृक्ष फूलते फलते हैं उसी प्रकार स्वभावगत गुण-दोष भी समय पर प्रकट होता है ।

(४४)

गुरु तें आवत ग्यान उर नासत सकल बिकार ।
जथा निलय-गत दीप तें मिटत सकल अँधियार ॥

शब्दार्थ :—बिकार = बुराई, अज्ञान । जथा = जैसे । निलय = घर ।

(४५)

तुलसी तोरत तीर-तरु मानस हंस विडार।
विगत नलिन अति मलिन जल सुरसरिहू वढ़ियार ॥

शब्दार्थ :—तोरत = तोड डालता है। तीर-तरु = किनारे के पेड़। मानस = मानसरोवर। विडार = भगाकर। विगत = विना। नलिन = कमल। सुरसरिहू = गंगा भी। वढियार = वढ़ने पर।

(४६)

जानै राम सरूप जब तव पावै पद संत।
जनम मरन पद तें रहित सुखमा अमल अनंत ॥

शब्दार्थ :—सुखमा = परम शोभा। अमल = निर्मल। अनंत = पार-रहित।

(४७)

जग तें रहु छत्तीस ह्वै राम-चरन छव तीन।
तुलसी देखि विचारि हिय है यह मतो प्रवीन ॥

शब्दार्थ :—छत्तीस = विपरीत, विरुद्ध। छव तीन = मिलकर। मतो प्रवीन = चतुरों का विचार।

(४८)

तन सुखाइ पंजर करै धरै रात दिन ध्यान।
तुलसी मिटै न वासना विना विचारे ग्यान ॥

शब्दार्थ :—तन = शरीर। सुखाइ = सुखाकर। पंजर = हड्डियों का ढाँचा। वासना = इच्छा।

(४९)

गृह सुंदरि पुनि निकट कवि आँगन अमृत-मूरि ।
ते अति लघु तें लघु रहहिं, बिनु समुझे अति दूरि ॥

शब्दार्थ :—अमृत-मूरि = संजीवनी बूटी । लघु = निकट, पास ।

(५०)

दिगभ्रम जा बिधि होत है कौन भुलावत ताहि ।
जानि परत गुरु ग्यान तें सब जग संसय माँहि ॥

शब्दार्थ—दिगभ्रम = दिशाओं का भ्रम हो जाना, पूरब, पश्चिम आदि का ठीक ठीक पता न लगना । संसय = सन्देह ।

(५१)

बिना बीज तरु एक भव साखा दल फल फूल ।
को बरनै अतिसय अमित सब बिधि सकल अतूल ॥

शब्दार्थ :—भव = संसार । अमित = बेहद । अकल = जो जाना न जा सके । अतूल = जिसका अन्दाज़ा भी न किया जा सके ।

(५२)

सुक पिक मुनि गन बुध बिबुध फल आस्रित अति दीन ।
तुलसी ते सब बिधि रहित सो तरु तासु अधीन ॥

शब्दार्थ :—सुक = सुग्गा; तोता । पिक = कोयल । बुध = विद्वान् । बिबुध = देवता । फल आस्रित = इस संसाररूपी वृक्ष के फल का सहारा चाहते हैं । अति दीन = अत्यन्त ग़रीब । सब बिधि रहित = इच्छा रहित । तासु = उसके ।

(५३)

को नहिं सेवत आइ भव को न सेइ पछिताय।
तुलसी बादहिं पचत है आपुहिं आप नसाय॥

शब्दार्थ :—भव = संसार। बादहिँ = फ़िज़ूल, व्यर्थ। पचत है = मेहनत करता है।

(५४)

मृग-जल घट भरि बिबिध बिध सींचत नभ-तरु-मूल।
तुलसी मन हरखित रहत बिनहिँ लहे फल फूल॥

शब्दार्थ :—मृग-जल = झूठा आशारूपी जल, केवल झूठी आशा। नभ-तरु-मूल = आकाश के वृक्ष की जड, हवाई क़िले बाँधना, केवल कल्पनाएँ करते रहना। लहे = प्राप्त किये। मृग-जल......मूल = जो लोग केवल व्यर्थ की आशाओं पर हवाई क़िले बाँधते रहते हैं।

(५५)

गो-धन गज-धन बाजि-धन और रतन-धन खान।
जब आवत संतोख धन सब धन धूरि समान॥

शब्दार्थ :—गज = हाथी। बाजि = घोड़े। धूरि = धूल।

(५६)

भोडर सुक्ति बिभव पडिक मनि गति प्रगट लखात।
मनि भोडर अपि सुक्ति तें बिलग बिजानत तात॥

शब्दार्थ :—भोडर = अभ्रक। सुक्ति = सीप। पडिक = चाँदी मनि = रत्न। बिलग = अलग। बिजानत = जाना जाता है।

(५७)

काम क्रोध मद लोभ की जब लग मन में खान।
का पंडित का मूरखौ दोऊ एक समान॥

शब्दार्थ :—का = चाहे। दोऊ = दोनों। मद = अभिमान।

(५८)

सत-संगति सित पच्छ सम असित असंत-प्रसंग।
जानु आप कहँ चन्द्र-सम तुलसी बदत अभंग॥

शब्दार्थ :—सित पच्छ = शुक्ल पक्ष (जब चन्द्र बढ़ता है)। असित = कृष्ण पक्ष (जब चन्द्र घटता है)। असंत = दुष्ट। प्रसंग = संगति। जानु = समझो। बदत = कहता है। अभग = निश्चयपूर्वक।

(५९)

छमा बिमल बारानसी सुर-अपगा सम भक्ति।
ग्यान बिसेसर अति बिसद लसत दया सह सक्ति॥

शब्दार्थ :—छमा = क्षमा। बारानसी = काशी। सुर-अपगा = गंगा। बिसेसर = विश्वनाथ का मन्दिर। सक्ति = शक्ति, पार्वती।

(६०)

मान-सरोवर मन मधुर राम-सुजस सुचि नीर।
हरइ ब्रिजिन बुधि बिसद अति बुध नय अगम सुधीर॥

शब्दार्थ :—सुचि नीर—पवित्र जल। हरइ = दूर करेगा। ब्रिजिन = पाप। बुधि = विद्वान्। नय = नीति। अगम = अप्राप्य।

(६१)

भरत हरत दरसत सबहि पुनि अदरस सब काहु।
तुलसी सु-गुरु-प्रसाद-बल होत परम पद लाहु॥

शब्दार्थ :—भरत=पालन करता है। दरसत=दिखाई देता है। अदरस=अदृश्य। प्रसाद=प्रसन्नता। लाहु=लाभ।

भावार्थ :- सूर्य वृष्टि द्वारा जगत् को भर देता है, उसे सब देखते हैं, परन्तु जब सूर्य पुनः उस जल को बाष्प बनाकर खींच लेता है तब यह सब के लिए अदृश्य हो जाता है।

(६२)

जथा सकल अप जात अपि रबिमंडल के माहि।
मिलन तथा जिव राम पद होत तहाँ लय नाहिँ॥

शब्दार्थ :—जथा=जैसे। अप=पानी, जल। अपि=भी। लय=लीन होना।

भावार्थ :—कुछ लोग जीव का ईश्वर से एकरूप होना मुक्ति मानते हैं पर भक्त लोग उनके निकट रहने में ही मुक्ति मानते हैं। जैसे जल सूर्य की किरणों से खिंचकर सूर्य के समीप जाता है पर सूर्यरूप नहीं हो जाता वैसे ही भक्त भी ईश्वर की शक्ति से उसके पास पहुँचकर आनन्द प्राप्त करते हैं। वहाँ जाकर लय नहीं हो जाते।

(६३)

जौन तार तें अधम गति उरध तौन गति जात।
तुलसी मकरी तन्तु इव कबहुँ न करम नसात॥

शब्दार्थ :—अधम=नीची। उरध=ऊर्ध्व, ऊँची। तौन=वही। मकरी तन्तु—मकड़ी के जाले का धागा।

(६४)

काक-सुता-सुत वा सुता मिलत जननि पितु धाय।
आदि-मध्य-अवसान गत चेतन सहज सुभाय॥

शब्दार्थ :—काक-सुता-सुत = कोयल। चेतन = ब्रह्म। धाय = दौड़कर। आदि-मध्य-अवसान = प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल।

(६५)

सेवक पद सुख-कर सदा दुख-द सेव्य-पद जान।
यथा बिभीखण रावणहिँ तुलसी समुझु प्रमान॥

शब्दार्थ :—सेव्य = मालिक।

(६६)

जानु बस्तु असथिर सदा मिटत मिटाये नाहिँ।
रूप नाम प्रगटत दुरत समुझि बिलोकहु ताहि॥

शब्दार्थ :— जानु = समझो। असथिर = अस्थिर। दुरत = छिपते हैं, नष्ट होते हैं। बिलोकहु = देखो।

भावार्थ :—किसी वस्तु का मूल स्वरूप नष्ट नहीं होता किन्तु बाहर से दिखनेवाला रूप और नाम नष्ट होता है। यही वस्तु की अस्थिरता है।

(६७)

तौ लगि हम तें सब बड़ो जौ लगि है कछु चाह॥
चाह-रहित कहँ को अधिक पाय परम-पद थाह॥

शब्दार्थ :—चाह = इच्छा। को = कौन। परम-पद = ईश्वर। थाह = पता।

(६८)

चामीकर भूषन अमित करता करतव भेद।
तुलसी जे गुरु-गम-रहित ताहि रमत अति-खेद ॥

शब्दार्थ :—चामीकर = सुवर्ण, सोना। भूषण = गहने। अमित = बहुत-से। करतव = काम। गुरु-गम-रहित = जिसने गुरु नहीं किया है। रमत = उसमें फँस जाते हैं। अति-खेद = यह बड़े खेद की बात है।

(६९)

एकै रूप कुलाल को माटी एक अनूप।
भाजन अमित विसाल लघु तो करता मन-रूप ॥

शब्दार्थ :—कुलाल = कुम्हार। भाजन—बर्तन।

भावार्थ :—कवि ने यहाँ दिखाया है कि एक ही प्रकृति से परमात्मा अनेक रूप रच लेता है।

(७०)

ब्राह्मन बर विद्या-विनय सुरुति-विवेक-निधान।
पथ-रति अनय-अतीत मति सहित दया स्रुति-मान ॥

शब्दार्थ :—सुरुति = ध्यान। पथ-रति = धर्ममार्ग से प्रेम करने वाला। अनय-अतीत = अनीति से दूर। स्रुति-मान = वेदज्ञ।

भावार्थ :—कविवर तुलसीदास चार वर्णों के गुण-कर्म कहते हुए इस दोहे में ब्राह्मण का वर्णन करते हैं। जो श्रेष्ठ विद्या, नम्रता, ध्यान (भक्ति) ज्ञान आदि गुणों से युक्त मार्ग से प्रेम करनेवाला है, अनीति के मार्ग से दूर है। और दयालु तथा वेदज्ञ है, वह ब्राह्मण है।

विशेष :—गीता में ब्राह्मण का यह लक्षण दिया है :—

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ १८. ४२.

मनुस्मृति में ब्राह्मण का यह लक्षण है :—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहं चैवं ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ १. ८८.

(७१)

बिनय छत्र सिर जासु के प्रति-पद पर-उपकार ।
तुलसी सो छत्री सही रहित सकल-व्यभिचार ॥

भावार्थ :—जिसके सिर पर विनयरूपी छत्र है और पद पद पर उपकाररत है, तथा सब पापों से रहित है, तुलसी जी कहते हैं, वही ठीक क्षत्रिय है ।

(७२)

बैस्य बिनय मगु पगु धरै हरै कटुक बर बैन ।
सदय सदा सुचि रुचि सरल ताहि अचल सुख ऐन ॥

शब्दार्थ :—मगु = मार्ग । पगु = पाँव । हरै = दूर करे । कटुक = कड़ुए । बैन = वचन । सदय = दयालु । सुचि = पवित्र ।

(७३)

सूद्र छुद्र पथ परिहरै हृदय बिप्र-पद मान ।
तुलसी मन समता सुमति सकल जीव सम जान ॥

शब्दार्थ :—छुद्र पथ = बुरा रास्ता । परिहरै = छोड़ देवे ।

विशेषार्थ :—गीता में शूद्र का लक्षण यह है :—

परिचर्य्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् । १ । ९४

मनुस्मृति में लक्षण इस प्रकार है :—

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥ १. ९१

(७४)

जथा लाभ संतोख-रत गृह मग बन सम रीति।
ते तुलसी सुख-मय सदा जिन तन विभव बिनीति ॥

शब्दार्थ :—जथा......रत = जो सहज में मिल जाय उसी में प्रसन्न रहने वाला। मग = रास्ता। विभव = ऐश्वर्य। विनीति = नम्रता।

(७५)

कोटिन साधन के किए अन्तर मल नहिं जाइ।
तुलसी जौ लगि सकल गुन सहित न करम नसाइ ॥

शब्दार्थ :—साधन = उपाय। अन्तर = भीतरी हृदय का। जौ लगि = जब तक। नसाइ = क्षीण होता।

(७६)

प्रथम ग्यान समुझै हिए बिधि निखेद ब्यवहार।
उचितानुचितहिं हेरि हिय करतब करइ सँभार ॥

शब्दार्थ :—विधि = धर्म। निखेद = पाप। करतब = कार्य।

भावार्थ :—मनुष्य पहले शास्त्र की बातें हृदय में समझ ले, फिर शास्त्रानुकूल विधि को और त्याज्य कर्मों को समझ ले। फिर उचित और अनुचित को हृदय में बैठाकर सावधानी से अपना कर्त्तव्य-पालन करे।

(७७)

उर डर अति लघु होन की भौ लघु सुरति भुलानि।
स्वरन-लाहु लखि परत नहिँ लखत लोह की हानि॥

शब्दार्थ :—भौ लघु......भुलानि = क्षुद्र संसार के प्रेम में डूबा हुआ है। स्वरन-लाहु = सोने का लाभ। लखि...नहिँ = नहीं दिखाई पड़ता।

भावार्थ :—मनुष्य मिथ्या मान-मर्यादा आदि का इतना ध्यान रखते हैं कि उन्हें हृदय में सदा यही भय लगा रहता है कि हमें कोई छोटा न कहे। संसार की छोटी छोटी बातों में सुरति भुला दी है। ईश्वर-भक्ति के द्वारा स्वर्ण-लाभ उन्हें दिखाई नहीं देता, परन्तु मिथ्या मान-आदि में फँसकर लोहे की हानि उन्हें दिखाई पड़ती है।

(७८)

दुखिया सकल प्रकार सठ समुझि परत तेहि नाहिँ।
लखत न कंटक मीन जिमि असन भखत भ्रम माहिँ॥

शब्दार्थ :—सठ = मूर्ख। कंटक = काँटा। मीन = मछली। लखत न = नहीं देखती। असन भखत = आटा खाने के समय। भ्रम = धोखा।

(७९)

तुलसी निज मन-कामना चहत सून कहँ सेइ।
बचन गाय सब के बिबिध कहहु पयस के देइ॥

शब्दार्थ :—सून = शून्य, ख़ाली। सेइ = सेवा करके। बचन गाय = नक़ली गाय, झूठी गाय। पयस = दूध। के = कौन।

(८०)

प्रेम बैर अरु पुन्य अघ जस अपजस जय हान।
बात बीज इन सबन को तुलसी कहहिं सुजान॥

शब्दार्थ :—अघ = पाप। हान = हानि, नुक़सान। बात = बोलना। बीज = कारण।

(८१)

बंचक-विधि-रत नय-रहित बिधि हिंसा अति लीन।
तुलसी जग महँ विहित बर नरक-निसेनी तीन॥

शब्दार्थ :—बंचक..... रत = ठग। नय-रहित = अनीति करनेवाला। बिधि... ..लीन = हिंसक। निसेनी = सीढ़ी, रास्ता।

(८२)

सदा भजन गुरु साधु द्विज जीव-दया सम जान।
सुख-द सु-नय-रत सत्य-व्रत सरग सप्त सोपान॥

शब्दार्थ :—सरग = स्वर्ग। सोपान = सीढ़ी।

(८३)

तब लगि जोगी जगत-गुरु जब लग रहै निरास।
जब आशा मन में जगी जग गुरु जोगी दास॥

शब्दार्थ :—निरास = इच्छारहित। जग = संसार। गुरु = गुरु हो जाता है। जोगी दास = योगी सेवक हो जाता है।

(८४)

बरखत हरखत लोग सब करखत लखै न कोइ।
तुलसी भूपति भानु-सम प्रजा-भाग-बस होइ

शब्दार्थ :—बरखत = वर्षा करते समय, दान देते समय। हरखत = प्रसन्न होते हैं। करखत = खींचते समय, कर लेते समय। लखै = देखे। न कोई = कोई नहीं। भानु-सम = सूर्य के समान।

भावार्थ :—सूर्य संसार से पानी खींचता है और वर्षा भी करता है। उसके पानी बरसाने पर तो सब लोग प्रसन्न होते हैं पर उसका पानी खींचना किसी को दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार राजा भी होना चाहिए कि कर लेते समय किसी को कष्ट मालूम न हो और दान से सबको लाभ पहुँचे।

(८५)

समय परे सु पुरुख नरहिँ लघु करि गनिय न कोइ।
नायक पीपर-बीज-सम बचै तो तरु-बर होइ॥

शब्दार्थ :—समय परे = विपत्ति के समय पर। लघु = छोटा। गनिय = समझो। तरु-बर = बड़ा वृक्ष।

(८६)

नीच निचाई नहिँ तजइ जौ पावइ सत-संग।
तुलसी चदन बिटप बसि बिनु बिख भै न भुअंग॥

शब्दार्थ :—बिटप = वृक्ष। बसि = रहकर। बिनु = बिना। भै = हुए। भुअंग = भुजग, सर्प।

(८७)

तुलसी साथी बिपति के बिद्या, बिनय, बिबेक।
साहस सु-करित, सत्य-ब्रत राम-भरोसो एक॥

शब्दार्थ :—बिबेक = ज्ञान। सु-करित = अच्छे कर्म।

(८८)

जो मूरख उपदेस के होते जोग जहान।
दुरजोधन कहँ बोधि किन आए स्याम सुजान॥

शब्दार्थ :—जोग = योग्य। बोधि = बोध। किन = क्यों नहीं। सुजान = बुद्धिमान्, सज्जन। स्याम = कृष्ण।

भावार्थ :—मूर्खों पर उपदेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यदि मूर्ख उपदेश पाने के योग्य होते, तो दुर्योधन को श्रीकृष्ण जैसे सज्जन पुरुष के समझाने पर बोध क्यों नहीं हुआ।

विशेष : –कृष्ण जी कौरव और पांडवों की सुलह कराने के लिए दुर्योधन के पास गये थे और उसे बहुत समझाया कि उन्हें ५ गाँव ही दे दो तो वे मान जावेगे और लड़ाई न होगी, पर दुर्योधन तो लड़ाई के लिए इतना तुला बैठा था कि उसने बिना युद्ध के एक इञ्च भी ज़मीन देनी मंज़ूर न की और कृष्ण का सारा समझाना व्यर्थ हुआ।

(८९)

रीझ आपनी बूझ पर खीज बिचार-बिहीन।
ते उपदेस न मानहीं मोह-महोदधि-मीन॥

शब्दार्थ :—रीझ = प्रसन्नता। बूझ = बुद्धिमानी। खीज = नाराज़ी, क्रोध। बिचार-बिहीन = बिना बिचारें। ते = वे। मोह......मीन = अज्ञानरूपी समुद्र की मछलियाँ है। (वे उपदेश नहीं मान सकते)

(९०)

समुझि सु-नीति कु-नीति-रत जागत ही रह सोइ।
उपदेसिबो जगाइबो तुलसी उचित न होइ॥

भावार्थ :—जो नीति को समझता हुआ भी अनीति करता है वह जागता हुआ भी सोया हुआ है, उसे उपदेश देना और जगाना उचित नहीं।

(९१)

जथा अमल पावन पवन पाय सु-संग कु-संग।
गहत सु-बास कु-बास तिमि काल महीस-प्रसंग ॥

शब्दार्थ :—अमल = निर्मल। पावन = पवित्र करनेवाला। पवन = हवा। पाय = पाकर। गहत = ग्रहण करता है। सु-बास = सुगन्ध। कु-बास = दुर्गन्ध। तिमि = उसी प्रकार। काल = समय। महीस = राजा।

(९२)

सधन स-गुन स-धरम स-गन सबल सु-साँई महीप।
तुलसी जे अभिमान बिन ते त्रिभुवन के दीप ॥

शब्दार्थ :—स-धन = धन-सहित। स-गन = गण अर्थात् सेनासहित। सु-साँई = सुन्दर मालिक। दीप = श्रेष्ठ।

(९३)

तुलसी झगड़ा बड़न के बीच परहु जनि धाय।
लड़ै लोह पाहन दोऊ बीच रुई जरि जाय ॥

शब्दार्थ :—लोह पाहन = लोहा और पत्थर। लड़ै = लडते हैं, टकराते हैं। पुराने ज़माने मे आग जलाने के लिए लोहा और पत्थर टकराते थे और बीच में रुई रख लेते थे। दोनों की टक्कर से आग की चिनगारी निकलकर रुई में लग जाती थी।

(९४)

खग मृग मीत पुनीत किय बनहुँ राम नय पाल।
कुनय बालि रावन घरहि सुखद बन्धु किय काल॥

शब्दार्थ :—नय-पाल = नीति का पालन करनेवाले (राम ने)। खग = पक्षी (जटायु आदि)। मृग = पशु (सुग्रीव आदि)। मीत = मित्र। किय = किये। कुनय = बुरी नीति पर चलनेवाले (बालि और रावण)। घरहिं = घर में ही। सुखद = सुख देनेवाले। बन्धु = भाई।

(९५)

तुलसी निज कीरति चहहिं पर की कीरति खोय।
तिनके मुँह मसि लागिहै मिटिहि न मरिहैं धोय॥

शब्दार्थ :—मसि = कालिख, कलङ्क। मरिहैं = मरने पर भी।

(९६)

नीच चंग सम जानिबो सुनि लखि तुलसीदास।
ढीलि देत महि गिरि परत खैंचत चढ़त अकास॥

शब्दार्थ :—चंग = पतंग। महि = ज़मीन।

भावार्थ :—पतङ्ग की डोर ढीली कर दो तो वह गिर पड़ती है, और यदि ऊपर खैंच लो तो सिर पर चढ़ जाती है। यही दशा, तुलसीदास जी कहते हैं, नीच पुरुष की होती है। जब तक उन्हें दृष्टि से दूर किये रहो, वे कोई उपद्रव नहीं मचाते और जब उनका आदर करो तो वे सिर पर चढ़ने लगते हैं।

(९७)

मित्र क अवगुन मित्र जो पर पहँ भाखत नाहिं।
कूप छाँह जिमि आपनी राखत आपुहि माहिँ॥

शब्दार्थ :—पर पहँ = दूसरे को। भाखत = कहता। कूप = कुवाँ। छाँह = छाया।

भावार्थ :– कुवें की छाया उसी में रहती है बाहर नहीं जाती; वैसे ही मित्र भी मित्र की बुराई अपने अंदर ही रखता है किसी से कहता नहीं।

(९८)

कलह न जानब छोट करि कठिन परम परिनाम।
लगत अनल लघु नीच घर जरत धनिक-धन-धाम॥

शब्दार्थ :—कलह = लडाई, परस्पर वैर-विरोध। जानब = समझो। परिनाम = नतीजा। अनल = आग। धाम = मकान।

(९९)

दुरजन बदन कमान सम बचन बिमुंचत तीर।
सज्जन उर बेधत नहीं छमा सनाह सरीर॥

शब्दार्थ :—बदन = मुँह। कमान = धनुष। बिमुंचत = छोडता है। उर = हृदय। बेधत = छेदता। छमा = क्षमा। सनाह = कवच।

(१००)

का भाखा का संसकृत भाव चाहिए साँच।
काम जो आवे कामरी का लै करिय कमाच।

शब्दार्थ :—का = चाहे। साँच = सच्चा। कामरी = कम्बल। का = क्या। लै = लेकर। करिय = करे। कमाच = रेशमी दुशाला।

———

रहीम के दोहे

(१)

अच्युत-चरन-तरंगिनी शिव-सिरमालति-माल।
हरि न बनाओ, सुर-सरी! कीजै इन्दव-भाल॥

शब्दार्थ:—अच्युत = विष्णु भगवान्। चरन-तरंगिनी = चरणों से बहनेवाली नदी, अर्थात् गङ्गा। शिव-सिरमालति-माल = शिवजी के सिर पर मालती की माला की तरह रहनेवाली, अर्थात् गङ्गा। हरि = विष्णु। सुर-सरी = गङ्गा। इन्दव-भाल = जिनके माथे पर चन्द्रमा है, अर्थात् शिवजी।

भावार्थ:—पुराणों में लिखा है कि गङ्गा विष्णु के चरणों से निकली और फिर शिव की जटा में रही। वहाँ से राजा भगीरथ इसे संसार में लाये। गङ्गा के स्नान का भी पुराणों में बड़ा फल लिखा है, इसके स्नान से मनुष्य शिवरूप और विष्णुरूप हो जाता है। रहीम गङ्गा से प्रार्थना करते हैं कि हे गङ्गे! तू मुझे विष्णुरूप न बनाकर शिवरूप ही बनाना क्योंकि विष्णुरूप बनने से तुम पाँव की नदी कहलाओगी यह अनुचित है, इसलिए तुम मुझे शिव बनाओ ताकि मैं फिर उस हालत में भी तुम्हें सिर पर ही रक्खूँ।

अलंकार—काव्यलिङ्ग।

(२)

धूर उड़ावत सीस पै, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि-पतनी तरी, सो ढूँढ़त गजराज॥

शब्दार्थ :—धूर = मिट्टी, धूल । सीस = शिर । केहि काज = किस लिए । रज = धूल । मुनि-पतनी = अहिल्या नाम की गौतम ऋषि की स्त्री । तरी = मुक्त हुई । गजराज = हाथी ।

भावार्थ :—इस दोहे का पूर्वार्ध प्रश्न है और उत्तरार्ध उत्तर । सूँड़ से धूल उड़ाना और सिर पर डालना यह हाथियों का स्वभाव होता है । इसी पर कोई प्रश्न करता है कि यह हाथी अपने सिर पर धूल क्यों डाल रहा है ? इसका उत्तर रहीम देते हैं कि जिस भगवान् के चरणों की धूल से अहिल्या की मुक्ति हो गई थी उसी धूल को यह हाथी भी अपनी मुक्ति के लिये ढूँढ़ रहा है ।

अलंकार—अतिशयोक्ति ।

विशेष :—अहिल्या गौतम ऋषि की स्त्री थी । किसी कारण ऋषि ने उसे शाप देकर पत्थर बना डाला था और कहा था कि जब तक भगवान् राम के पाँव की धूल का तुम्हें स्पर्श न होगा तब तक तुम इसी तरह पत्थर बनी रहोगी । जब रामावतार हुआ तब राम के चरणों की धूल छूकर उसकी मुक्ति हुई ।

(३)

जे गरीब सों हित करें, धनि रहीम ते लोग ।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग ॥

शब्दार्थ :—हित = प्रेम । धनि = धन्य । कहा = क्या । बापुरो = बेचारा । मिताई = मित्रता । जोग = योग्य ।

विशेष :—सुदामा एक ग़रीब ब्राह्मण था किन्तु कृष्ण के साथ पढ़ता था इसलिए कृष्ण से मित्रता थी और कृष्ण ने भी उस मित्रता को ख़ूब ही निभाया । जब कृष्ण द्वारिका के महाराज थे उस समय ग़रीब सुदामा फटे पुराने कपड़ों में उनसे

मिलने पहुँचा। पहरेदारों ने उसे बाहर ही रोक दिया पर ज्यों ही कृष्ण ने उसका नाम सुना वे नंगे पाँव दौड़े आये और उसे महलों में ले जाकर उसका बड़ा आदर-सम्मान किया।

(४)

सब कोऊ सबसों करें, राम जुहारु सलाम।
हित अनहित तब जानिए, जा दिन अटके काम॥

शब्दार्थ :—राम = हिन्दू लोग जब एक दूसरे से मिलते हैं तो "राम राम" कहते हैं। जुहारु = राजपूत लोग आपस में मिलती बार "जुहार" कहते हैं। हित = मित्र। अनहित = बैरी। अटके काम = काम पड़े।

(५)

जो रहीम भावी कतौ, होति आपने हाथ।
राम न जाते हरिन सँग, सीय न रावन साथ॥

शब्दार्थ :—भावी = होनहार। कतौ = कहीं।

(६)

दीन सबन को लखत है, दीनहिँ लखै न कोय।
जो रहीम दीनहिँ लखै, दीनबन्धु सम होय॥

शब्दार्थ :—दीन = ग़रीब। लखत = देखता है। दीनहिं = ग़रीब को। लखै = देखता। कोय = कोई। दीनबन्धु = ईश्वर। सम = बराबर।

भावार्थ :—दीन दुखिया पुरुष की कोई नहीं पर्वाह करता, उसे कोई नहीं देखता। वह सबको देखता है। इसी प्रकार देवता लोग सबको देखते हैं परन्तु उन्हें कोई नहीं

देखता। कवि ने इस दोहे में एक दीन व्यक्ति की देवता के साथ तुलना की है।

(७)

माँगे घटत रहीम पद, कितो करो बढ़ि काम।
तीन पैग बसुधा करी, तऊ वामनो नाम॥

शब्दार्थ :—माँगे = माँगने से। घटत = कम होती है। पद = इज़्ज़त। कितो = कितना। पैग = क़दम। बसुधा = पृथ्वी। वामनो = बहुत छोटे क़द का आदमी।

भावार्थ :—रहीम कहते हैं कि माँगने से मनुष्य की इज़्ज़त सदा के लिए नष्ट हो जाती है और फिर चाहे कितना ही बड़ा काम क्यों न करे पर वह बात नहीं रहती, भगवान् ने यद्यपि तीन क़दम में सारा संसार नाप लिया था पर राजा बलि से भीख माँगने की वजह से उनका नाम सदा के लिए वामन ही रह गया।

विशेष :—राजा बलि असुर-कुल का बड़ा प्रतापी राजा था। उसने यज्ञ के द्वारा इन्द्रपद छीनना चाहा। इन्द्र को बड़ा भय हुआ। उसने विष्णु से प्रार्थना की। विष्णु वामनरूप से बलि के पास गये और उससे तीन क़दम पृथ्वी का दान माँगा। बलि ने स्वीकार कर लिया। वामन देखते ही देखते बढ़ने लगे और तीन ही क़दम में उसका सारा राज्य नाप लिया।

यही भाव रहीम ने निम्नलिखित दोहों में भी कहा है :—

रहिमन माँगत बड़ेन की लघुता होत अनूप।
बलि मख माँगन को गए, धरि बावन को रूप॥
रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात।
नारायन हू को भयो, बावन आँगुर गात॥

यही भाव वृन्द के इस दोहे मे पाया जाता है :—

सवते लघु है माँगिबो, जामें फेर न सार।
वलि पैं जाँचत ही भए, बावन तन करतार॥

(८)

रहिमन कबहुँ बड़ेन के, नाहिं गर्व कर लेस।
भार धरे संसार को, तऊ कहावत सेस।

शब्दार्थ :—कबहुँ = कभी भी। बडेन के = बड़े आदमियो को। लेस = थोडा हिस्सा। सेस = शेषनाग (पुराणो की कथा के अनुसार जिनके मस्तक पर सारी पृथ्वी रक्खी हुई है), बचा हुआ, बाक़ी, अवशिष्ट, थोडा-सा, कुछ नहीं।

भावार्थ :—रहीम कहते हैं कि बड़े लोगों को अभिमान ज़रा भी नहीं होता, सारी भूमि का भार उठानेवाले नाग भी अपना नाम शेष अर्थात् (थोड़ा सा बाक़ी, बचा हुआ) रखते हैं।

(९)

हरि रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूर।
खैंचि आपनी ओर को, डारि दियो पुनि दूर॥

शब्दार्थ :—कमान = धनुप। सर = तीर। पूर = खैंचना, चढ़ाना। पुनि = फिर।

(१०)

अमरबेलि बिन मूल की प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि खोजत फिरिए काहि॥

शब्दार्थ :—अमरबेलि = यह एक लता होती है जिसकी जड़ नहीं होती और उसकी डाली यदि किसी वृक्ष पर डाल दी जाय तो वह वहीं

फैलने लगती है और उस वृक्ष को ढँक लेती है। बिन = बिना। मूल = जड। प्रतिपालत = पालन करता है। ताहि = उसको। काहि = किसको। प्रभुहिं = स्वामी को।

(११)

तरुवर फल नहिँ खात है, सरवर पियहिँ न पानि।
कहि रहीम पर-काज-हित, सम्पति सुचहिँ सुजानि॥

शब्दार्थ :—तरुवर = वृक्ष। सरवर = तालाब। पानि = जल। पर-काज-हित = परोपकार के लिए। सुचहिँ = इकट्ठी करते हैं। सुजानि = सज्जन।

विषय :—संस्कृत का एक पद्य इस दोहे का आधार है।

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
पयोमुचाम्भः क्वचिदस्ति पास्यं परोपकाराय सतां विभूतयः॥

(१२)

जो रहीम विधि बड़ किए, को कहि दूषण काढ़ि।
चन्द दूबरो कूबरो, तऊ नखत ते बाढ़ि॥

शब्दार्थ :—जो = जिनको। बिधि = परमात्मा। बड़ किए = बड़ा बनाया है। को = कौन। दूषण = दोष। काढ़ि = निकाल सकता है। कूबरो = कुबडा, टेढा-मेढ़ा। तऊ = तो भी। नखत = तारे। ते = से। बाढ़ि = बढ़कर।

भावार्थ :—जिसको विधाता ने आदर दिया है उसमें कौन दोष निकाल सकता है। चन्द्रमा क्षीण और वक्र है तब भी वह सब नक्षत्रों से प्रकाश में बढ़कर है।

विशेष :—यही भाव तुलसीजी के दोहे में है :—

होंहि बड़े लघु समय लह, तो लघु सकहिं न काढ़ि।
चन्द्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत ते बाढ़ि॥

(१३)

सर सूखे पंछी उड़ैं, औरे सरन समाहिं।
दीन मीन बिन पच्छ के, कहु रहीम कहँ जाहिं॥

शब्दार्थ :—सर = तालाब। सूखे = सूखने पर। पंछी = पक्षी। उड़ैं = उड़ जाते हैं। औरे = दूसरे। समाहिं = चले जाते हैं अर्थात् वहाँ रहने लगते हैं। दीन = गरीब। मीन = मछली। पच्छ = पक्ष। कहँ = कहाँ।

(१४)

कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहुरीत।
बिपत-कसौटी जे कसे, सोई साँचे मीत॥

शब्दार्थ :—संपति = धन होने पर। सगे = सम्बन्धी, मित्र। बहुरीत = अनेक तरह से। बिपत-कसौटी = विपत्तिरूपी कसौटी। (कसौटी पत्थर पर खरा-खोटा सोना जाँचा जाता है उसी प्रकार मित्र को जाँचने के लिए भी विपत्ति कसौटी की तरह से है)। कसे = जाँचे हुए। सोई = वही। साँचे = सच्चे। मीत = मित्र।

(१५)

तबही लग जीबो भलो, दीबो परै न धीम।
बिन दीबो जीबो जगत, हमहिं न रुचै रहीम॥

शब्दार्थ :—तबही लग = तभी तक। जीबो = जीना, प्राण रखना। भलो = ठीक है। दीबो = दान देना। धीम = मन्दा होना, बन्द होना, धीमा पड़ना। न रुचै = अच्छा नहीं लगता।

(१६)

रहिमन दानि दरिद्रतर, तऊ जाँचिबे जोग।
ज्यों सरितन सूखा परे, कुवाँ खनावत लोग॥

शब्दार्थ :—दानि = दान देनेवाला, दाता। दरिद्रतर = अत्यन्त ग़रीब (हो)। तऊ = तो भी। जाँचिबे = माँगने। जोग = लायक़ (होता है)। ज्यो = जैसे। सरितन = नदियों के। सूखा परे = सूख जाने पर। खनावत = खुदवाते हैं।

भावार्थ :—दानी निर्धन भी हो तो उससे लोग याचना कर लेते हैं। जैसे नदी सूख जाने पर लोग कुआँ खुदवा कर वहाँ पानी की याचना करते हैं, अर्थात् पानी लेते हैं।

(१७)

रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवे सुई, कहा करै तरवारि॥

शब्दार्थ :—लघु = छोटी। डारि = फेंकना। कहा करै = क्या करे।

(१८)

रहिमन अति नहिँ कीजिए, गहि रहिए कुल-कानि।
अतिसै फूलै सहिजनो, डार पात की हानि॥

शब्दार्थ :—अति नहिँ कीजिए = किसी भी काम को हद से ज़्यादा मत करो, मर्यादा के बाहर मत जाओ। गहि रहिए कुल-कानि = अपनी मर्यादा को बनाये रक्खे। अतिसै = बहुत अधिक। सहिजनो = एक वृक्ष का नाम। हानि = नुक़सान।

(१९)

बड़े पेट के भरन में, है रहीम दुख बाढ़ि।
याते हाथी हहरि के, दिए दाँत द्वै काढ़ि॥

शब्दार्थ :—बाढ़ि = ज़्यादा। याते = इसी लिए। हहरि के = घबराकर। द्वै = दो।

भावार्थ :—हाथी के दो दाँत बाहर निकले हुए होते हैं इसी पर रहीम की अनोखी सूझ है कि बड़े पेट के भरने में भारी दुःख उठाना पड़ता है और इसी लिए मानों इस हाथी ने घबराकर दो दाँत बाहर निकाल दिये हैं। दाँत दिखाने का अर्थ दीनता प्रकट करना होता है।

(२०)

कहु रहीम कैसे निभै, बेर केरु कर सङ्ग।
वे डोलत रस आपुने, उनके फाटत अङ्ग॥

शब्दार्थ :—निभै = गुज़ारा होना, निर्वाह होना। बेर = एक काँटेदार पेड। केरु = केले का वृक्ष। डोलत = हिलते हैं। रस आपुने = स्वाभाविक, साधारण तौर पर।

भावार्थ :—रहीम कहते हैं कि केला और बेर एक स्थान पर नहीं रह सकते। बेर के साधारण हिलने-डुलने से भी केले के कोमल पत्ते फट जायँगे अर्थात् दुष्ट और सज्जन का एक साथ निर्वाह नहीं हो सकता क्योंकि दुष्ट के साधारण स्वभाव से भी सज्जन को कष्ट ही होगा।

विशेष :—सूरदास ने यही भाव दिखाते हुए कहा है :—

'कहियो जाय सूर के प्रभु सों, केर पास ज्यों बेर'।

वृन्द कवि ने भी यही भाव एक दोहे में रखा है :—

दुष्ट निकट वसिए नहीं, बस न कीजिए बात।
कदली बेर प्रसङ्ग ते, छिदे कंटकन पात॥

(२१)

जो रहीम ओछो बढ़ै, तो अतिही इतराय।
प्यादे से फरजी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय॥

शब्दार्थ :—जो = यदि। ओछो = नीच मनुष्य। बढै = बडा हो जाय, धनी हो जाय। इतराय = घमण्डी हो जाता है। प्यादा = शतरञ्ज की एक गोटी। फरजी = शतरञ्ज की एक गोटी।

भावार्थ :—प्यादे से...टेढ़ो जाय। शतरञ्ज में प्यादा अगर फ़रज़ी के स्थान पर पहुँच जाता है तो वह अपनी सीधी चाल छोड़कर टेढ़ी चाल चलने लग जाता है।

(२२)

खीरा को सिर काटिके, मलियत नौन लगाय।
रहिमन करुये मुखन की, चहिए यही सजाय॥

शब्दार्थ :—खीरा = ककडी जैसा एक फल। नौन = नमक। करुये मुखन = कडुए मुँहवाले अर्थात् कडुई बात कहनेवाले। सजाय = सज़ा, दण्ड।

भावार्थ :—खीरे का कड़वापन दूर करने के लिए उसके ऊपर का थोड़ा हिस्सा काटकर और उस पर नमक लगा कर मलते हैं। रहीम कहते हैं कि कड़वे मुँहवालों के लिए यह दण्ड बहुत ठीक है।

विशेष :—नमक के लगाने से खीरे का कडुवापन हट जाता है।

(२३)

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकै कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग ॥

शब्दार्थ :—प्रकृति = स्वभाव। का = क्या। करि सकै = कर सकता है। कुसंग = बुरी संगति। विष = ज़हर। व्यापत = फैलता। भुजंग = साँप।

विशेष :—वृन्द कवि ने यही भाव अपने दोहे में इस प्रकार रखा है :—

सुजन सुसंगति संग तें, सज्जनता न तजंत।
ज्यौं भुजंगन संग तउ, चन्दन विष न धरंत ॥

संभव है रहीम के दोहे का कोई संस्कृत पद्य आधार हो। जैसे

विकृतिं नैव गच्छन्ति सङ्गदोषेण साधवः।
प्रावेष्टितं महासर्पैश्चन्दनं न विषायते ॥

(२४)

आप न काहू काम के, डार पात फल मूर।
औरन को रोकत फिरै, रहिमन कूर बबूर ॥

शब्दार्थ :—आप = खुद। काहु = किसी। मूर = जड़। कूर = दुष्ट। बबूर = एक काँटेदार वृक्ष।

भावार्थ :—रहीम कहते हैं कि दुष्ट आदमी बबूर के पेड़ की तरह होते हैं। जिस तरह बबूर का पेड़ न स्वयं किसी काम में आता है और न अपने पास के पेड़ को काम का छोड़ता है क्योंकि उसे भी वह काँटों से घेर लेता है। दुष्ट भी न तो स्वयं किसी का भला करता है और न अपने अड़ोसी-पड़ोसी ही को दूसरे का हित करने देता है।

(२५)

ससि सँकोच साहस सलिल, मान सनेह रहीम।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात है, घटत घटत घटि सीम ॥

शब्दार्थ :—ससि = चन्द्रमा। सँकोच = शर्म। साहस = हिम्मत। सलिल = पानी, जल। मान = इज़्ज़त। सनेह = प्रेम। सीम = सीमा।

(२६)

दुरदिन परै रहीम कहुँ, दुरथल जैयत भागि।
ठाढ़ हूजियत धूर पर, जब घर लागति आगि ॥

शब्दार्थ :—दुरदिन = बुरे दिन। परै = पड़ने पर। कहुँ = कहीं। दुरथल = दूर। जैयत = जाना चाहिए। भागि = भागकर। ठाढ़ हूजियत = खड़ा होना पड़ता है। धूर = रेत।

भावार्थ :—रहीम कहते हैं कि विपत्ति में कहीं दूर चले जाना चाहिए क्योंकि जब घर में आग लगती है तो धूल पर खड़ा होना पड़ता है।

(२७)

कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंगनाम भो धीम।
केहि की प्रभुता नहिं घटी, पर घर गए रहीम ॥

शब्दार्थ :—जलधि = समुद्र। मिलि = मिलकर। गंग · धीम = गङ्गा का अपना नाम भी नष्ट हो गया। केहि की = किसकी। प्रभुता = इज्ज़त।

भावार्थ :—रहीम कहते हैं कि दूसरों के घर जाने से किसकी इज्ज़त नहीं घटती अर्थात् सबकी घट जाती है। गङ्गा के समान संसार को पवित्र करनेवाली नदी भी समुद्र में जाते ही अपना नाम और महत्त्व नष्ट कर बैठती है।

(२८)

जेहि रहीम तन-मन लियो, कियो हिये विच भौन।
तासौं सुख दुख कहन की, रही बात अब कौन॥

शब्दार्थ :—जेहि = जिसने। हिये = हृदय। भौन = निवास। तासौ = उससे।

भावार्थ :—रहीम कहते हैं कि ईश्वर सारी बातें अच्छी तरह जानता है क्योंकि प्रत्येक मनुष्य के हृदय में उसका निवास है और तन मन पर उसी का अधिकार है फिर उस ईश्वर के आगे बार-बार रोना धोना या चिल्लाना व्यर्थ है, वह खुद ही मनुष्य के सुख और दुःख को अच्छी तरह समझता है।

(२९)

जो पुरुषारथ ते कहूँ, संपति मिलति रहीम।
पेट लागि वैराट घर, तपत रसोई भीम॥

शब्दार्थ :—पुरुषारथ = उद्योग। ते = से। कहूँ = कहीं। पेट लागि = पेट के लिए। वैराट घर = राजा विराट के घर। तपत रसोई = रसोई बनाते।

भावार्थ :—रहीम कहते हैं कि केवल उद्योग से (बिना भाग्य के) धन नहीं मिलता, यदि उद्योग से ही धन मिलता तो महा उद्योगी भीम केवल अपना पेट भरने के लिए राजा विराट के घर रसोई न बनाता।

विशेष :—कुरुराज दुर्योधन ने पांडवों को १३ वर्ष का वनवास दिया था और यह शर्त थी कि आखिरी वर्ष में यदि रहने के स्थान का भी पता लग जाय तो फिर १३ वर्ष वन में रहना पड़ेगा। इसी शर्त को पूरा करने के लिए पाँचों पांडव

और द्रौपदी १३ वें वर्ष में भेष बदलकर राजा विराट के घर रहे थे। युधिष्ठिर ब्राह्मण बने। भीम रसोइया बना। अर्जुन नाचनेवाला हुआ। नकुल ग्वाला हुआ। सहदेव सईस बना और द्रौपदी रानी की दासी बनकर रहीं।

(३०)

ज्यों रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो लगे, बढ़े अँधेरो होय॥

शब्दार्थ :—गति = हालत। दीप = दीया। कपूत = नालायक़ लडका। सोय = वही। बारे...बचपन मे और जलाने पर। उजियारो... प्रकाश और भला, सुन्दर। बढे...बडा होने पर और बुझने पर।

भावार्थ :—रहीम कहते हैं कि जिस प्रकार दीये के जलाने (बारे) पर उजियाला होता है और बुझने पर (बढ़े) अँधेरा हो जाता है उसी प्रकार नालायक़ लड़का भी जब तक (बारे) बच्चा होता है तब तक तो अच्छा लगता है पर बड़ा होने पर सब कुछ चौपट कर देता है।

अलंकार—श्लेष।

(३१)

छोटन सों सोहें बड़े, कहु रहीम यह लेख।
सहसन के हय बाँधियत, ले दमरी की मेख॥

शब्दार्थ :—लेख = विचारकर। सहसन = हज़ारों की क़ीमत के। हय = घोड़े। दमरी की = दमडी (पैसे का ८ वाँ हिस्सा) की। मेख = कील।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास।

(३२)

धनि रहीम जल पंक कहँ, लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय॥

शब्दार्थ :—धनि = धन्य है। जल पंक कहँ = कीचडवाले थोड़े पानी को। लघु = छोटे। जिय = जानवर। पियत = पीते हैं। अघाय = पेट भरकर। उदधि = समुद्र।

विशेष :—इसी भाव का वृन्द का यह दोहा है :—

अमित कथा है ही भरे, जदपि समुद अभिराम।
कौन काम के जो न तुम, आये प्यासन काम॥

(३३)

रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारिन हाथ लखि, सब समुझहिँ मद ताहि॥

शब्दार्थ :—काहि = किसको। कलारिन = शराब बेचनेवाली। लखि = देखकर। मद = शराब। ताहि = उसे।

(३४)

मुकताकर करपूरकर, चातक जीवन जोय।
एतो बड़ो रहीम जल, व्याल बदन विस होय॥

शब्दार्थ :—मुकताकर = मोती पैदा करनेवाला। करपूरकर = कपूर बनानेवाला। चातक = एक पक्षी जो केवल वर्षा ही का पानी पीता है। जोय = जो। एतो = इतना। व्याल = सर्प। बदन = मुँह।

भावार्थ :—रहीम कहते हैं कि अच्छी चीज़ भी संगति से बुरी हो सकती है। जिन पानी की बूँदों से मोती पैदा होते हैं और जिनसे कपूर तैयार होता है वे ही अमूल्य पानी की बूँदे साँप के मुँह में गिरकर विष बन जाती हैं।

(३५)

रहिमन अँसुआ नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ॥

शब्दार्थ :—अँसुआ = आँसू। नयन ढरि = आँखों से निकल कर। जिय = हृदय। करेइ = कर देते हैं। जाहि = जिसे। निकारो = निकालो। गेह = घर। ते = से। कस न = क्यो नहीं। भेद = गुप्त बात। कहि देइ = कह देगा।

(३६)

गुन ते लेत रहीम जन, सलिल कूप तें काढ़ि।
कूपहुँ तें कहुँ होत है, मन काहू कर बाढ़ि॥

शब्दार्थ :—गुन = रस्सी और विद्या, विनय आदि गुण। सलिल = पानी। ते = से। काढ़ि = निकाल। कहुँ = कहीं। काहू कर = किसी का। बाढ़ि = बढ़कर। कूप = कुआँ।

(३७)

अमी पियावत मान बिन, रहिमन मोहि न सुहाय।
मान सहित मरिबो भलो, जो बिस देय बुलाय॥

शब्दार्थ :—अमी = अमृत। पियावत = पिलाता है। मान = इज़्ज़त। बिन = बिना। मोहि = मुझे। सुहाय = अच्छा लगता।

(३८)

रहिमन वे नर मर चुके, जो कहुँ माँगन जाहिँ।
उन ते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिँ॥

शब्दार्थ :—माँगन जाहिँ = कुछ माँगने के लिए जाते हैं। मुए = मर गये। निकसत = निकलती है।

(३९)

जाल परे जल जात वहि, तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर की, तऊ न छाड़ति छोह ॥

शब्दार्थ :—मोह = प्रेम। मछरी = मछली। तऊ = तो भी। छाडति = छोड़ती है। छोह = प्रेम, स्नेह।

विशेष :—वृन्द ने ऐसा ही एक दोहा रचा है :—

प्रेमी प्रीत न छाँड़हीं, होत न पन तें हीन।
मरे परेहू उदर में, ज्यों जल चाहत मीन ॥

तुलसीदास का भी एक दोहा यहाँ उद्धृत किया जाता है: —

मीन काट जल धोइए, खाये अधिक पियास।
तुलसी प्रीत सराहिए, मुए मीत की आस ॥

(४०)

खैर खून खाँसी खुसी, बैर प्रीति मद-पान।
रहिमन दाबे ना दबे, जाने सकल जहान ॥

शब्दार्थ :—खैर = ख़ैरियत, कुशल। खून = हत्या। मद-पान = शराब पीना। दाबे = छिपाने से।

(४१)

गगन चढ़ै फिर क्यों तिरै, रहिमन बहरी बाज।
फेरि आय बधन परै, पेट अधम के काज ॥

शब्दार्थ :—गगन = आकाश। चढ़ै = चढ़ता है। तिरै = उतरता है। बहरी बाज = एक अच्छी जाति का बाज़ जो पक्षियों को मार डालता है। अधम = नीच।

(४२)

काज परै कछु और है, काज सरै कछु और।
रहिमन भडरिन के भए, नदी सिरावत मौर॥

शब्दार्थ :—काज परै=काम पड़ने पर। काज सरै=काम पूरा होने पर। भडरिन=विवाह। सिरावत=बहा दिया जाता है। मौर=मुकुट, जो विवाह के समय धारण किया जाता है।

भावार्थ :—अपना काम निकल जाने पर मनुष्य का व्यवहार बदल जाता है। विवाह के समय जिस मौर को सिर पर पहनते हैं, कार्य हो जाने पर वही मौर नदी में बहा दिया जाता है।

(४३)

रहिमन लाख भली करो, अगुनी अगुन न जाय।
राग सुनत पय पियत हूँ, साँप सहज धरि खाय॥

शब्दार्थ : -अगुनी=दुष्ट। अगुन=दुष्टता। राग=गीत। पय=दूध। सहज=स्वभाव से ही।

(४४)

जैसी परै सो सहि रहै, कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत सब, सीत घाम अरु मेह॥

शब्दार्थ :—जैसी=जिस तरह की (विपत्ति)। परै=पड़ती है। देह=शरीर। सीत=ठण्ढ। घाम=धूप। मेह=वर्षा।

(४५)

कदली सीप भुजंग मुख, स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन॥

शब्दार्थ :—कदली = केला। सीप = एक समुद्र का छोटा जानवर जिसमें से मोती निकलता है। भुजंग = सर्प। स्वाति = एक नक्षत्र का नाम। तैसोई = वैसा ही। दीन = दिया है।

भावार्थ :—रहीम कहते हैं कि मनुष्य जैसी संगति में बैठेगा वैसा ही फल उसे मिलेगा। स्वाती नक्षत्र में वर्षा हुआ पानी केले में पड़कर कपूर होता है, सीप में मोती बनता है और साँप के मुँह में विष बन जाता है। यह संगति का प्रभाव है।

विशेष :—यही भाव सूरदास के नीचे लिखे दोहे में पाया जाता है :—

सीप गयो मुक्ता भयो, कदली भयो कपूर।
अहिफन गयो तो विष भयो, संगत के फल सूर॥

(४६)

रहिमन तीन प्रकार तै, हित अनहित पहिचान।
परबस परै परोस बसि, परै मामिला जान॥

शब्दार्थ :—हित = मित्र। अनहित = वैरी। परबस परै = पराधीन होने पर। परोस बसि = पड़ोस मे रहकर। परै मामिला = कोई मामला, मुक़दमा पड़ने पर।

(४७)

सीत हरत, तम हरत नित, भुवन भरत नहिँ चूक।
रहिमन तेहि रबि को कहा, जो घटि लखै उलूक॥

शब्दार्थ :—सीत = ठण्ड। हरत = दूर करता है। तम = अँधेरा। भुवन = संसार। भरत = पालन करता है। नहिँ चूक = बिना भूले चूके। रबि = सूर्य। कहा = क्या। घटि = कम। लखै = देखता है। उलूक = उल्लू।

विशेष :—यही भाव वृन्द कवि ने इस प्रकार रखा है :—

मूरखगन समुझैं नहीं, तौ न गुनी में चूक।
कहा भयो दिन को बिभौ, देखै जौ न उल्लूक॥

(४८)

मथत मथत माखन रहै, दही मही बिलगाय।
रहिमन सोई मीत है, भीर परै ठहराय॥

शब्दार्थ :—मही = छाछ, मठा। बिलगाय = अलग हो जाता है। सोई — वही। मीत = मित्र। भीर परै = आपत्ति पडने पर। ठहराय = साथ देवे।

(४९)

यों रहीम गति बड़न की, ज्यों तुरंग व्यवहार।
दाग दिवावत आपु तन, सही होत असवार।

शब्दार्थ :—गति = हालत। तुरंग = घोडा। दाग = गरम लोहे की छाप। आपु तन = अपने शरीर।

भावार्थ :—पुराने ज़माने में घोड़े को बेचने के समय उसके शरीर पर बिक्री की छाप लगाई जाती थी और वह छाप सवार को सही का काम देती थी अर्थात् उस दाग़ का घोड़ा बिक्री का समझा जाता था। इसी प्रकार बड़े लोग भी अपने आप कष्ट सहकर भी दूसरों का उपकार करते हैं।

विशेष :—यह प्रथा राजा टोडरमल ने अकबर के राज्य में चलाई थी।

(५०)

रहिमन निज मन की व्यथा, मन ही राखौ गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहै कोय॥

शब्दार्थ :—व्यथा = दुःख। गोय = छिपाकर। अठिलैहैं = अभिमान करेंगे।

(५१)

रहिमन बिपदा तू भली जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में, जानि परै सब कोय॥

शब्दार्थ :—तू = भी। भली = अच्छी। थोरे = थोड़े। हित = मित्र। अनहित = शत्रु।

(५२)

माँगे मुकरि न को गयो, केहि न त्यागियो साथ।
माँगत आगे सुख लह्यो, ते रहीम रघुनाथ॥

शब्दार्थ :—माँगे = माँगने से। मुकरि = नट जाना, ना कर देना। मुकरि न को गयो = कौन ना नहीं कर देता अर्थात् सभी ना कर देते हैं। माँगत आगे सुख लह्यो = माँगने से पहले ही सुख मिल गया।

विशेष :—कहा जाता है कि श्रीरामचन्द्र ने विभीषण को लंका का राज्य, बिना उसके माँगने पर, दे दिया।

(५३)

मान सहित बिष खाय के, संभु भए जगदीस।
बिन आदर अमृत भख्यो, राहु कटायो सीस॥

शब्दार्थ :—मान = इज्जत। जगदीस = संसार के पूज्य स्वामी। भख्यौ = पीया। राहु = एक असुर का नाम जो छल से अमृत पी रहा था।

विशेष :—देवता और असुरों ने एक बार अमृत के लिए समुद्र मथना शुरू किया। शुरू में विष निकला। उसे देखकर सब डर गये। कोई उसे न पी सका। आख़िर सब देवताओं की

विनय पर शिव जी ने उसे पी लिया और उसी दिन से महादेव अर्थात् बड़े देवता कहलाये। बाद में अमृत निकला। देवता लोग असुरों को उनका हिस्सा देना नहीं चाहते थे, इसलिए छल किया गया और असुरों को एक दूसरी पंक्ति में बैठाकर विष्णु ने कपट भेष से देवताओं को अमृत पिलाना शुरू किया। राहु नाम का एक असुर बड़ा चालाक था। वह चुपचाप देवताओं की श्रेणी में आ बैठा और अमृत पी लिया पर तुरन्त ही सूर्य ने संकेत किया और भगवान् विष्णु ने उसका सिर काट दिया। परन्तु उसका रुंड राहु और सिर केतु के रूप में अमर हो गये।

(५४)

रहिमन रिस को छाँड़के, करौ गरीबी भेस।
मीठे बोलो नै चलो, सबै तुम्हारो देस॥

शब्दार्थ :—नै चलो = झुककर चलो। सबै = सारा।

(५५)

जलहिँ मिलाय रहीम ज्यों, कियो आपु सम छीर।
अँगवहि आपुहि आप लखि, सकल आँच कै भीर॥

शब्दार्थ := जलहिँ = पानी का। आपु सम = अपने समान। छीर = दूध। अँगवहि = अपने शरीर पर सहता है। आपुहि आप = अपने आप। भीर = दुःख।

भावार्थ :—रहीम कहते हैं कि दूध जल को अपने में मिलाकर अपने समान बना लेता है और दूध भी आग का सारा कष्ट अपने सिर लेता है। मित्रता भी ऐसी ही होनी चाहिए।

(५६)

जो घर ही में घुसि रहे, कदली-सुवन सुडील।
तौ रहीम तिन ते भले, पथ के अपत करील॥

शब्दार्थ :=कदली-सुवन = केले के सुन्दर बन। सुडील = सुडौल, बड़े बडे। पथ = रास्ता। अपत = बिना पत्तो के। करील = कैर नाम की एक कँटेदार झाड़ी जिसमें पत्ते नही होते।

(५७)

बरु रहीम कानन बसौ, असन करिय फल तोय।
बन्धु मध्यगति दीन ह्वै, बसिबो उचित न कोय॥

शब्दार्थ :—कानन = जंगल। बसौ = रहो। असन = भोजन। तोय = पानी। दीन ह्वै = ग़रीब होकर। बसिबो = रहना। उचित न कोय = ठीक नहीं है।

(५८)

करमहीन रहिमन लखौ, धँस्यो बड़े घर चोर।
चिंतत ही बड़ लाभ के, जागत ह्वइगा भोर॥

शब्दार्थ := करमहीन = बदक़िस्मत। लखौ = देखो। धँस्यो = घुसा। चिंतित = सोचते-सोचते। हुइगा = हो गया। भोर = सबेरा।

विशेष :—यही भाव सूरदास जी के नीचे लिखे पद में मिलता है :—

अँखियाँ अनजान भईं
यों भूलीं ज्यो चोर भरे घर चोरी निधन लई।
बदलत चोर भयो पछतानी, कर तें छाँड़ दई॥

(५९)

रहिमन घरिया रहट की, त्यों ओछे की दीठि।
रीतिहि सम्मुख होत है, भरी दिखावे पीठि॥

शब्दार्थ :—घरिया = छोटा घड़ा। रहट = कुएँ पर पानी खींचने का यन्त्र (अरहट)। ओछा = नीच आदमी। दीठि = नज़र। रीतिहि = ख़ाली। सम्मुख = सामने।

भावार्थ :—रहीम कहते हैं कि जिस तरह रहट का घड़ा ख़ाली होकर सामने आता है और भरकर पीठ दिखा देता है उसी तरह नीच आदमी भी ग़रीबी में ही सामने आता है और धनी होने पर बात भी नहीं करता।

(६०)

रहिमन ओछे नरन ते, तजौ बैर अरु प्रीति।
काटे चाटे स्वान के, दुहू भाँति विपरीति॥

शब्दार्थ :—ओछे = नीच। तजौ = छोड़ो। स्वान = कुत्ता। दुहू भाँति = दोनो तरह। विपरीत = ठीक नहीं, अनुचित है।

विशेष :—रहीम का अपना ही एक और दोहा इसी भाव को प्रकट करता है।

रहिमन जगत-बड़ाई की कूकुर की पहिचान।
प्रीति करै मुख चाटई, बैर करे तन हानि॥

वृन्दसतसई में भी इसी भाव का दोहा मिलता है :—

हितहू भलो न नीच को, नाहिन भलो अहेत।
चाट अपावन तन करे, काटि स्वान दुख देत॥

(६१)

पसरि पत्र झंपहि पितहिँ, सकुचि देत ससि सीत।
कहु रहीम कुल कमल के, को वैरी को मीत ॥

शब्दार्थ :—पसरि = फैलाकर। पत्र = पॅखड़ी। झंपहि = हवा करता है। पितहिँ = पिता को, जल को (जल कमलों का पिता है)। सकुचि देत = सकुचा जाते है, पॅखडी बन्द कर लेते हैं। ससि = चन्द्रमा के। सीत = ठंड से। को = कौन।

भावार्थ :—सूर्योदय पर कमल खिलता है और चन्द्रमा के शीत से संकुचित हो जाता है। एवं सूर्य, कमल का मित्र प्रमाणित हुआ और चन्द्रमा शत्रु। परन्तु सूर्य, कमल को विकसित करनेवाला सूर्य, सरोवर के जल (कमल के पिता) को सुखा देता है। सूर्य-ताप से कमल अपनी पँखुड़ियाँ फैलाकर जल की रक्षा करता है। जब चन्द्रमा की शीतल रश्मियाँ पड़ती हैं, तब कमल अपनी पॅखुड़ियाँ समेट लेता है जिससे चन्द्र-रश्मियाँ जल पर अच्छी तरह पड़ें। ये चन्द्र-रश्मियाँ जल की हितू हैं और कमल की शत्रु हैं। चन्द्रोदय होने पर समुद्र में ज्वारभाटा आ जाता है, जल में तरंगें उठने लगती हैं, परन्तु कमल मुरझा जाता है। जल और जल से उत्पन्न कमल का गाढ़ प्रेम होने पर हम उनके वंश के लिए सूर्य और चन्द्रमा में से किसको मित्र मानें और किसको शत्रु ?

(६२)

यह रहीम माने नहीं, दिल से नवा जो होय।
चीता चोर कमान के, नए ते औगुन होय ॥

शब्दार्थ :—नवा = झुका हुआ, नम्र। कमान = धनुष। नए ते = झुकने से। औगुन = अवगुण, ख़राबी।

भावार्थ :—चीता, चोर और कमान के झुकने से अनर्थ होता है। क्योंकि चीता आक्रमण करने के समय झुक जाता है, चोर (दुष्ट) विश्वासघात करने के लिए मधुर बोलता है, और कमान तीर छोड़ने के समय झुक जाती है।

विशेष :—यही भाव तुलसीदास ने ऐसे कहा है :—
नवन नीच की अति दुखदाई। जिमि अंकुश धनु उरग बिलाई॥

(६३)

स्वासह तुरिय जु उच्चरै, तिय है निह्चल चित्त।
पूत परा घर जानिए, रहिमन तीन पवित्त॥

शब्दार्थ :—स्वासह = जीवात्मा, प्राणवायु। तुरिय = समाधि-अवस्था, (चौथी अवस्था, जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति नामक तीन अवस्थाये साधारणतः सब मनुष्यो की होती है पर योगियों की इनसे आगे चौथी समाधि अवस्था भी होती है उसी को तुरीय अर्थात् चौथी अवस्था कहते हैं)। तिय = मन की वृत्तियाँ। निह्चल = निश्चल, चंचलतारहित। चित्त = मन। पूत = पवित्र। परा = परा, पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी, ये चार वाणी के भेद हैं। इनमें से परा नामक वाणीभेद को केवल योगी ही जान सकते हैं, बाकी तीन साधारण मनुष्य-समाज में प्रचलित हैं। तीन = मन, बुद्धि, अहंकार; सत्त्व, रज और तम नाम तीन गुण जिनसे सृष्टि रची जाती है।

भावार्थ :—जब जीवात्मा योग के द्वारा समाधि की अवस्था में पहुँच जाता है तब वह तीनों गुणों से रहित हो जाता है, उसका चित्त निश्चल और अहंकार आदि दोषों से

मुक्त हो जाता है। परा वाणी का साक्षात्कार होने से उसके मन, बुद्धि और अहंकार सब पवित्र हो जाते हैं।

(६४)

रहिमन बहु भेषज करत, व्याधि न छाँड़त साथ।
खग मृग बसत अरोग बन हरि, अनाथ के नाथ॥

शब्दार्थ :—बहु = बहुत। भेषज = दवाई। व्याधि = रोग, बीमारी। खग = पक्षी। मृग = पशु। अरोग = नीरोग। बन = जंगल।

विशेष :—तुलसीदास जी ने यह भाव इस प्रकार कहा है :—

राम भरोसे जो रहें, परबत पै हरियायँ।
'तुलसी' बिरवा बाग के सींचे ही मुरझायँ॥

(६५)

भजौं तो काको मैं भजउँ, तजउँ तो को है आन।
भजन तजन ते बिलग है, तेहि रहीम तू जान॥

शब्दार्थ :—भजौं = भजन करूँ। काको = किसको। भजउँ = भजन करूँ। तजउँ = त्यागूँ, छोड़ दूँ। को है = कौन है। आन = दूसरा। बिलग = अलग।

(६६)

रहिमन तब लगि ठहरिए, दान मान सम्मान।
घटत मान देखिय जबहिं, तुरतहि करिय पयान॥

शब्दार्थ :—सम्मान = इज़्ज़त। तुरतहि = तत्काल। पयान = प्रयाण, चले जाना।

(६७)

रहिमन असमय के परै, हित अनहित ह्वै जाय।
बधिक बधै मृग बान सों, रुधिरै देत बताय॥

शब्दार्थ :—असमय = बुरा समय। परै = पड़ने पर। हित = मित्र अनहित = बैरी। बधिक = शिकारी। बधै = मारता है। बान सो = तीर से। रुधिरै = ख़ून ही (उस मृग को) देत बताय = बतला देता है।

भावार्थ :—ख़ून देखकर शिकारी मृग का पता लगा लेता है।

विशेष :—यही भाव सूरदास जी न इस प्रकार कहा है :—

कुसमय मीत काको कवन।
ब्याध मिरगा बाण बेध्यो, कोटि कानन गवन।
अंग सौणित भयो बैरी, खोज दीनो तवन॥

(६८)

ज्यों नाचत कठपूतरी, करम नचावत गात।
अपने हाथ रहीम ज्यों, नाहीं अपने हाथ॥

शब्दार्थ :—करम = भाग्य। गात = शरीर। अपने .....हाथ = रहीम कहते हैं कि मनुष्य के अपने हाथ भी अपने क़ाबू में नहीं रहते।

(६९)

पात पात कर सींचिबो, बरी बरी कर लौन॥
रहिमन ऐसी बुद्धि ते, काज सरैगो कौन॥

शब्दार्थ :—सींचिबो = सींचना। लौन = नमक। सरैगो = सिद्ध होगा।

भावार्थ :—रहीम कहते हैं कि यदि (जड़ को छोड़कर) एक एक पत्ते को पानी दिया जाय और (दाल पीसते समय नमक न डालकर) एक एक बड़ी पर नमक लगाया जाय तो कहाँ तक काम चल सकता है अर्थात् ऐसी बुद्धि से काम नहीं चल सकता।

विशेष :—तुलसीदास जी ने यह भाव इस प्रकार प्रकट किया है।

पात पात को सींचनो, बरी बरी को लौन।
'तुलसी' खोटे चतुरपन, कलिदुह के कहु कौन॥

(७०)

रहिमन कठिन चिताहु ते, चिन्ता कहँ चित चेत।
चिता दहति निर्जीव कहँ, चिन्ता जीव-समेत॥

शब्दार्थ :—चिताहुते = चिता से भी। दहति = जलाती है। निर्जीव = मुर्दा। कहँ = को।

भावार्थ :—चिता मृतक को जलाती है, परन्तु चिन्ता जीवित को।

विशेष :—चिता चिंता समाख्याता विन्दुमात्रविशेषतः।
चिता दहति निर्जीवं चिंता दहति सजीवकम्॥

(७१)

एकै साधै सब सधै, सब साधै सब जाय।
रहिमन सींचे मूल को, फूलै फलै अघाय॥

शब्दार्थ :—साधै = सिद्ध करना, वश में करना। मूल = जड़। अघाय = खूब।

(७२)

घर डर गुरु डर बंस डर, डर लज्जा डर मान।
डर जेहि के जिय में बसै, तिन पाया रहमान॥

शब्दार्थ :—मान = इज़्ज़त। रहमान = ईश्वर। वंस = कुल। तिन = उन्होने।

(७३)

रहिमन ओछे नरन ते, होत बड़े नहिँ काम।
मढ़ौ दमामो न बनै, सौ चूहे के चाम॥

शब्दार्थ :—मढौ = बनाया जाना। दमामो = ढोल। चाम = चमडा।

विशेष :—यही भाव बिहारी कवि ने इस प्रकार कहा है :—
कैसे छोटे नरन तें, सरत बड़न को काम।
मढ़्यो दमामों जात क्यों, कहि चूहे के चाम॥

(७४)

रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरै, मोती मानुष चून॥

शब्दार्थ :—पानी—चमक, इज़्ज़त, जल। मोती का पानी चमक, मनुष्य का पानी इज़्ज़त और चूने में पानी न हो तो इनका मूल्य कुछ नहीं होता।

(७५)

रहिमन विद्या बुद्धि नहिँ, नहीं धरम जस दान।
जनम वृथा भू पर धरेउ, पशु बिन पूँछ विषान॥

शब्दार्थ :—जस = यश, कीर्ति। भू पर = भूमि पर। विपान = सींग।

विशेष :—इस दोहे का आधार चाणक्य-नीति का निम्न-लिखित संस्कृत का पद्य है।

येषां न विद्या न तपो न दानं
　　ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूता
　　मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति॥

(७६)

अनकीन्हीं बात करै, सोवत जागै जोय।
ताहि सिखाय जगायबो, रहिमन उचित न होय॥

शब्दार्थ :—अनकीन्हीं = न करने योग्य को। जागै = जगाता हुआ। ताहि = उसे। सिखाय = उपदेश देकर, शिक्षा देकर।

विशेष :—यही भाव तुलसी और वृन्द के दोहों में पाया जाता है :—

समुझि सुरीति कुरीति रत, जागत ही रह सोय।
उपदेसिवो जगाइवो, तुलसी उचित न होय॥ (तुलसी)
जान बूझ अजुगत करे, तासों कहा बसाय।
जागत ही सोवत रहे, कैसे ताहिं जगाय॥ (वृन्द)

(७७)

अनुचित उचित रहीम लघु, करहि बड़न के जोर।
ज्यों ससि के संयोग ते, पचवत आगि चकोर॥

शब्दार्थ :—बड़न के जोर = बड़ों के सहारे से। पचवत = पचाता है।

विशेष :—प्रसिद्ध है कि चकोर चन्द्रमा पर मुग्ध होकर अंगारे खा जाता है।

(७८)

ओछो काम बड़े करें, तो न बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमंत कों, गिरधर कहे न कोय॥

शब्दार्थ :—ओछो=छोटे लोग। गिरधर=पर्वत को उठानेवाला (यह विशेषण श्रीकृष्ण जी के लिए प्रयोग किया जाता है)।

विशेष :—श्रीकृष्ण जी ने गोवर्धन पर्वत को सिर्फ उठाया ही था, तो भी वे गिरिधर कहलाने लगे। हनुमान् जी पर्वत उठा कर लंका को ले गये। परन्तु उन्हे तब भी यह पदवी न मिली। इसलिए कहा है कि छोटा मनुष्य यदि बड़ा काम भी कर ले तो भी उसे बड़ाई नहीं मिलती।

कवि ने यही भाव एक और दोहे में कहा है :—

थोरो किए बड़ेन की, बड़ी बड़ाई होय।
ज्यो रहीम हनुमंत को, गिरधर कहत न कोय॥

(७९)

अंजन दियो तो किरकिरी, सुरमा दियो न जाय।
जिन आँखिन सों हरि लख्यो, रहिमन बलि बलि जाय॥

शब्दार्थ :—दियो=लगाऊँ। लख्यो=देखा है।

भावार्थ :—इन आँखों ने भगवान् के दर्शन पाये हैं इनमे वे वास करते हैं। इसलिए यदि आँखों में अंजन लगाऊँ तो वह किरकिरा होने से कष्ट देगा और सुरमा लगाते समय भी सलाई लग जाने का भय है।

(८०)

खैंचि चढ़नि, ढीली ढरनि, कहहु कौन यह प्रीति।
आज काल मोहन गही, बंस-दिया की रीति॥

शब्दार्थ :—खैंचि चढ़नि = खींचने से ऊपर चढ़ जाता है। (आकाश-दीप रस्सी से बाँधकर बाँस के साथ ऊपर से लटकाया जाता है। जब रस्सी नीचे खींची जाती है तो दीप ऊपर चढ़ जाता है।) ढीली ढरनि = जब रस्सी ढीली छोड़ दो, तो नीचे आ जाता है। (रस्सी ढीली छोड़ने से आकाश-दीप नीचे आ जाता है।) बंस-दिया = आकाश-दीप, कार्तिक मास मे छत पर बाँस से जो दिया लटकाया जाता है।

भावार्थ :—रहीम ने यह दोहा भगवान् के प्रति आकाश-दीप की उपमा देकर कहा है। वे कहते हैं जैसे कि आकाश-दीप को खींच कर पास लाना चाहो तो वह और ऊपर चढ़ जाता है तथा जब उसकी तरफ़ ढील कर दो अर्थात् रस्सी ढीली छोड़ दो तो वह पास आ जाता है इसी प्रकार रहीम कहता है कि भगवान् भक्त के बुलाने पर और मिज़ाज करते हैं और ऊपर चढ़ जाते हैं तथा बिना बुलाये स्वयं आ प्रत्यक्ष होते हैं।

विशेष :—यह दोहा रहीम ने तब कहा था जब श्रीनाथ जी स्वयं प्रसाद लेकर उन्हें दर्शन देने आये थे।

(८१)

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध-नरेस।
जापर विपदा पड़त है, सो आवत यहि देश॥

शब्दार्थ :—रमि रहे = रम रहे हैं, रह रहे हैं।

विशेष :—रहीम याचकों के लिए कल्पवृक्ष थे। रहीम ने याचकों को निराश कभी नहीं किया था। अपना सब धन इस प्रकार समाप्त कर चुके थे कि एक बार एक याचक ने आकर कुछ धन माँगा। रहीम के अपने पास कुछ था नहीं। अतएव उन्होंने रीवाँ-नरेश के पास यह दोहा उस याचक के हाथ भेज दिया। रीवाँ-नरेश ने दोहा पढ़ा और प्रसन्न होकर याचक को एक लाख रुपया दे दिया।

(८२)

जब लगि वित्त न आपुने, तब लगि मित्र न कोय।
रहिमन अंबुज अंबु बिनु, रवि नाहिंन हित होय॥

शब्दार्थ :—वित्त = धन। अम्बुज = कमल। अंबु = जल।

भावार्थ :—यह लोकप्रसिद्ध है कि सूर्य से कमल विकसित होते हैं, इसलिए सूर्य कमल का हितू हुआ। परन्तु सरोवर का जल सूख जाने पर वही हितू सूर्य शत्रु हो जाता है। कमल को सुखा देता है। यही बात मनुष्यों में है। जब तक मनुष्य के पास पैसा नहीं होता, उसका कोई मित्र नहीं बनता। जब धन प्राप्त हो जाता है, तब उसे मित्र घेरने लगते हैं।

(८३)

जैसी परै सो सहि रहे, कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत है, सीत, घाम औ मेह॥

शब्दार्थ :—जैसी परे = जैसा समय आ पड़े। सहि रहे = सहन कर ले।

भावार्थ :—जैसे धरती शीत और ग्रीष्म तथा वर्षा सब को सहन करती है इसी प्रकार रहीम कहते हैं, कि इस देह को सुख-दुख सहन करना चाहिए।

(४१)

दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब पहिचानि।
सोच नहीं बित हानि को, जो न होय हित हानि॥

शब्दार्थ :—दुरदिन = दुर्दिन, बुरे दिन। पहिचानि = जान-पहचानवाले। बित = वित्त, धन।

भावार्थ :—मनुष्य को धननाश दुखी नहीं करता यदि उसके हित की हानि न हो। उसके जो दुख का कारण है वह जान पहचान वाले लोगों का उसे भूल जाना है।

विशेष :—एक बार गंग कवि ने रहीम के पास एक दोहा लिखकर भेजा था। उसके उत्तर में रहीम ने ऊपर का दोहा लिखा था।

गंग कवि का दोहा यह था :—

सीखे कहाँ नवाब जू, ऐसी दीने दैन।
ज्यों-ज्यों कर ऊँचो करो, त्यों-त्यों नीचे नैन॥

(८५)

दोनों रहिमन एक से, जौ लौं बोलत नाहिं।
जान परत है काक पिक, ऋतु बसंत के माहिं॥

शब्दार्थ :—जौ लौ = जब तक। पिक = कोयल।

भावार्थ :—कौआ और कोयल दोनों काले होते हैं, इसलिए इनकी पहचान कठिनता से होती है। जब वसन्त-ऋतु आती है, तब कोयल की कुह-कुह से इनका भेद हो जाता है।

(८६)

धूर धरत नित सीस पै, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि-पत्नी तरी, सो ढूँढ़त गजराज॥

शब्दार्थ :—धूर = धूल, धूलि। केहि काज = किस काम के लिए। जेहि = जिस। मुनि-पत्नी = अहल्या। तरी = तर गई, पाषाण से फिर सजीव हो गई।

भावार्थ :—हाथी सदा अपने शिर पर धूलि डालता है, सो कोई पूछता है कि रहीम! इसका कारण क्या है? हाथी किसलिए ऐसा करता है? रहीम कहते हैं कि गजराज वह रज ढूढ़ता है जिससे मुनि की पत्नी अहल्या का उद्धार हुआ था।

विशेष :—किसी कारणवश गौतम ने अपनी स्त्री अहल्या को शाप दे दिया था कि तू पाषाण हो जा। शाप की अवधि उन्होंने श्रीराम का स्पर्श बताया था। सो श्रीराम के चरण-रज के स्पर्श-द्वारा अहल्या शाप से मुक्त हो गई। रहीम इसके आधार पर यहाँ कल्पना करते हैं कि गजराज श्रीराम के चरण-रज को खोजता है जिससे उसका भी उद्धार हो जाय।"

(८७)

निज कर क्रिया रहीम कहि, सिधि भावी के हाथ।
पाँसे अपने हाथ में, दाँव न अपने हाथ॥

शब्दार्थ :—निज = अपना। क्रिया = कर्म। सिधि = सिद्धि, सफलता, फल। भावी = भविष्य, विधाता।

भावार्थ :—कर्म करना अपने हाथ में है, उसका फल विधाता के अधीन है। चौपड़ खेलने के समय पासा

डालना अपने हाथ में है, परन्तु उसका दाँव विधाता के अधीन है। अतएव रहीम कहते हैं कि तू अपना कर्म किये जा, फल विधाता दे देंगे। उसकी चिन्ता न कर।

विशेष :—इस दोहे का भाव गीता के नीचे लिखे पद्य के आधार पर दिखाई देता है :—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

अर्थात् "तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, कर्म के फल में कभी नहीं। तू कर्म के फल की इच्छावाला मत हो, कर्म करने से विमुख भी मत हो।"

(८८)

बसि कुसंग चाहत कुसल, यह रहीम जिय सोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यो परोस॥

शब्दार्थ :—सोस = अफसोस। परोस = पड़ोस।

भावार्थ :—कुसंग से सज्जन को दुःख होता है।

विशेष :—रावण ने सीता को हरा था, श्रीराम ने लंका पर चढ़ाई कर दी। सेना को समुद्र पार ले जाने के लिए श्रीराम ने समुद्र पर पुल बाँधा। रावण के पड़ोसी होने के कारण निरपराध समुद्र को भी दुःख सहना पड़ा।

यही भाव वृन्द के दोहे में पाया जाता है :—

दुर्जन के संसर्ग ते, सज्जन लहत कलेस।
ज्यों दसमुख अपराध ते, बंधन लह्यो जलेस॥

(८९)

भलो भयो घर ते छुट्यो, हस्यो सीस परि खेत।
काके काके नवत हम, अपन पेट के हेत॥

शब्दार्थ :—धर = धड, रुण्ड, सिररहित शरीर। परि = गिरकर। खेत = युद्ध-भूमि।

भावार्थ :—सिर जब धड़ से कटकर युद्ध-भूमि पर गिरता है तो वह हँसकर कहता है कि भला हुआ, अब मुझे अपने पेट के लिए किसी के आगे झुकना नहीं पड़ेगा।

विशेष :—युद्ध में सिर जब कटकर गिरता है तो वह कुछ देर तक फड़कता है, कवि लोग इसी फड़कने को हँसना समझते है।

(९०)

महि नभ सर पंजर कियो, रहिमन बल अवसेप।
सो अर्जुन वैराट घर, रहे नारि के भेष॥

शब्दार्थ :—महि = पृथ्वी। नभ = आकाश। सर पंजर कियो = बाणो से ढँक दिया। अवसेप = अतुल। वैराट = विराट देश का राजा।

भावार्थ :—जिस अर्जुन ने अपने अतुल पराक्रम से पृथ्वी और आकाश को अपने तीरों से ढँक दिया था, वही अर्जुन विराट देश के राजा के घर में स्त्री का वेष धारण करके रहा।

विशेष :—श्रीकृष्ण के आज्ञानुसार अग्नि ने खाण्डव वन को जला दिया था। इन्द्र को खाण्डव वन प्रिय था। अतः इन्द्र से बाधा रोकने के लिए अर्जुन ने आकाश और पृथ्वी को बाणों से ढँक दिया।

(९१)

मंदन के मरिहू गए, औगुन गन न सराहि।
ज्यों रहीम बाघहु बधे, मरहा ह्वै अधिकाहि॥

शब्दार्थ :—मंदन = नीच पुरुष। औगुन = अवगुण। न सराहि = शान्त नहीं होता। बधे = मारे जाने पर, मारे गये। मरहा = जंगल का भूत। (प्रसिद्ध है कि बाघ-द्वारा मारे गये पुरुष की आत्मा दूसरे जन्म मे मनुष्यभक्षी बाघ का रूप धारण करके अधिक उत्पात मचाती है। उसकी शान्ति के लिए लोग ,एक चबूतरा बनाकर उसकी आत्मा की पूजा करते हैं।)

भावार्थ :—नीच पुरुष के मरने पर भी उसके अवगुणों का समूह शान्त नहीं होता। जैसे बाघ-द्वारा मारे गये पुरुष की आत्मा मनुष्यभक्षी बाघ का रूप धारण कर अधिक उत्पात मचाती है।

(९२)

यद्यपि अवनि अनेक हैं, कूपवंत सरिताल।
रहिमन मानसरोवरहिं, मनसा करत मराल॥

शब्दार्थ :—अवनि = पृथ्वी। कूपवंत = कुएँ। सरिताल = झील। मनसा = इच्छा। मराल = हंस।

भावार्थ :—यद्यपि पृथ्वी पर अनेक कुएँ हैं और अनेक झीलें हैं,तब भी हंस मानसरोवर पर ही स्वेच्छा से रहता है।

विशेष : —यही भाव तुलसीजी के दोहे में पाया जाता है :—

यद्यपि अवनि अनेक सुख, तोय तासु रसताल।
संतत तुलसी मानसर, तदपि न तजहिं मराल॥

(९३)

यो रहीम सुख दुख सहत, बड़े लोग सह साँति।
उवत चंद जेहि भाँति सों, अथवत ताही भाँति॥

शब्दार्थ :—साँति=शान्ति। उवत=उदय होता है। अथवत=अस्त होता है।

विशेष :—कवि लोगों ने प्रायः सूर्य के साथ यह उपमा दी है। जैसे सूर्य उदय और अस्त के समय एक-सा रहता है, वैसे ही बुद्धिमान् को सुख और दुःख में एक समान रहना चाहिए। रहीम ने यही भाव चन्द्रमा के साथ दिखाया है। ऐसा ही भाव उन्होंने एक और दोहे में रखा है :—

ऊगत जाही किरन सों, अथवत ताही काँति।
त्यो रहीम सुख दुख सबै, बढ़त एक ही भाँति॥

(९४)

रहिमन अपने गोत को, सबै चहत उत्साह।
मृग उछरत आकास को, भूमी खनत बराह॥

शब्दार्थ :– गोत=गोत्र, वंश, जाति। उछरत=उछलता है।

भावार्थ :–अपने अपने वंश को सब कोई चाहते हैं। मृग चन्द्रमा के वाहन हैं, इसी लिए पृथ्वी पर भी रहते हुए मृग आकाश की ओर उछलते हैं। भगवान् वराह के रूप में हिरण्याक्ष को मारकर पाताललोक से पृथ्वी को लाये थे, यही कारण है कि सूअर (वराह) भूमि को खोदते हैं। हर एक प्राणी अपने अपने वंश और जाति के अनुसार काम करता है।

(९५)

रहिमन अब वे बिरछ कहँ, जिनकी छाँह गँभीर।
बागन बिच बिच देखिअत, सेहुड़ कुंज करीर॥

शब्दार्थ := बिरछ = वृक्ष, पेड़। सेहुड = एक कटीला पौधा अर्थात् थूहर। इसका रस बच्चों के लिए लाभदायक होता है। कुंज = एक काँटेदार वृक्ष। करीर = करील।

विशेष :— यही भाव बिहारी के एक दोहे में पाया जाता है।

जिन दिन देखे वे कुसुम गई सु बीति बहार।
अब, अलि, रही गुलाब मै अपत कटीली डार॥

(९६)

रहिमन को कोउ का करै, ज्वारी, चोर, लबार।
जो पत-राखन-हार हैं, माखन-चाखन-हार॥

शब्दार्थ :—लबार = झूठा, मिथ्याभाषी। पत-राखन-हार = लाज रखनेवाला। माखन-चाखन-हार = माखन चाखनेवाले श्रीकृष्ण।

भावार्थ :—जुआरी, चोर व अवारा, कोई भी रहीम का कुछ नहीं बिगाड़ सकता यदि श्रीकृष्ण उनकी लाज रखने वाले हैं। इन्होंने ही पहले जुआरी शकुनी से पाण्डवों को बचाया था, ब्रह्मा जी से ग्वाल-बालकों को छुड़ाया था और मिथ्याभाषी दुःशासन से द्रौपदी की लाज रखी थी।

(९७)

रहिमन जिह्वा बावरी, कहिगै सरग पताल।
आपु तो कहि भीतर रही, जूती खात कपाल॥

शब्दार्थ :—बावरी = बावली, पागल। कहिगै = कह जाती है। सरग पताल = स्वर्ग पाताल; आकाश-पाताल की बातें; सच्ची-झूठी बातें।

(९८)

रहिमन पर-उपकार के, करत न यारी बीच।
मांस दियो शिवि भूप ने, दीन्हो हाड़ दधीच॥

शब्दार्थ :—शिवि=एक राजा का नाम है। हाड=हड्डियाँ। दधीचि=एक ऋषि का नाम है।

विशेष :—राजा शिवि के यज्ञों से इन्द्र को ईर्ष्या हुई। वह, यज्ञ में विघ्न डालने के लिए, अग्नि को कबूतर का और स्वयं बाज़ का रूप धारण कर कबूतर का पीछा करते हुए शिवि के यज्ञ में जा पहुँचा। कबूतर प्राण-रक्षा के लिए शिवि की गोद में बैठ गया। बाज़ ने राजा से अपना भक्ष्य माँगा परन्तु राजा ने कबूतर देने से इनकार कर दिया और कबूतर के बदले राजा ने अपना मांस देना स्वीकार किया। ज्यों ज्यो राजा अपना मांस काटते जाते थे, कबूतर भारी होता जाता था। राजा ने अपना सारा मांस काटकर तुला पर रख दिया परन्तु कबूतर के बराबर न हुआ। राजा तुला पर रखने के लिए अपना सिर काटने लगे तो इन्द्र प्रत्यक्ष हो गये और प्रसन्न होकर राजा को स्वर्ग मे भेज दिया।

देवता लोग वृत्रासुर को मारना चाहते थे परन्तु उस पर किसी अस्त्र-शस्त्र का प्रभाव नहीं होता था। देवता व्याकुल होकर भगवान् के पास गये और भगवान् की स्तुति की। भगवान् ने प्रसन्न होकर वर दिया कि दधीचि ऋषि की हड्डियो के अस्त्र से वृत्रासुर मर जायगा। देवताओ ने दधीचि ऋषि से यह निवेदन किया और उन्होने सानन्द देह त्याग कर अपनी हड्डियाँ दे दीं। देवताओ ने उन हड्डियो के अस्त्र बनाकर वृत्रासुर को मार दिया।

ये दोनों कथानक परोपकार के लिए प्रसिद्ध हैं।

(९९)

रहिमन प्रीति सराहिए, मिले होत रँग दून ।
ज्यों जरदी हरदी तजै, तजै सफेदी चून ॥

शब्दार्थ :—सराहिए = प्रशंसा करिए । जरदी = ज़रदी, पीलापन । हरदी = हलदी ।

भावार्थ :—चूना और हल्दी मिलाने से लाल रंग बन जाता है। हल्दी अपना पीलापन और चूना अपनी सफ़ेदी छोड़कर एक हो जाते हैं। रहीम कहते हैं कि ऐसी प्रीति होनी चाहिए ।

(१००)

हरि रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूर ।
खैंचि आपनी ओर को, डारि दियो पुनि दूर ॥

शब्दार्थ :—सर = शर, बाण, तीर । पूर = चढाकर ।

भावार्थ :—जैसे तीर चढ़ाकर अपनी ओर खींचते हैं और फिर दूर फेंक देते हैं, वैसे ही रहीम कहते हैं कि भगवान् ने मुझे एक बार अपनी ओर खींचकर फिर दूर फेंक दिया है ।

विशेष :—भक्तमाल मे लिखा है कि रहीम ने श्रीनाथ जी के मन्दिर में जाने में रुकावट होने पर यह दोहा कहा था ।

देखो रहीम का दोहा नं० ८० ।



बिहारीलाल

बिहारीलाल के दोहे

(१)

मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परै स्यामु हरित-दुति होइ॥

शब्दार्थ :—भव-बाधा = संसार के दुःख। हरौ = हरण करें, दूर करे। नागरि = चतुर। जा = जिसके। तन = शरीर। झाँई = परछाँहीं, आभा, झलक, ध्यान। परैं = पडने से। स्यामु = श्यामवर्ण श्रीकृष्ण, काले रंगवाला पदार्थ अर्थात् पातक, दुःख, दरिद्र आदि जिन्हे कवि लोग काले रंग का मानते हैं। हरित-दुति = हरे रंगवाला, हरा-भरा अर्थात् प्रसन्न-वदन, जिसकी कान्ति हर ली गई है अर्थात् द्युति-रहित, पाप-रहित।

भावार्थ :—इस दोहे के कई अर्थ हो सकते हैं। मूल अर्थ यह है :—

जिसके शरीर की परछाँहीं पड़ने से श्याम हरित-द्युति हो जाता है, वही चतुर राधा मेरे संसार के दुःख दूर करें।

यहाँ श्याम, हरित-दुति आदि कुछ शब्दों के कई अर्थ होने से कई भाव निकलते हैं। एक भाव यह निकलता है :—

जिसके शरीर की परछाँहीं (आभा) पड़ने से श्यामवर्ण श्रीकृष्ण हरे रंग की कान्तिवाले हो जाते हैं, वही चतुर राधा मेरे सांसारिक दुःख (बाधा) दूर करें।

यहाँ राधा के शरीर के गौर वर्ण (सुनहरा रंग) की प्रशंसा की गई है कि उसकी आभा पड़ने से श्रीकृष्ण का श्याम वर्ण हरा हो गया है। यह लोकप्रसिद्ध है कि पीला तथा नीला रंग मिलकर हरा रंग बनता है।

दूसरा अर्थ यह है :—

जिसके शरीर की झलक (आँखों में) पड़ने से श्रीकृष्ण हरे-भरे अर्थात् प्रसन्न-वदन हो जाते हैं, वही चतुर राधा मेरे साँसारिक दुःख (बाधा) दूर करें।

जिसके शरीर का (भक्त के हृदय में) ध्यान पड़ने से काले रंगवाला (अर्थात् पातक इत्यादि) हृतद्युति (अर्थात् द्युति-रहित, पापरहित) हो जाता है, वही चतुर राधा मेरे सांसारिक दुःख दूर करें।

कई 'राधा नागरि सोइ' सारे को ही संबोधन मानकर अर्थ करते हैं।

अलंकार—काव्यलिंग।

(२)

नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारि।
तज्यौ मनौ तारन-बिरदु बारक बारनु तारि॥

शब्दार्थ :—नीकी = अच्छी। दई = दी। अनाकनी = आनाकानी। फीकी = प्रभावरहित। गुहारि = प्रार्थना। तारन-बिरदु = तारनेवाले होने की विख्याति। बारक = एक बार। बारनु = हाथी को। तारि = तारकर, उद्धार कर।

भावार्थ :—एक भक्त ईश्वर को उपालम्भ देता है—हे प्रभो! आपने अच्छी आनाकानी की, मेरी तो प्रार्थना ही

निष्फल हो गई। ऐसा मालूम होता है कि मानो आपने एक बार हाथी को तारकर 'तारनेवाले' कहलवाना ही छोड़ दिया।

अलंकार—उत्प्रेक्षा। यमक।

(३)

अजौं तर्‌यौना ही रह्यौ स्रुति सेवत इक अंग।
नाक-वास बेसरि लह्यौ बसि मुकुतनु के संग॥

शब्दार्थ :—तर्यौना = कान का भूषण, तरा नही अर्थात् मुक्त नहीं हुआ। स्रुति = कान, वेद। इक अग = सदा। नाक-वास = नाक का स्थान, स्वर्गवास। बेसरि = नाक का भूषण, महाअधम प्राणी। मुकुतनु = मोती, जो मुक्त हो चुके है।

भावार्थ :—सत्संगति की महिमा श्लेष से बतलाई गई है। बिना सत्संगति से रात-दिन वेद पढ़नेवाला भी नहीं तर सका अर्थात् मुक्त नहीं हो सका, परन्तु एक महाअधम प्राणी महात्माओं की संगति से स्वर्ग का अधिकारी हुआ। तरौना एक भूषण है जो सदा कान में ही पहना जाता है और बेसर मोती के साथ नाक में पहना जाता है।

अलंकार—श्लेष और अन्योक्ति।

(४)

जम-करि-मुँह-तरहरि पर्‌यो, इहिँ धर हरि चित लाउ।
बिषय-तृषा परिहरि अजौं नरहरि के गुन गाउ॥

शब्दार्थ :—जम-करि-मुँह = यमराजरूपी हाथी के मुँह (के)। तरहरि = नीचे। पर्‌यो = पडा हुआ है। इहिँ धर = ऐसा जानकर।

हरि = परमात्मा। परिहरि = छोड़कर। अजौं = आज भी। नरहरि = नृसिंह भगवान् अथवा गुरु नरहरिदास जो बिहारीलाल के गुरु थे।

भावार्थ :—यमरूपी हाथी के मुख के नीचे तू पड़ा हुआ है, ऐसा समझकर तू भगवान् में अपने मन को लगा। अब भी विषय भोग की लालसा को छोड़ कर नृसिंह भगवान् के गुण गा। वही तुझे इस हाथी के मुख से निकाल सकते हैं।

अलंकार—रूपक, श्लेष। नृसिंह पद विशेष इस अभिप्राय से रखा गया है कि हाथी को मारने के लिए शेर ही समर्थ है अतः साभिप्राय विशेषण होने के कारण परिकर अलंकार भी है।

(५)

तो पर वारौं उरबसी, सुनि, राधिके सुजान।
तू मोहन के उर बसी ह्वै उरबसी-समान॥

शब्दार्थ :—उरबसी = उर्वशी अप्सरा। उर बसी = हृदय मे बसनेवाली। उरबसी = हृदय पर धारण करने का एक भूषण।

भावार्थ :—हे प्रवीण राधे! सुन, तू ऐसी सुन्दर है कि इन्द्र की अप्सरा उर्वशी को भी मैं तुझ पर वार दूँ। तू मोहन के हृदय में उरबसी माला के समान बस गई है।

अलंकार—यमक अलंकार परन्तु तीन पादों में होने के कारण दुष्ट हो गया है।

(६)

कौन भाँति रहिहै बिरदु अब देखिबी मुरारि।
बीधे मोसौं आइ कै गीधे गीधहिँ तारि॥

शब्दार्थ :—बिरदु = प्रशस्ति, यश। देखिबी = देखना है। बीधे = बिंधे हुए, उलझे, पाला पड़ा है। गीधे = ललचाये हुए, परचे हुए। गीधहिं = गीध, जटायु को। तारि = तारकर।

भावार्थ :—हे मुरारि! अब देखना है कि आपका विरद कैसे रहता है अर्थात् आप पतिततारण नाम को कैसे निबाहते हैं, एक गिद्ध (जटायु) को तारकर परचे हुए आप का पाला मुझसे पड़ा है। अर्थात् मैं बड़ा ही भारी पापी हूँ अतः मेरा उद्धार करना बहुत कठिन है।

अलंकार—अनुप्रास, यमक।

(७)

नहिं परागु, नहिं मधुर मधु, नहिं बिकासु इहिं काल।
अली, कली ही सौं बँध्यौ आगे कौन हवाल॥

शब्दार्थ :—परागु = फूल पर आई हुई पीली धूलि। मधु = मकरन्द, फूल का रस, ऊपर का शब्द। बिकासु = खिलावट। हवाल = दशा।

भावार्थ :—कहते हैं कि जब राजा जयसिंह राज्य-कार्यों को छोड़कर अपनी स्त्री में इतना अनुरक्त हो गया था कि कई कई महीने अन्तःपुर से बाहर नहीं निकलता था; तब बिहारी ने यह दोहा उसको लिखकर भेजा। इसको पढ़कर राजा जयसिंह की आँखें खुल गईं और बिहारी को बहुत-सा पारितोषिक देकर इसी प्रकार के बहुत से दोहे लिखने को कहा। तब बिहारी ने ये सात सौ दोहे लिखे थे।

(८)

जगतु जनायौ जिहिं सकलु, सो हरि जान्यौ नाँहि।
ज्यों आँखिनु सबु देखियै, आँखि न देखी जाँहि॥

शब्दार्थ :—जनायौ=मालूम कराया। जिहिँ=जिसके द्वारा। देखियै=देखा जाता है।

भावार्थ :—किसी आत्मज्ञानी की अपने शिष्य के प्रति उक्ति है। जिस चिन्मय ब्रह्म के द्वारा (हृदय में स्थित होने के कारण) सारे संसार का ज्ञान हुआ, उस प्रभु को तुमने नहीं जान पाया। जैसे आँखों से और सब कुछ देखा जाता है परन्तु स्वयं आँखें नहीं देखी जाती हैं।

अलंकार—उदाहरण, अनुप्रास।

विशेष :—ऐसा ही भाव वृन्द के एक दोहे में है परन्तु यह दोहा विहारी के चमत्कार को नहीं पहुँचता। देखिए,

सब देखै पै आपनो दोष न देखै कोय।
करै उजेरो दीप पै तरे अँधेरो होय॥

(९)

दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साईंहिँ न भूलि।
दई दई क्यों करतु है, दई दई सु कबूलि॥

शब्दार्थ :—दीरघ साँस=लम्बी साँस। दुख=दुःख में। सुख=सुख में। साईंहिँ=स्वामी, परमात्मा को। दई दई=हाय हाय। दई=विधाता, ईश्वर। दई=दिया। कबूलि=स्वीकार कर ले।

अलंकार—अनुप्रास, दई दई क्यों यहाँ पर वीप्सा और दई दई सु यहाँ पर यमक।

(१०)

बैठि रही अति सघन वन, पैठि सदन-तन माँह।
देखि दुपहरी जेठ की, छाँहौं चाहति छाँह॥

शब्दार्थ :—पैठि = चली गई। सदन-तन = मकानरूपी शरीर में। छाँहौं = छाया भी।

भावार्थ :—जेठ की दुपहरिया को देखकर गर्मी के डर के मारे छाया भी छाँह चाहती है, इसी लिए वह अति सघन वन में बैठ रही है, तथा घर के शरीर में घुस रही है।

अलंकार—अत्युक्ति।

(११)

बंधु भए का दीन के, को तार्यौ, रघुराइ।
तूठे तूठे फिरत हौ झूठे बिरद कहाइ॥

शब्दार्थ :—बंधु.....के = किस दुखिया के बंधु हुए हैं। को तार्यौ = किसको तारा है। तूठे.....हौ = बड़े प्रसन्न हुए फिरते हो। बिरद = प्रशंसा।

अलंकार—काकु वक्रोक्ति, वीप्सा।

(१२)

थोरैं ही गुन रीझते, बिसराई वह बानि।
तुमहूँ, कान्ह, मनौ भए, आज काल्हि के दानि॥

शब्दार्थ :—रीझते = प्रसन्न होते। बिसराई = भुला दी, छोड़ दी। बानि = आदत।

(१३)

कब कौ टेरतु दीन रट, होत न स्याम सहाइ।
तुमहूँ लागी जगत-गुरु, जग-नाइक जग-बाइ॥

शब्दार्थ :— कब्र......रट = कब्र का दीनता से भरी हुई रट से आपको पुकार रहा हूँ। जग-बाइ = संसार की हवा। तुमहूँ...... जग-बाइ = तुमको भी हे जगद्गुरु! जगन्नायक! जगत् की हवा लग गई है।

(१४)

दियौ, सु सीस चढ़ाइ लै आछी भाँति अएरि।
जापै सुखु चाहतु लियौ ताके दुखहिं न फेरि॥

शब्दार्थ :—आछी भाँति = अच्छी रीति से, प्रसन्नतापूर्वक। अएरि = अंगीकार करके। जापै = जिससे। ताके = उसके। न फेरि = अस्वीकार मत कर।

(१५)

कोऊ कोरिक संग्रहौ, कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा, बिपति-बिदारनहार॥

शब्दार्थ :—कोऊ = कोई। कोरिक = कोटिक, करोड़ के अनुमान। संग्रहौ = बटोरो, जोड़ो। लाख हजार = दस करोड़। बिपति-बिदारनहार = विपत्ति काटनेवाले।

अलकार—हेतु, अनुप्रास।

(१६)

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिँ कोइ।
बूड़्यौँ ज्यौँ ज्यौँ स्याम रँग त्यौँ त्यौँ उज्जलु होइ॥

शब्दार्थ :—अनुरागी = प्रेमी। अनुराग का रंग कवि लोग लाल मानते हैं अतः अनुरागी का अर्थ लाल रंगवाला भी होता है। गति = चाल, अवस्था। श्यामरंग = काला रंग, यह पद यहाँ श्लिष्ट है अतः दूसरा अर्थ श्रीकृष्ण का अनुराग निकलता है। उज्जलु = (१) निर्मल, पवित्र। (२) श्वेत।

भावार्थ :—इस अनुरागी (प्रेमी, लाल रंगवाले) चित्त की विलक्षण व्यवस्था को कोई समझ नहीं सकता। ज्यों ज्यों यह कृष्ण जी के अनुराग में (काले रंग) में डूबता है, त्यों त्यों निर्मल (सफ़ेद) होता जाता है।

अलंकार—श्लेष, विषम।

(१७)

जपमाला, छापैं, तिलक सरै न एकौ कामु।
मन-काँचै नाचै वृथा, साँचै राँचै रामु॥

शब्दार्थ :—जपमाला = जपने की माला। छापैं = तप्तमुद्रा, इत्यादि। मन-काँचै = कच्चे मनवाला, बिना सच्ची भक्तिवाला। साँचै = सच्ची भक्तिवाले ही से। राँचै = रंजित होता है, प्रसन्न होता है।

अलंकार—परिसंख्या, अनुप्रास।

(१८)

घर घर डोलत दीन ह्वै, जनु जनु जाचतु जाइ।
दियैं लोभ-चसमा चखनु लघु पुनि बड़ौ लखाइ॥

शब्दार्थ :—डोलत = फिरता है। दीन ह्वै = दीन होकर। जाचतु = माँगता है। लोभ-चसमा = लोभरूपी चश्मा, ऐनक। एक प्रकार का चश्मा ऐसा होता है जिसके लगा लेने से छोटी वस्तु भी बड़ी दिखाई देने लगती है।

अलंकार—निरवयव रूपक।

(१६)

मोहन मूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोइ।
बसतु सु-चित अंतर, तऊ प्रतिविंबितु जग होइ॥

शब्दार्थ :—मोहन मूरति = मोहनेवाली है मूर्ति जिसकी वह। चित अन्तर = चित्त के भीतर। तऊ = तो भी। प्रतिबिम्बितु = परछाईं। बसतु......होइ = वह बसते तो चित्त के भीतर हैं, तथापि प्रतिबिम्बित जगत् में होते हैं, अर्थात् श्यामसुन्दर के हृदय में बसने से सर्व जगत् तन्मय दिखाई देने लगता है।

अलंकार—विरोधाभास।

(२०)

आवत जात न जानियतु तेज़हिँ तजि सियरानु।
घरहँ जँवाईं लौं घट्यौ खरौ पूस-दिन-मानु॥

शब्दार्थ :—तेजहिँ = तेज को। तजि = छोड़कर। सियरानु = ठंडा हो गया है। घरहँ जँवाईं = घर का जमाई, अर्थात् वह जामाता जो ससुराल मे रहता हो। लौं = तरह। खरौ = बिलकुल। पूस-दिन-मानु = पौष मास का दिन। घट्यौ = कम हो गया है।

भावार्थ :—पौष मास में दिन छोटे हो जाते हैं, ताप भी कम हो जाता है। ससुराल में रहनेवाले जमाई की भी इज़्ज़त घट जाती है। उसका तेज नष्ट हो जाता है।

अलंकार—उपमा।

(२१)

मै समुझ्यौ निरधार, यह जगु काँचो काँच सौ।
एकै रूपु अपार प्रतिविंवित लखियतु जहाँ॥

शब्दार्थ :—निरधार=निश्चय। काँचो=कच्चा। काँच सौ= शीशे की तरह कच्चा। अपार=अनंत। एकै रूपु......जहाँ=जहाँ एक ही ईश्वर का अनन्त रूप प्रतिबिम्बित होता है।

भावार्थ :—सारा संसार शीशे के मकान के समान है। जैसे शीशे के मकान में खड़े हुए मनुष्य का प्रतिबिंब चारों ओर पड़ता है वैसे ही सारे संसार में अन्तर्यामी प्रभु रूप ही दिखाई देता है। जैसे ज़रा हिलने से सारा शीशे का मकान टूट जाता है, वैसे ही ज्ञान के द्वारा संसार से छुटकारा हो जाता है। संसार असार जान पड़ने लगता है।

(२२)

कनकु कनक तै सौगुनौ मादकता अधिकाइ।
उहिँ खाएँ बौराइ, इहिँ पाएँ हीं बौराइ॥

शब्दार्थ :—कनकु=सुवर्ण, सोना। कनक=धतूरा। मादकता= नशा। बौराइ=पागल होना। उहिँ.........बौराइ=धतूरे के तो खाने से आदमी पागल होता है, परन्तु सोने के पाने से ही पागल अर्थात् उद्धत बन जाता है।

अलंकार—कनकु कनक मे अर्थभेद के कारण यमक, व्यतिरेक।

(२३)

बड़े न हूजै गुनन बिनु बिरद-बड़ाई पाइ।
कहत धतूरे सौं कनकु, गहनौ गढ़्यो न जाइ॥

शब्दार्थ :—बिरद-बडाई=प्रशंसात्मक नाम। कनकु=सोना, धतूरा। कहत.........जाइ=(लोग यद्यपि) धतूरे को कनक (जो सोने का भी नाम होने के कारण बडा नाम है) कहते हैं पर उसके गहने नहीं बनाये जा सकते।

(२४)

तजि तीरथ, हरि राधिका-तन-दुति करि अनुरागु।
जिहिँ ब्रज-केलि-निकुंज-मग पग पग होतु प्रयागु॥

शब्दार्थ :—तन-दुति = शरीर की शोभा। करि = करो। जिहिँ = जिससे। केलि = क्रीडा। निकुंज = लताओं की झाडी। मग = मार्ग, रास्ता। पग पग = एक एक क़दम। प्रयागु = प्रयागराज, जहाँ पर गंगा और यमुना इकट्ठी होती हैं।

भावार्थ :—इस पद का यह अभिप्राय है कि गंगा का नीर श्वेत और यमुना का काला होता है वैसे ही श्रीकृष्ण जी के पाँव काले और राधा जी के गोरे इन दोनों की जब परछाँईं इकट्ठी होती है तो प्रयाग बन जाता है।

अलंकार—काव्यलिंग, उल्लास, तद्गुण।

(२५)

नाह गरजि नाहर-गरज, बोलु सुनायौ टेरि।
फँसी फौज मै बंदि-बिच हँसी सबनु तनु हेरि॥

शब्दार्थ :— नाह = नाथ, स्वामी। नाहर-गरज = सिंह की गरज। बोलु = शब्द, बोली। टेरि = ललकारकर। बंदि-बिच = क़ैद (घेरे) के बीच। सबनु = सबकी। तनु = ओर। हेरि = देखकर।

भावार्थ :—श्रीकृष्णजी (नाथ) ने सिंह की तरह गरज कर (अपना) शब्द ललकार कर सुनाया। उसे सुनकर सेना में क़ैद के बीच में घिरी हुई रुक्मिणी सबकी ओर देखकर हँस पड़ी। उसने समझा कि देखें, अब ये लोग मुझे कैसे बचाते हैं।

विशेषार्थ :—यह रुक्मिणीहरण के समय का वर्णन है। रुक्मिणी कुण्डिनपुर के राजा भीष्म की कन्या थी।

उसका विवाह राजा शिशुपाल से हो रहा था पर वह श्रीकृष्ण जी को अपना पति बनाना चाहती थी। उसने श्रीकृष्ण जी को इसकी सूचना दी और वे वहाँ चुपचाप पहुँच गये। वहाँ रुक्मिणी देवी पूजन के लिए नगर के बाहर गई। सेना का पूरा प्रबन्ध था। रुक्मिणी सेना के घेरे के बीच मे बन्दी थीं। इस समय पर श्रीकृष्ण जी ने वहाँ पहुँचकर सिंह की तरह गरज कर अपना बोल सुनाया। उसे सुनकर श्रीकृष्ण जी को आया देखकर रुक्मिणी ने सबकी ओर देखा और उपहास से कहा कि देखें, अब ये लोग मुझे कैसे बचाते हैं। श्रीकृष्ण जी ने सेना के देखते देखते रुक्मिणी का हरण किया और लाकर उससे विधि-पूर्वक विवाह किया।

(२६)

कीजै चित सोई तरे जिहिँ पतितनु के साथ।
मेरे गुन-औगुन-गननु गनौ न गोपीनाथ॥

शब्दार्थ :—जिहिँ = जिससे। साथ = समुदाय। गुन-औगुन-गननु = गुणों और अवगुणों के गणों (समूहों) को। गनौ न = मत गिनिए।

(२७)

संगति सुमति न पावहीं परे कुमति कैं धंध।
राखौ मेलि कपूर मै हींग न होइ सुगंध॥

शब्दार्थ :—सुमति = अच्छी मति, बुद्धि। न पावहीं = नहीं प्राप्त करते हैं। परे कुमति कैं धंध = दुर्बुद्धि के धंधे-झंझट मे पडकर।

भावार्थ :—दुर्बुद्धि के झंझट में फँसे हुए मनुष्य सत्संगति से भी अच्छी बुद्धि प्राप्त नहीं करते, जैसे हींग को कपूर के साथ मिलाकर रक्खो तो भी उसमें सुगंध नहीं आती।

विशेष :—यही भाव वृन्द ने एक दोहे में वर्णन किया है :—

भले वचन मुख नीच के नाहिन होत प्रकास।
हींग लसुन मे ना मिले घन कस्तूरी वास॥

(२८)

जात जात बितु होतु है ज्यौं जिय मैं संतोषु।
होत होतु जौ होइ, तौ होइ घरी मैं मोषु॥

शब्दार्थ :—जात जात = खर्च होते समय। बितु = धन। होत होत = आते आते धन के आने के समय। घरी = घडी। मोषु = मोक्ष।

अलंकार—संभावना।

(२९)

नित प्रति एकत हीँ रहत, बैस-बरन-मन-एक।
चहियत जुगल किसोर लखि लोचन-जुगल अनेक॥

शब्दार्थ :—एकत = एक साथ। नित.....रहत = सदा एकत्र रहनेवाले। बैस-बरन-मन-एक = जो आयु (वयस्), रङ्ग और मन में एक ही हो रहे हैं। चहियत = चाहे जाते हैं, ज़रूरत है। जुगल किसोर = श्रीराधिका तथा श्रीकृष्णचन्द्र। लखि = देखने के लिए। लोचन-जुगल = नेत्रों की जोड़ियाँ।

अलंकार—सम।

(३०)

हरि, कीजति बिनती यहै तुम सौं बार हजार।
जिहिँ तिहिँ भाँति डर्‌यौ रह्यौ पर्‌यौ रहौं दरबार॥

शब्दार्थ :—कीजति = करता हूँ । परयौ रहौं = पडा रहूँ । जिहिँ......दरबार = जैसे हो सके वैसे मै आपसे डरता ही रहूँ और आपके दरबार मे ही पडा रहूँ । अर्थात् मै मुक्ति नहीं चाहता प्रत्युत आपकी सेवा में ही रहना चाहता हूँ ।

अलंकार—लोकोक्ति ।

(३१)

गिरि तै ऊँचे रसिक-मन बूड़ें जहाँ हजारु ।
बहै सदा पसु नरनु कौं प्रेम-पयोधि पगारु ॥

शब्दार्थ :—गिरि = पहाड । रसिक = रस का आस्वाद लेनेवाले । कोई कोई यहाँ रसिक और प्रेम का अर्थ भगवद्भक्त और भगवत्प्रेम करते है । बूडे = डूबे । पसु नरनु कौं = तुच्छ मनुष्यो को । प्रेम-पयोधि = प्रेमरूपी सागर । पगारु = छिछला तालाब जिसमें बहुत थोडा पानी हो ।

भावार्थ :—जिस प्रेम के सागर में पर्वतों से भी ऊँचे हज़ारों रसिकों के मन डूब जाते हैं उसको मूर्ख एक तुच्छ तालाब समझते हैं।

अलंकार—रूपक ।

(३२)

मोहूँ दीजै मोषु, ज्यौं अनेक अधमनु दियौ ।
जौ बाँधैं ही तोषु, तौ बाँधौ अपनैं गुननु ॥

शब्दार्थ :—मोषु = मोक्ष, मुक्ति । अधमनु = नीचो को । जौ = जो, यदि । बाँधैं.........तोषु = यदि मुझे बाँध रखने में ही आप प्रसन्न हैं तो । तौ.........गुननु = अपने गुणो से बाँधिए । गुननु = रस्सियो से, गुणों से । गुण शब्द यहाँ श्लिष्ट है ।

अलंकार—आक्षेप, श्लेष ।

(३३)

सबै हँसत करतार दै नागरता कैं नाँव।
गयौ गरबु गुन कौ सरबु गएँ गँवारैं गाँव॥

शब्दार्थ :—करतार दै=करताल देकर, तालियाँ बजाकर। नागरता=नागरिकपना, प्रवीणता, कला-कुशलता। नाँव=नाम। गरबु=गौरव, अभिमान। सरबु=सारा। गएँ=जाने पर। गँवारैं गाँव=गँवारों के ग्राम में।

(३४)

बहकि बड़ाई आपनी, कत राँचत मति-भूल।
बिनु मधु मधुकर कैं हियैं गड़ै न, गुड़हरफूल॥

शब्दार्थ :—बहकि=संपत्ति या किसी गुण के कारण उमंग में फूलकर बकना। कत=क्यों। राँचत=राँचते हो, लाल होते हो, खूब प्रसन्न होते हो। मति-भूल=बुद्धि के भ्रम से। बिनु मधु=(१) शहद या मकरंद, (२) सरसता गुण के बिना। मधुकर=(१) भ्रमर, (२) गुणग्राही। हियैं=हृदय में। गड़ै न=अच्छा नहीं लगै। गुड़हरफूल=एक बिना सुगन्धि का फूल।

अलंकार—अन्योक्ति, गुड़हर के बहाने कोई किसी गुणहीन धनवान् को लक्ष्य करके कहा गया है।

(३५)

स्वारथु, सुकृतु न, स्रमु बृथा, देखि, बिहंग, बिचारि।
बाज, पराऐं पानि परि, तू पच्छीनु न मारि॥

शब्दार्थ :—स्वारथु=अपना लाभ। सुकृतु=पुण्य। बिहंग=आकाशगामी, स्वच्छन्द विहारी, दूरदर्शी। यह शब्द पत्ती के अर्थ में भी

प्रयुक्त होता है। पराऐं=दूसरों के। पानि परि=हाथ में पड़कर (दूसरे के वश में होकर)। पच्छीनु=पक्षियों को (अपने स्वजातियों को)।

मालूम होता है कि राजा जयसाह जो शाहजहाँ की ओर से हिन्दुओं के विरुद्ध लड़ते थे वह बिहारी को अच्छा नहीं लगता था। सो उन्होंने यह अन्योक्ति उन्हीं पर ही कही है।

(३६)

न ए बिससियहि लखि नए, दुरजन दुसह-सुभाइ।
आँटै परि प्राननु हरत, काँटैं लौं लगि पाइ॥

शब्दार्थ :—बिससियहि=विश्वास करिए। लखि=देखकर। नए=नम्र, झुके हुए। दुसह-सुभाइ=दु:सह स्वभाववाले। आँटै परि=दाँव में पडकर। काँटै लौ=काँटे की तरह। लगि पाइ=पैरों में लगकर।

भावार्थ :—इन दु:सह स्वभाववाले दुर्जनों को नम्र देखकर कभी विश्वास न करना चाहिए। दाँव में पड़कर भी ये लोग काँटे की तरह पैर में लगकर प्राण हरते हैं।

अलंकार—पूर्णोपमा।

(३७)

सखि, सोहति गोपाल कैं उर गुंजनु की माल।
बाहिर लसति मनौ पिए दावानल की ज्वाल॥

शब्दार्थ :—उर=छाती पर। गुंजनु=लाल रत्तियों की। लसति=दिखाई देती। दावानल=जंगल की आग।

भावार्थ :—हे सखि! कृष्ण के हृदय पर गुञ्जों की माला ऐसी लगती है कि वन को अग्नि जो उन्होंने अन्दर पी ली थी वही मानों बाहर निकल रही है।

विशेषार्थ :—एक बार आधी रात को चारों ओर आग लग गई, जिससे सब लोग घबरा उठे। तब श्रीकृष्ण ने उस आग को पीकर सबका दुःख दूर किया।

अलंकार —उत्प्रेक्षा।

(३८)

नर की अरु नल-नीर की गति एकै करि जोइ।
जेतौ नीचौ ह्वै चलै, तेतौ ऊँचौ होइ॥

शब्दार्थ :—नल-नीर = फुहारे के नल का पानी। गति = चाल, व्यवस्था। जोइ = देखो। जेतौ = जितना ही। नीचौ ह्वै = नीचे होकर। तेतौ = उतने ही।

(३९)

कहत सबै बेंदी दियै आँकु दसगुनौ होतु।
तिय-लिलार बेंदी दियै अगिनितु बढ़तु उदोतु॥

शब्दार्थ :—कहत......होतु = सब लोग कहते हैं कि बिन्दी लगाने से गिनती दस गुना बढ़ जाती है। उदोतु = प्रकाश, शोभा, सुन्दरता। लिलार = माथा।

विशेष :—दसगुणा मूल्य बढ़ जाने के भाव के लिए देखो।

तुलसी-पति-रति अंक सम सकल साधना सून।
अंक-रहित कछु हाथ नहिं अंक-सहित दस गून॥

अलंकार—व्यतिरेक (लिलार की बेंदी में अधिक गुण)

(४०)

बढ़त बढ़त संपति-सलिलु मन-सरोजु बढ़ि जाइ।
घटत घटत सु न फिरि घटै, बरु समूल कुम्हिलाइ॥

शब्दार्थ :—सपति-सलिलु = धनरूपी जल। मन-सरोजु = मनरूपी कमल। बरु = प्रत्युत।

भावार्थ :—संपत्तिरूपी जल के बढ़ते बढ़ते मनरूपी कमल बढ़ जाता है। (किन्तु) फिर वह (उसके) घटते घटते घटता नहीं, वरञ्च मूल-सहित नष्ट हो जाता है।

(४१)

गुनी गुनी सबकै कहैं निगुनी गुनी न होतु।
सुन्यौ कहूँ तरु अरक तै अरक-समानु उदोतु॥

शब्दार्थ :—निगुनी = निर्गुणी। तरु अरक = मदार का वृक्ष। अरक-समानु = सूर्य के समान।

(४२)

दुसह दुराज प्रजानु कौ क्यौ न बढ़ै दुख-दंदु।
अधिक अँधेरो जग करत मिलि मावस रवि-चंदु॥

शब्दार्थ :—दुसह = जो सहन न किया जा सके। दुराज = दो राजाओं का राज्य। दुख-दंदु = तकलीफ। मावस रवि-चदु = अमावस्या के सूर्य और चन्द्र, जो कि एक ही राशि पर होते हैं।

भावार्थ :—जहाँ दो राजाओं का राज्य हो उस राज्य की प्रजा के कष्ट क्यों नहीं बढ़ें? जैसे अमावस्या के दिन सूर्य और चन्द्रमा एक राशि पर होते हैं तो अधिक अँधेरा होता है।

(४३)

तौ लगु या मन-सदन मैं हरि आवैं किहिं बाट।
विकट जटे जौ लगु निपट खुटैं न कपट-कपाट॥

शब्दार्थ :—तौ लगि = तब तक। मन-सदन = मनरूपी घर में। किहि बाट = किस रास्ते। विकट जटे = अच्छी तरह बन्द किये हुए। जौ लगु = जब तक। निपट = अच्छी तरह। कपट-कपाट = कपटरूपी दरवाज़ा।

(४४)

भजन कह्यौ तातैं भज्यौ, भज्यौ न एकौ बार।
दूरि भजन जातैं कह्यौ, सो तै भज्यौ गँवार॥

शब्दार्थ :—भजन कह्यौ = भजन करने के लिए कहा। तातैं भज्यौ = उससे भाग गया, अर्थात् भजन नहीं किया। भज्यौ न एकौ बार = एक समय भी भजन नहीं किया। दूरि भजन जातैं = जिससे दूर भागने के लिए। सो........गँवार = उसका तैंने भजन किया, सेवन किया।

(४५)

जनमु जलधि पानिपु बिमलु, भौ जग आघु अपारु।
रहै गुनी ह्वै गर पर्‌यौ, भलै न मुकता-हारु॥

शब्दार्थ :—जनमु = जन्म। जलधि = (१) समुद्र, (२) समुद्र-सदृश बड़ा कुल। पानिपु = (१) शोभा, चमक। (२) मान, प्रतिष्ठा। बिमलु = (१) निर्मल, (२) बेदाग़, बिना धब्बा। आघु = (१) मोल,

(२) आदर। गुनी=(१) डोरावाला, डोरे में गुँथा हुआ, (२) गुणवाला। गर-पर्यो=गले पडा, (१) गले मे पडा हुआ, (२) बिना अनुमति वा इच्छा का किसी का आश्रय लेना।

भावार्थ :—कवि इस दोहे के द्वारा किसी सर्वाङ्ग-श्रेष्ठ पुरुष के किसी स्थान पर निरादर-पूर्वक रहने पर, मुक्ताहार की अन्योक्ति से, उसे चेतावनी देता है। वह कहता है, देखो, इसका जन्म तो समुद्र (महान् कुल) में हुआ है, शोभा (मान-प्रतिष्ठा) निर्मल (बेदाग़) है, जगत् में मोल (आदर) भी अपार हुआ, परन्तु डोरावाला अर्थात् डोरे में गुँथा (गुणवाला) होकर मोतियों का हार जो गले में पड़ा (गले आ पड़ा) रहता है सो भला नहीं।

(४६)

बसै बुराई जासु तन, ताही कौ सनमानु।
भलौ भलौ कहि छोड़ियै, खोटै ग्रह जपु दानु॥

शब्दार्थ :—जासु=जिसके। ताही कौ=उसी का। सनमानु=सम्मान। खोटै=क्रूर, दुष्ट।

(४७)

रनित भृंग-घंटावली, झरित दान मधु-नीरु।
मंद मंद आवतु चल्यौ, कुंजरु कुंज-समीरु॥

शब्दार्थ :—रनित भृंग-घंटावली=रनित=गूँजते हुए, भृंग=भौंरे ही है घंटियों की माला जिसकी। मधु-नीरु=मकरंद, पुष्परस। दान=हाथी का मद। झरित........नीरु=पुष्परसरूपी मदजल जिससे झड रहा है। कुंजरु=हाथी। कुंज-समीरु=पुष्पकुंजों की

हवा। मंद......समीरु = फूलों के कुंजों की हवारूपी हाथी धीरे धीरे चलता हुआ आ रहा है।

(४८)

चुवतु स्वेद मकरंद-कन, तरु-तरु-तर बिरमाइ।
आवतु दच्छिन देस तैं, थक्यौ बटौही बाइ॥

शब्दार्थ :—चुवतु = टपकता है। स्वेद = पसीना। मकरंद = पुष्प-रस। तरु-तरु-तर = वृक्ष वृक्ष के तले, नीचें। बिरमाइ = ठहरता हुआ। बटोही = मुसाफ़िर। बाइ = पवन।

भावार्थ :—मकरंदकणरूपी पसीने की बूँदें चुवाता हुआ, वृक्ष वृक्ष के नीचे विराम करता हुआ, थका हुआ वायुरूपी बटोही दक्षिण देश से आ रहा है।

विशेषार्थ :—दक्षिण देश में मलयाचल पर्वत है जिसमें चन्दन के ही पेड़ हैं, अतः दक्षिण-वायु का वर्णन कवि लोग विशेषता से करते है। मकरंदकण चुवाने से पवन का सुगंधि-गुण वृक्षों के नीचे ठहरने से शीतलता एवं थके हुए होने से मंद गमन व्यंजित होता है।

(४९)

पतवारी माला पकरि, और न कछू उपाउ।
तरि संसार-पयोधि कौं, हरि-नावैं करि नाउ॥

शब्दार्थ :—पतवारी = चप्पू, नौका को इच्छानुसार चलानेवाला लकड़ी का डंडा। संसार-पयोधि = संसाररूपी समुद्र। हरि-नावै = परमात्मा का नाम। नाउ-नौका।

(५०)

जौं चाहत चटक न घटै, मैलौ होइ न मित्त,
रज राजसु न छुवाइ तौ नेह चीकनौ चित्त ॥

शब्दार्थ :—चटक = चटकीलापन, निर्मलता। मित्त = मित्र। रज = धूलि। राजसु = रजोगुण अर्थात् गर्व, क्रोध इत्यादि। नेह = प्रेम-तेल।

भावार्थ :—यदि तुम चाहते हो कि मित्रता में न्यूनता न आये तो प्रेम से चिकने चित्त के ऊपर गर्व क्रोधरूपी धूलि, मत लगने दो।

(५१)

यह वरिया नहिँ और की, तूँ करिया वह सोधि।
पाहन-नाव चढ़ाइ जिहिँ कीने पार पयोधि ॥

शब्दार्थ :—वरिया = वार, अवसर, समय। करिया = कर्णधार, पतवार, मल्लाह। सोधि = खोज। पाहन-नाव = पत्थर की नाव अर्थात् पुल। चढाइ = चढाकर। कीने........पयोधि = समुद्र से पार कर दिये।

भावार्थ :—जिसने करोड़ों भालु और कपि पत्थर की नौका पर चढ़ाकर समुद्र से पार कर दिये थे, तू उसी (श्रीरामचन्द्र) मल्लाह की खोज कर। यह समय किसी और साधन खोजने के लिए नहीं है।

विशेषार्थ :—यहाँ "वह करिया" से रामचन्द्रजी का अभिप्राय है, जिन्होने समुद्र पर पत्थर तैरा कर भालु और कपियों को पार जाने निमित्त लंका तक पुल बना दिया था।

(५२)

अति अगाधु अति औथरौ नदी कूपु सरु बाइ।
सो ताकौ सागरु, जहाँ जाकी प्यास बुझाइ॥

शब्दार्थ :—अगाधु = अथाह। औथरौ = छिछला, जहाँ कम पानी हो। सरु = सरोवर। बाइ = (वापी) बावली। सो......बुझाइ = जिसकी प्यास जहाँ बुझे वही उसको सागर है।

अलंकार—अन्योक्ति।

(५३)

मानहु बिधि तन-अच्छ छबि स्वच्छ राखिबैं काज।
दृग-पग-पोंछन कौं किये भूषन पायंदाज॥

शब्दार्थ :—विधि = विधाता, ब्रह्मा। तन-अच्छ छवि = शरीर की सुन्दर कान्ति को। दृग-पग-पोंछन = आँखों के पाँवों के पोंछने के लिए। पायंदाज = पावदान, पाँव पोंछने का टाट।

भावार्थ :—उसके शरीर की उज्ज्वल छवि को विमल रखने के निमित्त विधाता ने भूषण आँखों के पाँवों को पोंछने के लिए मानों पायंदाज बनाये हैं।

अलंकार—हेतूत्प्रेक्षा।

(५४)

मोर मुकुट की चन्द्रिकनु, यौं राजत नँदनंद।
मनु ससिसेखर की अकस, किय सेखर सत चंद॥

शब्दार्थ :—चन्द्रिकनु = चन्द्रिकाओं से, मोरपंख का चन्द्र के समान आकृतिवाला भाग। राजत = शोभित। नँदनंद = नंदनन्दन अर्थात् श्रीकृष्ण। मनु = मानो। ससिसेखर = शिव जी। अकस = ईर्ष्या। सेखर = शेखर, मस्तक। सतचन्द = सौ चन्द्रमा।

विशेषार्थ :—कामदेव को शिवजी ने भस्म कर दिया था। कामदेव की पत्नी रति ने तपस्या करके महादेव को प्रसन्न किया और यह वर लिया कि कामदेव श्रीकृष्ण जी के घर मे उत्पन्न होगे तब तुम उसे प्राप्त कर लेना। इस प्रकार कामदेव श्रीकृष्ण के लड़के हुए, अतः उन्हें शिवजी के प्रति ईर्ष्या थी। वैसे भी श्रीकृष्ण जी मोहनी मूर्त्तिवाले और शिवजी घृणित मूर्त्तिवाले थे। अतः इन दोनों का आपस में बैर था।

अलंकार—हेतूत्प्रेक्षा सिद्धविषया।

(५५)

अधर धरत हरि कै परत, ओठ, डीठि-पट- जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्रधनुष-रँग होति ॥

शब्दार्थ :—अधर धरत = निचले ओठ पर धारण करते समय। डीठि = दृष्टि। पट = वस्त्र। जोति = झलक। हरित = हरा। इन्द्र-धनुप = वर्षा के दिनों में आकाश मे जो तीन रंगोवाला धनुष पड़ता है।

भावार्थ :—कवि ने यहाँ श्रीकृष्ण के ओठों की प्रशंसा की है। कहा है—श्रीकृष्ण जी के अधर पर बाँसुरी के रखते ही उस पर उनके ओठ, नेत्र और पीले वस्त्र की झलक पड़ती है, तब वह हरे बाँस की बाँसुरी इन्द्रधनुष के समान हो जाती है।

विशेषार्थ :—इन्द्रधनुष मे विशेष रूप से नीला, पीला और लाल रंग होते है। वैसे ही बाँसुरी पर श्रीकृष्ण के लाल ओठों की झलक, पीले पटुके की पीली और नेत्रो की नीली झलक से तीन रंग इकट्ठे मिल जाते हैं। इससे ओठो और नेत्रो तथा वस्त्रो की सुन्दरता का व्यंग्य निकलता है। इसी दोहे क विषय में मिश्र-

बन्धुओं ने लिखा है "इन्होंने रंगों और उनके मिलाव का बड़ा श्लाघ्य वर्णन किया है।"

अलंकार—उपमा, तद्गुण बाँसुरी अपने गुण को छोड़कर अन्य गुण को ग्रहण करती है।

(५६)

करौ कुवत जगु कुटिलता तजौं न दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरल हिय बसत, त्रिभंगी लाल॥

शब्दार्थ :—कुवत = बुरी बात, निन्दा। जगु = संसार। कुटिलता = टेढापन। त्रिभंगी = तीन जगह से टेढ़े कृष्ण। बंसी बजाते समय कृष्ण जी टेढ़े हो जाते थे।

अलंकार—लुप्तोत्प्रेक्षा, लोकोक्ति, अनुप्रास।

(५७)

निज करनी सकुचेहिँ कत सकुचावत इहिँ चाल।
मोहूँ से नित-विमुख-त्यौं, सनमुख रहि गोपाल॥

शब्दार्थ :—सकुचेहिँ = लज्जित हूँ। इहिँ = इस। त्यौं = ओर। मोहूँ से = मुझ जैसे।

अलंकार—विषम (विमुख और सम्मुख)।

(५८)

मोहिँ तुम्हैं बाढ़ी बहस, को जीतै जदुराज।
अपनैं अपनैं विरद की दुहूँ निबाहन लाज॥

शब्दार्थ :—बाढी = बढी हुई है। विरद = नाम, विख्यातिबोधक विशेषण, जैसे ईश्वर पतितों को पावन करने में विख्यात होने के कारण उनका विरद "पतितपावन" है। बहस = विवाद।

भावार्थ :—हे यदुराज ! मुझ और आपमें बहस लगी है, (देखें) कौन जीतता है। अपने अपने विरुद की लज्जा का निर्वाह दोनों को करना है। आपका नाम तो पतित-पावन है ही परन्तु मेरा नाम भी पतित है। अब देखना है कि मैं पाप करना छोड़ देता हूँ और आप मुझे पावन कर देते हैं। या आप थककर पतितपावन विरुद को छोड़ देते ह।

अलंकार :—प्रथम सम।

(५९)

दूरि भजत प्रभु पीठि दै गुन-बिस्तारन-काल।
प्रकटत निर्गुन निकट रहि चंग-रंग भूपाल॥

शब्दार्थ :—भजत = भाग जाते हैं। पीठि दै = मुँह फेरकर। पतंग का बाँस की कमाचीवाला हिस्सा 'जो उडाते समय अगली तरफ रहता है, पतंग की छाती कहलाती है और पिछला, जो उडानेवाले के मुँह के सामने रहता है, पीठ कहलाती है। गुन-विस्तारन = पतंग के पक्ष में डोरी का बढाना और ईश्वर के पक्ष में गुण-गान सगुणो-पासना। निर्गुण = डोरे से रहित; सत्त्व, रज, तम तीनों गुणों से रहित। चंग-रंग = पतंग की भाँति। भूपाल = राजा, प्रभु, परमेश्वर।

भावार्थ :—जैसे डोरी को छोड़ देने से पतंग दूर चला जाता है और लपेट लेने से समीप आ जाता है, उसी प्रकार परमात्मा सगुणोपासना करने से गुणों के वैभव को ही वर्णन करने से दूर चले जाते हैं और निर्गुण ब्रह्म में ध्यान लगाने से सर्वव्यापी होने के कारण समीप रहते हैं।

अलंकार—उपमा, श्लेष, अनुप्रास।

(६०)

कहै यहै स्रुति सुम्रत्यौ यहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसकहीं पातक राजा रोग॥

शब्दार्थ :—सुति=वेद। सुम्रत्यौ=स्मृतियाँ। सयाने=चतुर। निसकहीं=असमर्थ को ही। पातक=पाप।

अलंकार—प्रमाण, तुल्ययोगिता।

(६१)

जो सिर धरि महिमा मही लहियति राजा राइ।
प्रकटत जड़ता अपनियै सु मुकटु पहिरत पाइ॥

शब्दार्थ :—महिमा=गौरव। लहियत=प्राप्त करता है। जड़ता=मूर्खता। पाइ=पैरों में।

भावार्थ :– जिस मुकुट को सिर पर धारण करके राजा लोग भारी बड़ाई पाते हैं उसी मुकुट को पैर में पहन कर अपनी मूर्खता ही प्रकट करता है।

अलंकार—अप्रस्तुतप्रशंसा, सामान्य निबंधना।

(६२)

को कहि सकै बड़ेनु सौं लखैं बड़ीयौ भूल।
दीने दई गुलाब की इन डारनु वे फूल॥

शब्दार्थ :—बडेनु सौं=बडो से। लखैं=दिखाई देने पर भी। बडीयौ=बडी। दीने=दिये। दई=विधाता, परमात्मा। डारनु=डालियो में।

विशेषार्थ :—'इन डारनु वे फूल' के स्थान पर 'इन डारनु ये फूल' पाठ भी कहीं कहीं देखा जाता है। इस पाठ के अनुसार गुलाब की डालियो को ग्रीष्म ऋतु मे शुष्क दशा में देखकर चैत्र मास के सुन्दर पुष्पो का स्मरण करके इस दोहे का कहा जाना मानना पड़ता है।

इस दोहे से कवि का अभिप्राय यह है कि यदि बड़ों से कोई बड़ी भूल हो जाय तो उन्हे कोई कुछ नहीं कहता। कवि ने उदाहरण दिया है गुलाब का। गुलाब की डालियाँ काँटेदार होती हैं परन्तु गुलाब स्वयं कोमल, मृदु और सुगन्धमय।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास।

(६३)

समै समै सुन्दर सबै, रूपु कुरूपु न कोइ।
मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होइ॥

शब्दार्थ :—जेती = जितनी। जितै = जिस ओर। तित = उतनी। तेती = उस ओर।

विशेषार्थ :—यही भाव वृन्द ने एक दोहे मे रखा है :—

प्यारी अनप्यारी लगै समै पाय सब बात।
धूप सुहावै सीत मे सो ग्रीषम न सुहात॥

पाश्चात्य कवि-शिरोमणि शेक्सपीयर ने भी अपने नाटक "Much Ado About Nothing" **में कहा है :—** "Beauty is a thing which attracts the liking" "अर्थात् सुन्दरता एक वस्तु है जो रुचि पर आश्रित है।"

(६४)

या भव-पारावार को उलँघि पार को जाइ।
तिय-छबि-छाया-ग्राहिनी ग्रहै बीचहीं आइ॥

शब्दार्थ :—भव-पारावार = संसाररूपी अपार सागर। को जाइ = कौन जाये। तिय-छबि-छाया-ग्राहिनी = स्त्री की सुन्दरतारूपी छाया पकड़नेवाली एक राक्षसी। ग्रहै = ग्रहण कर लेती है, पकड लेती है।

भावार्थ :—इस संसार-सागर के पार कौन जा सकता है, क्योंकि स्त्री की छबिरूपी छायाग्राहिणी राक्षसी बीच में

ही पकड़ लेती है। अर्थात मुक्ति के मार्ग में स्त्री एक बड़ी भारी रुकावट है, अतः ब्रह्मचर्य, यम, नियम आदि के बिना मोक्ष नहीं मिल सकता।

विशेषार्थ :—सिंहिका नाम की एक राक्षसी जो राहु की माता मानी जाती थी। वह समुद्र में रहती थी। उसे यह शक्ति थी कि जिस उड़ते हुए पक्षी इत्यादि की परछाहीं जल पर पड़ती थी, उसे उसी परछाहीं के द्वारा आकर्षित करके खा लेती थी। जब हनुमान जी लङ्का को जा रहे थे तब उसने उन्हें भी आकर्षित कर लिया। पर हनुमान् जी ने उसे मारकर समुद्र पार किया था।

(६५)

दिन दस आदर पाइ कै करि लै आपु बखानु।
जौ लगि काग ! सराधपखु तौ लगि तौ सनमानु ॥

शब्दार्थ :—दिन......बखानु = हे काक ! तू थोडे दिन आदर पाकर अपनी आत्मश्लाघा कर ले। सराधपखु = श्राद्धपक्ष, पितृपक्ष जब लोग पितरो का श्राद्ध करते हैं। जौ......सनमानु = यह तेरा सम्मान जब तक श्राद्धपक्ष है तब तक ही है।

अलंकार—अन्योक्ति।

(६६)

मरतु प्यास पिंजरा-पर्‌यो सुआ समै कै फेर।
आदरु दै दै बोलियतु बाइसु बलि की बेर ॥

शब्दार्थ :—पिजरा पर्‌यौ = पिजरे में पडा हुआ। सुआ = तोता। मरतु......फेर = समय के फेर से शुक पिजरे मे पड़ा प्यास से मर रहा है (क्योकि सब मनुष्य श्राद्ध में पिडदानकार्य-व्यग्र हैं)। बाइसु =

कौआ। बोलियतु = बुलाया जाता है। बलि की बेर = श्राद्धों के समय में। आदरु........बेर = कौए को सब आदर से बुला रहे हैं।

अलंकार—अन्योक्ति, काव्यलिंग।

(६७)

इहीं आस अटक्यौ रहतु अलि गुलाब कैं मूल।
ह्वैहैं फेरि बसंत-ऋतु इन डारनु वे फूल॥

शब्दार्थ :—अलि = भ्रमर। ह्वैहैं = होंगे। वे फूल = जिनका आस्वाद उसने पहले लिया था।

भावार्थ :—किसी राजा की संपत्ति नष्ट हो जाने पर गुणीजन उसका संग नहीं छोड़ते। उनको यह आशा रहती है कि सुअवसर प्राप्त होने पर फिर उसी संपत्ति से वह संपन्न होगा। इसी विषय को कवि भ्रमर पर अन्योक्ति करके यहाँ ऐसे कहता है। फूल-पत्तियों-रहित गुलाब की डालियों पर भ्रमर इसी आशा से रहता है कि वसन्त ऋतु में फिर इन डालियों पर फूल होंगे।

(६८)

वे न इहाँ नागर, बढ़ी जिन आदर तो आब।
फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ गवँई-गाँव, गुलाब॥

शब्दार्थ :—नागर = नगरनिवासी, गुण-ग्राहक। आब = शोभा, प्रतिष्ठा। फूल्यौ = फूला हुआ भी, विकसित गुण होने पर भी। गवँई गाँव = गवाँरों के गाँव में।

भावार्थ :—मूर्ख मंडली में गुणी के गुण का निरादर देखकर कोई पुरुष गुलाब पर अन्योक्ति करके कहता

है। हे गुलाब ! यहाँ वे नागर (नगर-निवासी गुणग्राहक) नहीं हैं जिनके आदर से तेरी शोभा बढ़ी हुई है। इस गँवारों के गाँव में तू फूला हुआ भी (विकसित गुण होने पर भी) अन-फूला (बिना फूला हुआ, अर्थात् अविकसित गुण) हो रहा है। अर्थात् तुम्हारा गुण यहाँ मूर्ख-मण्डली में विकसित हो या न हो, कोई अन्तर नहीं।

विशेषार्थ—ऐसा ही भाव वृन्द के एक दोहे में है :—

विनसत गुणसत गुणिन के अगुण पुरुष के पास।
ज्यों अंजन गिरि चन्द कर नेक न होत प्रकास॥

(६९)

पाइल पाइ लगी रहै लगौ अमौलिक लाल।
भोडर हूँ की भासि है बेंदी भामिन-भाल॥

शब्दार्थ :—पाइल = पायल, पायज़ेब, पाँवों का भूषण। पाइ = पैर। भोडर = अभ्रक। बेदी = बिंदी। भामिन-भाल = सुन्दर स्त्री के माथे पर।

भावार्थ :—इस दोहे में कवि ने पायल तथा बेंदी पर अन्योक्ति करके दिखाया है कि दूसरों की सहायता से भी अयोग्य व्यक्ति उच्च स्थान नहीं पा सकता और सामान्य व्यक्ति योग्य होने पर उच्च स्थान प्राप्त कर लेता है। देखो, पायजेब रत्न-जटित होने पर भी पाँवों में धारण की जाती है, और अभ्रक की बिंदी स्त्री के माथे पर स्थान पाती है।

विशेषार्थ—ऐसा ही भाव वृन्द के एक दोहे में पाया जाता है :—

अपनी अपनी ठौर पर शोभा लहत विशेष।
चरण महावर है भलो नैनन अंजन रेख॥

(७०)

इक भीजैं चहलैं परैं, बूड़ैं बहैं हजार।
किते न औगुन जग करै बै-नै चढ़ती बार ॥

शब्दार्थ :—इक भीजैं = एक (कुछ लोग) भीग जाते है अर्थात् विषय-रस मे मिल जाते हैं। चहलै = कोई कीचड में धँस जाते हैं अर्थात् विषय-रस में ऐसे फँस जाते हैं कि दूसरी किसी ओर कहीं जा नहीं सकते। बूड़ै = कई डूब जाते हैं, सिर से पाँव तक विषय-भोग में ही निमग्न हो जाते हैं। बहैं = हज़ारों वह जाते है, लोक-परलोक सबसे दूर हो जाते हैं। किते...... ..करै = दुनिया कितने अवगुण नहीं करती अर्थात् सब करती है। बै = वयक्रम। नै = नदी।

भावार्थ :—इस दोहे में कवि ने बनाया है कि नदी की भाँति वय चढ़ते समय अनेक अनर्थ कर डालती है। अतएव पुरुष को सचेत रहना चाहिए।

(७१)

जाकै एकाएक हूँ जग ब्यौसाइ न कोइ।
सो निदाघ फूलै फरै आकु डहडहौ होइ ॥

शब्दार्थ :—एकाएक हूँ = एकाकी भी, अकेला भी। ब्यौसाइ = व्यवसायी अर्थात् व्यवसाय (उद्योग) करनेवाला। जाकै......कोइ = जिसके निमित्त संसार में कोई एक भी मनुष्य उद्योग करनेवाला नहीं। निदाघ = ग्रीष्म-ऋतु। फरै = फलता है। आकु = आक, मदार का पेड। डहडहौ = हरा-भरा। सो........होइ = वह आक का पेड़ ग्रीष्म ऋतु में हरा-भरा रहता है।

विशेष :—इस दोहे से कवि का तात्पर्य यह है कि संकट के समय वैसे ही निःसहाय मनुष्य ईश्वर की सहायता से

संपन्न हो जाता है जैसे आक का पेड़ ग्रीष्म में न सींचे जाने पर भी हरा-भरा हो जाता है। बेकाम मनुष्य के विशेष संपन्न होने पर भी यह दोहा "अन्योक्ति" के रूप में कहा जा सकता है।

(७२)

बतरस-लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करैं भौंहनु हँसै दैन कहैं नटि जाय॥

शब्दार्थ :—बतरस-लालच = बातचीत करने के आनन्द के लालच में। लाल की = श्रीकृष्ण को। धरी लुकाइ = छिपा रखी। सौंह करै = शपथ, सौगंद खाती है। भौहनु हँसै = भौंहों मे ज़रा हँस देती है। देन कहैं = माँगने पर। नटि जाइ = मुकर जाती है अर्थात् यह कह देती है कि 'मैं नहीं जानती', 'मैंने नहीं छिपाई है', ऐसा कोई बहाना लगा देती है।

(७३)

नहिँ पावसु, ऋतुराजु यह; तजि तरवर चित-भूल।
अपतु भए बिनु पाइहै क्यों नव दल फल फूल॥

शब्दार्थ :—पावसु = वर्षा-ऋतु। ऋतुराज = ऋतुओ का राजा वसंत। तजि छोड दे। तरवर = श्रेष्ठ वृक्ष। अपतु = पत्रशून्य, मानरहित। पाइहै क्यौं = क्योकर प्राप्त करेगा। नव दल = नये पत्ते।

भावार्थ :—हे श्रेष्ठ वृक्ष! यह वर्षा-ऋतु नहीं है, यह तो ऋतुराज वसंत है, अतः यह भूल कि इससे भी वर्षा की भाँति सहज में ही पत्ते और फल-फूलों की प्राप्ति हो जायगी,

छोड़ दे। इससे बिना अपत (मानरहित) हुए नये दल फल-फूल कैसे प्राप्त कर सकता है।

इस दोहे में किसी राजा से लाभ उठाने की आकांक्षा करनेवाले पर अन्योक्ति है।

(७४)

मीत न नीति गलीतु ह्वै जो धरियै धनु जोरि।
खाऐं खरचै जो जुरै, तो जोरियै करोरि॥

शब्दार्थ :—मीत = मित्र। गलीतु ह्वै = गलीत, दुर्दशा मे होकर। खाऐं......जुरै = खाने-खर्चने से जो कुछ बचे।

(७५)

घन-घेरा छुटिगौ, हरषि चली चहूँ दिसि राह।
कियौ सुचैनौ आइ जगु सरद-सूर नरनाह॥

शब्दार्थ :—घन-घेरा = (१) बादलो का घेरा, (वर्षा-ऋतु), (२) डाकुओ का घेरा। सुचैनौ = सुखी, बाधा से रहित। सरद-सूर = शरद-ऋतु का सूर्य। नरनाह = नरनाथ, राजा।

भावार्थ :—(१) शरदऋतु के सूर्यरूपी राजा ने आकर संसार को सुखी कर दिया है। बादलों का घेरा (वर्षा काल) दूर हो गया। चारों ओर मार्गों पर पथिक निर्भय होकर चलते हैं। (२) वर्षा ऋतु में घनघोर घटाओं के कारण निर्बल अथवा बिना राजा के देश में सुप्रबन्ध के अभाव हो जाने के कारण डाकुओं आदि का भय हो जाता है और इससे मार्ग रुक जाते हैं।

अलंकार—रूपक, श्लेष।

(७६)

पावस-घन-अँधियार महि रह्यौ भेदु नहिं आनु।
रात द्यौस जान्यौ परतु लखि चकई चकवानु॥

शब्दार्थ :—पावस घन-अँधियार महि = वर्षा-ऋतु के घने बादलों—अंधकार—के कारण पृथ्वी में। द्यौस = दिवस, दिन। चकई चकवानु = चकवी चकवा।

भावार्थ :—वर्षा-ऋतु का वर्णन—वर्षा-ऋतु के घने बादलों के अन्धकार में पृथ्वी पर दिन और रात का भेद नहीं जाना जाता। चकवी और चकवे को देखकर रात और दिन का भेद जाना जाता है। चकवी और चकवा रात को एक स्थान पर नहीं रहते। एक जलाशय के एक ओर रहता है तो दूसरा दूसरी ओर। इस प्रकार पृथक् होकर वे सारी रात कराहते रहते हैं। जब दिन को मिल जाते हैं तो आनन्द-ध्वनि बोलते हैं। उनके कराहने और आनन्द-ध्वनि से क्रमशः रात और दिन का बोध हो जाता है।

अलंकार—उन्मीलित।

(७७)

कहलाने एकत वसत अहि मयूर, मृग बाघ।
जगतु तपोबन सौ कियौ दीरघ-दाघ निदाघ॥

शब्दार्थ :—कहलाने = कातर हुए, व्याकुल हुए। एकत = एकत्र। अहि = साँप। दीरघ-दाघ निदाघ = प्रचण्ड तापवाली ग्रीष्म-ऋतु।

(७८)

नीच हियै हुलसे रहैं गहे गेंद के पोत।
ज्यौ ज्यौं माथैं मारियत, त्यौं त्यौं ऊँचे होत॥

शब्दार्थ :—हियै हुलसे रहैं = हृदय में प्रसन्न रहते हैं। गहे = प्राप्त कर। पोत = स्वभाव। ज्यौं ज्यौ माथैं मारियत = ज्यौं ज्यौं वे माथे पर मारे जाते हैं अर्थात् तिरस्कृत होते हैं। त्यौ......होत = वैसे वैसे अपने को श्रेष्ठ मानते हैं।

(७९)

छकि रसाल-सौरभ सने मधुर माधुरी-गंध।
ठौर ठौर झौरत झँपत भौंर-झौंर मधुअंध॥

शब्दार्थ :—छकि = अघाकर, सनकर। रसाल-सौरभ = आम के बौरों की सुगंध। सने......गंध = माधुरीलता की मधुर गंध से सने हुए। ठौर ठौर = स्थान स्थान पर। झौरत झँपत = मँडराते और झँपते ढाँपते हैं। भौर-झौंर = भौरो के समूह। मधुअध = मकरंदरूपी मदिरा के पान से अधे।

विशेषार्थ :—वसन्त-ऋतु का वर्णन।

(८०)

लटुवा लौं प्रभु-कर-गहै निगुनी गुन लपटाइ।
वहै गुनी-कर तैं छुटैं निगुनीयै ह्वै जाइ॥

शब्दार्थ :—लटुवा = लट्टू, एक खिलौना जिसे बच्चे डोरी लपेटकर घुमाते है। लौं = समान। गहैं = लेने पर। निगुनी = (सं० निर्गुणी) (१) गुणो से रहित मनुष्य, (२) डोरी से रहित लट्टू। गुन = (स० गुण) दया, वीरता आदि, (२) लट्टू की डोरी। गुनी =

(सं० गुणी) सर्वगुणसंपन्न ईश्वर, (२) डोरी को धारण करनेवाला मनुष्य।

भावार्थ :—इस दोहे में कवि ने यह बताया है कि ईश्वर की कृपा हो तो गुणहीन भी गुणी हो जाता है और गुणी भी ईश्वर की कृपा से रहित होने पर गुणहीन रह जाता है। यह भाव कवि ने ईश्वर को लट्टू फिरानेवाले की और मनुष्य को लट्टू की उपमा देकर समझाया है।

लट्टू के समान ईश्वर (लट्टू के स्वामी) के हाथ में लेने पर अर्थात् सहायता करने पर (हाथ में लेने पर) गुण-रहित मनुष्य (डोरी-रहित लट्टू) वीरता, दया आदि गुणों (डोरी) में लिपट जाता है अर्थात् घिर जाता है वा गुणधाम बन जाता है (डोरी में लिपट जाता है)। फिर वही ईश्वर (डोरी धारण करनेवाले) के हाथ से छुटने पर गुणरहित (डोरी से रहित) हो जाता है।

अलंकार—उपमा, श्लेष।

(८१)

लोपे कोपे इंद्र लौं रोपे प्रलय अकाल।
गिरिधारी राखे सबै गो गोपी गोपाल॥

शब्दार्थ :—लोपे = लुप्त कर दिये, भगा दिये। रोपे प्रलय अकाल = जो विना समय ही प्रलय करने की ठाने हुए थे। गिरिधारी = गोवर्धन पर्वत को धारण करनेवाले कृष्ण।

भावार्थ :—श्रीकृष्णजी ने गोवर्धन पर्वत को धारण कर गौओं, गोपियों और गोपालों की, रक्षा की एवं अकाल प्रलय करने पर उद्यत हुए इन्द्र के समान शत्रु भी भगा दिये।

(८२)

प्रलय-करन न बरषन लगे जुरि जलधर इक साथ।
सुर-पति-गरबु हर्‌यौ हरषि गिरिधर गिरि धरि हाथ ॥

शब्दार्थ :—प्रलय-करन = प्रलय करनेवाले। जुरि = जुड़कर। जलधर = बादल। सुरपति = इन्द्र। हरषि = प्रसन्न होकर। गिरिधर = श्रीकृष्ण। गिरि = गोवर्धन पर्वत। धर = धारण कर।

विशेषार्थ :—श्रीकृष्ण का वीरत्व वर्णन है। हर्ष संचारी-भाव। सुरपति का गर्व और बादलों का बरसना। उद्दीपन।

अलंकार—छेकानुप्रास, यमक।

(८३)

व्रजबासिनु कौ उचित धनु, जो धनु रुचित न कोइ।
सुचित न आयौ; सुचितई कहौ कहाँ तैं होइ ॥

शब्दार्थ :—व्रज.......... धनु = व्रजवासियो का जो उचित (एकत्र करने योग्य) धन है अर्थात् श्रीकृष्ण की भक्ति। जो..... ... कोई = जो किसी ही अभागी को नहीं रुचता। यहाँ 'जो' के स्थान पर 'सो' का पाठान्तर भी मिलता है इससे ऐसा अर्थ निकलता है—वह धन किसे अच्छा नहीं लगता? अर्थात् सबको अच्छा लगता है। कहीं 'जो-धन-रुचित' भी पाठ है। सु = वह। चित्त न आयौ = मन में न आया। सुचितई = चित्त की स्वस्थता, अर्थात् शान्ति।

भावार्थ :—यदि कृष्ण जी की भक्ति में मन नहीं तो किसी प्रकार भी शान्ति नहीं मिल सकती।

अलंकार—पर्यायोक्ति।

(८४)

अपनैं अपनैं मत लगै वादि मचावत सोरु।
ज्यौँ त्यौँ सबकौँ सेइबौ एकै नंद-किसोरु॥

शब्दार्थ :—वादि = वृथा। वादि मचावत सोरु = व्यर्थ ही विवाद करते हैं। सेइबौ = सेवना है, आराधना करनी है।

विशेष :—गीता में भी श्रीकृष्ण ने कहा है :—
"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।"

(८५)

बुरौ बुराई जौ तजै तौ चितु खरौ डरातु।
ज्यौं निकलंकु मयंकु लखि गनैं लोग उत्पातु॥

शब्दार्थ :—बुरौ........डरातु = बुरा मनुष्य जो बुराई छोड भी दे तो भी चित्त डरता रहता है। निकलंक = निष्कलंक। मयंकु = चन्द्रमा। गनैं = गिनते हैं, संभावना करते हैं। उतपातु = उपद्रव। ज्यौं........उतपातु = जैसे जिस दिन चन्द्रमा निष्कलंक होता है उस दिन लोग किसी उपद्रव होने की संभावना करते हैं।

विशेष :—ज्योतिष का मत है कि जब संसार में कोई बड़ा उपद्रव होने को होता है तो चन्द्रमा निष्कलंक दिखाई देता है।

(८६)

ओछे बड़े न ह्वै सकैं, लगौ सतर ह्वै गैन।
दीरघ होहिं न नैंकहूँ फारि निहारैं नैन॥

शब्दार्थ :—ओछे = क्षुद्र मनुष्य। सतर ह्वै = ऐंठकर, अकड़-कर। गनै = गगन, आकाश। नैंकहूँ = किंचिन्मात्र भी, ज़रा भी। दीरघ = बड़े। फारि निहारैं = फाड फाड़कर देखने से।

(८७)

पटु पाँखै, भखु काँकरै, सपर परेई संग।
सुखी परेवा, पुहुमि मैं एकै तुँहीं विहंग ॥

शब्दार्थ :—पटु = वस्त्र। पाँखै = पक्ष, पंख। भखु—भोजन, भक्ष्य। काँकरै = कंकर, मिट्टी। सपर = पक्षसहित, पंखोवाली। परेई = कबूतरी। परेवा = (सं० पारावत) कबूतर। पुहुमि मैं = पृथ्वी पर।

भावार्थ :—हे कबूतर! पृथ्वी पर एक तू ही सुखी है, क्योंकि तेरा वस्त्र तेरे पंख ही हैं, भोजन कंकड़ पत्थर हैं (जो सब जगह प्राप्त हो सकते हैं), पंखोंवाली (सब स्थानों में तेरे साथ उड़ने की सामर्थ्य रखनेवाली) कबूतरी तेरे साथ है।

अलंकार—अन्योक्ति।

(८८)

अरे, परेखौ को करै, तुहीं बिलोकि बिचारि।
किहिं नर, किहिं सर राखियै खरैं बढ़ैं परिपारि ॥

शब्दार्थ :—परेखौ = परीक्षा, विचार। व्यतीत घटना को सोचकर दुखी होना। सर = तालाब। खरै = बढ़ै, बहुत बढ़ जाने पर। परिपारि = मर्यादा।

भावार्थ :—इस दोहे में कवि ने बड़े लोगों की मर्यादा-हीन चेष्टा पर कटाक्ष करके तालाब पर अन्योक्ति कही है।

अलंकार—दीपक, काकुवक्रोक्ति।

(८९)

मन-मोहन सौँ मोहु करि, तूँ घनस्यामु निहारि।
कुंज-बिहारी सौँ बिहरि, गिरधारी उर धारि ॥

भावार्थ :—कोई भक्त अपने मन में कहता है कि रे मन ! जो कुछ तुझे करना है, सो श्रीकृष्ण से ही कर। यदि तुम किसी पर मोह करना चाहते हो तो श्री मनमोहन से मोह करो क्योंकि वे सब मोहजनक पदार्थों से बढ़कर हैं, । और पदार्थ अन्त को फीके पड़ जाते हैं, परन्तु यह बात मनमोहन में नहीं । यदि तुम शोभा देखने के इच्छुक हो तो श्रीघनश्याम को देखो । वे अपरिमित अगाध शोभावाले हैं, उनकी शोभा का किसी ने अन्त नही पाया । इसलिए उनकी शोभा को देखनेवाले सतत उनकी शोभा के देखने में ही मग्न और तृप्त रहते हैं । यदि तुम विहार करना चाहते हो तो कुंज-विहारी से विहार करो । और विहारों से मन कभी ऊब ही जाता है परन्तु इनके विहार में नित्य नई बहार है । यदि तुम किसी को हृदय में धारण करना चाहते हो तो गिरधारी को धारण करो । वे दीन-दयालु हैं, भक्तवत्सल हैं, उन्होंने गोवर्धन धारण करके इन्द्र से व्रजवासियों की रक्षा की थी ।

इस दोहे में कोई भक्त श्रीकृष्ण को चार भिन्न-भिन्न नामों से पुकार कर उनके विशेष गुणों का बोध कराता है ।

अलंकार—चारो विशेषणों के साभिप्राय होने के कारण परिकरांकुर ।

(९०)

समै-पलट पलटै प्रकृति, को न तजै निज चाल।
भौ अकरुन करुनाकरौ इहिँ कपूत कलिकाल ॥

शब्दार्थ :—समै = समय । पलट = बदलना । प्रकृति = स्वभाव । भौ = भये, हुए । अकरुन = निर्दय । करुनाकरौ = ईश्वर । कपूत = दुष्प्रकृति, अपवित्र ।

भावार्थ :—समय के फेर से सबकी प्रकृति भी बदल जाती है और सब अपनी चाल (कर्त्तव्य) छोड़ देते हैं। अतएव इस दुष्प्रकृति कलियुग में करुणाकर (ईश्वर) भी अकरुण (दयाहीन) हो गये हैं।

(९१)

को छूट्यौ इहिँ जाल परि, कत कुरंग अकुलात।
ज्यौं ज्यौं सुरझि भज्यौ चहत, त्यौं त्यौं उरझत जात॥

शब्दार्थ :—जाल परि = जाल में फँसकर। कत = क्यों। कुरंग = हिरण। अकुलात = छटपटाता। सुरझि = सुलझकर। भज्यौ चहत = भागना चाहता है। उरझत जात = उलझता (फँसता) जाता है।

भावार्थ :—उस विषयासक्त मनुष्य को जो विषयभोग से छूटना चाहता है पर छूट नहीं सकता, उपलक्ष्य करके हिरण के ऊपर अन्योक्ति है—हे जाल में फँसे हुए हिरण! तू क्यों छटपटाता है, इस जाल में पड़कर कोई नहीं छूटा है। जैसे जैसे तू निकलना चाहता है वैसे वैसे ही तू और फँसता जाता है।

विशेषार्थ :—कबीर ने भी कहा है—यह संसार काँटे की बाड़ी उलझ उलझ मर जाना है।

अलंकार :—अन्योक्ति, श्लेष।

(९२)

चिरजीवौ जोरी, जुरै क्यौं न सनेह गँभीर।
को घटि ए वृषभानुजा वे हलधर के बीर॥

शब्दार्थ :—चिरजीवौ = चिरंजीवी हो। जुरै.....गँभीर = गहरे स्नेह से क्यो न जुडे। वृषभानुजा = वृषभानु की लडकी राधा, जो वृष के सूर्य में उत्पन्न हुई हो, वृषभ की बहिन गौ। हलधर के बीर = बलराम के भाई कृष्ण, बैल।

इस दोहे के कई भावार्थ निकलते हैं। एक भावार्थ यह है :—

यह जोड़ी चिरकाल जीए। यह जोड़ी गहरे (गम्भीर) स्नेह से क्यों न जुड़े क्योंकि इन दोनों में से कम कौन है, अर्थात् दोनों ही एक-से हैं। यह (राधिका) वृषभानु जी जैसे महापुरुष की कन्या है, और यह (श्रीकृष्ण) हलधर (बलदेव) जैसे तेजस्वी पुरुष के भाई हैं।

इस भावार्थ का तात्पर्य यह है कि इसमें कवि ने दोनों की अर्थात् श्रीकृष्ण और राधिकाजी की प्रशंसा करते हुए यह आशा की है कि इनका रोष देर तक नहीं रहेगा। महापुरुषों का प्रेम अटूट होता है, उनका क्रोध दूध के उफान के समान होता है।

दूसरा भावार्थ यह है :—

यह जोड़ी चिरंजीवी हो। ये चिरस्थायी (गम्भीर) स्नेह से क्यों न जुड़ें (अर्थात् इन दोनों का चिरस्थायी स्नेह क्योंकर हो सकता है) क्योंकि इन दोनों में कम कौन है अर्थात् (दोनों ही उग्र स्वभाव तथा छिद्रान्वेषी हैं) राधिकाजी तो वृष के सूर्य (वृषभानु) की कन्या (अतएव प्रचण्ड और उग्र गुणों से युक्त) हैं और श्रीकृष्ण हलधर (अर्थात् शेषनाग के अवतार) के भाई (अतएव उनके उग्र और क्रोधी स्वभाव से युक्त) हैं।

इस भावार्थ से तात्पर्य यह है कि इन दोनों का स्वभाव मिल नहीं सकता, इसलिए इन दोनों का अनुराग असंभव है।

तीसरे भावार्थ में 'वृषभानुजा' का एक अर्थ (राधिकाजी के लिए) तो निकलता है वृषभ अर्थात् बैल की अनुजा अर्थात् वहन=गाय है और दूसरा (श्रीकृष्ण के लिए) हलधर अर्थात् बैल के भाई है। इसका गूढ़ार्थ यह हुआ कि राधिका गाय है और श्रीकृष्ण बैल हैं, अतएव दोनों ही पशुवृत्तिवाले हैं, इन्हें कौन समझा बुझा सकता है, इनका चिरस्थायी स्नेह होना असंभव है।

अलंकार—योग्य के संबंध से सम, श्लेष वक्रोक्ति।

(९३)

तौ, वलियै, भलियै बनी नागर नंदकिसोर।

जो तुम नीकै कै लख्यौ मो करनी की ओर॥

शब्दार्थ :—नागर=नगरनिवासी, चतुर। नंदकिसोर=श्रीकृष्ण-जी। वलियै=वलिहारी गया। नीकै की=अच्छी तरह, आलोचना-त्मक दृष्टि से। मो.... ओर=मेरे कर्मों की ओर।

भावार्थ :—कोई भक्त अपने आराध्यदेव श्रीकृष्ण जी से कह रहा है—हे चतुर नंदकिशोर! यदि आपने मेरे कर्मों की ओर भली भाँति देखना आरम्भ किया (मेरे कर्मों के अनु-सार यह निर्णय किया कि इसे मुक्त करना चाहिए या नहीं) तो मैं आपकी बलिहारी जाता हूँ, भली बनेगी अर्थात् फिर मैं मुक्त नहीं हो सकता। क्योंकि मेरे तो दुष्कर्म ही बहुत हैं, उसके अनुसार तो मैं आपकी कृपा का पात्र कभी हो ही नहीं सकता। अतः आप मेरे कर्मों की गिनती न करके मुझ पर कृपा कीजिए।

अलंकार :—काकुवक्रोक्ति, छेकानुप्रास, अंत्यानुप्रास।

(९४)

सोहत ओढ़ैं पीत पटु स्याम, सलौनैं गात।
मनौ नील मनि-सैल पर आतपु पर्‌यो प्रभात॥

शब्दार्थ :—सोहत = शोभित। सलौनैं गात = सलावण्य, सुन्दर शरीरवाले। मनौ = मानों। सैल पर = पर्वत पर। आतपु .... प्रभात = प्रातःकाल की धूप पड़ रही है।

भावार्थ :—श्रीकृष्ण जी के सुन्दर शरीर पर ओढ़ने से पीला दुपट्टा ऐसे प्रतीत होता है मानो नीलम के पर्वत पर प्रात:काल की धूप पड़ रही है।

अलंकार :—वस्तूत्प्रेक्षा उक्तविषया।

(९५)

मिलि परछाँहीं जोन्ह सौं रहे दुहुन के गात।
हरि राधा इक संग हीं चले गली महिँ जात॥

शब्दार्थ :—जोन्ह = चाँदनी। दुहुन = दोनों। गात = शरीर। गली महिँ = गली के बीच।

भावार्थ :—चाँदनी रात में कृष्ण और राधिका जी एक साथ गली में जा रहे हैं, दोनों के शरीर छाया और चाँदनी में ऐसे मिल गये हैं कि किसी को मालूम ही नहीं पड़ते।

कृष्ण जी का शरीर, जहाँ परछाईं होती थी उसमें मिल जाता था, वहाँ केवल राधा जी ही नज़र आती थीं। जहाँ चाँदनी होती थी वहाँ श्री राधा जी का गोरा शरीर उसमें मिल जाता था। कृष्ण जी वहाँ नहीं दिखाई देते थे।

अलंकार—मीलित।

(९६)

गोधन तूँ हरष्यौ हियैं घरियक लेहि पुजाय।
समुझि परैगी सीस पर परत पसुनु के पाइ ॥

शब्दार्थ :—गोवन = कार्त्तिक शुक्ल प्रतिपदा के दिन किसान लोग गोबर से गोवर्धन की प्रतिमा बनाकर पूजते हैं और फिर उसे गौओं के खुरों से रौंदवाया जाता है; उसे गोवन कहते हैं। घरियक = एक घड़ी। पाइ = पाँवों, खुर। समुझि ..... पाइ = सिर पर पशुओं के पाँवों पड़ने से तुझे मालूम हो जायगा कि ऐसे सम्मान पर गर्व करने से क्या लाभ होता है।

अलंकार :—अन्योक्ति। छेकानुप्रास और वृत्त्यनुप्रास।

(९७)

ज्यौं ह्वैहौं त्यौं होउँगौ हौं, हरि, अपनी चाल।
हठु न करौ, अति कठिनु है मो तारिबौ, गोपाल ॥

शब्दार्थ :—हौं = मैं। हरि = ईश्वर।

भावार्थ :—हे हरि! मैं अपनी चाल से जैसा हूँगा वैसे हो लूँगा अर्थात् अपने कर्मों के जो फल होंगे उन्हें भोग लूँगा। मेरा तारना (मुक्त करना) बड़ा कठिन है, अतः आप यह हठ न करें। इस दोहे में भक्त अपने आपको अति पतित मानकर भगवान् श्रीकृष्ण को अपने उद्धारने के लिए नहीं कहता क्योंकि उन्हें इस कार्य में कष्ट होगा अथवा यह कार्य न हो सकेगा। क्योंकि वह बड़ा ही पातकी है।

अलंकार :—सम कारण के अनुसार कार्य का फल।

(९८)

यौं दल काढ़े बलक तैं तैं जयसिंह भुवाल।
उदर अघासुर कैं परैं ज्यौं हरि गाइ गुवाल॥

शब्दार्थ :—दल=सेना। बलक=बलख। भुवाल=भूपाल, राजा। उदर=पेट। अघासुर=एक राक्षस। गाइ=गौएँ।

भावार्थ :—हे जयसिंह, तैंने बलख से यवनों की सेनायें ऐसे निकालीं, जैसे अघासुर राक्षस के पेट में पड़ी हुई गौएँ और ग्वाले कृष्ण ने निकाले थे।

विशेषार्थ :—सन् १६४७ में औरंगज़ेब ने जब बलख पर चढ़ाई की थी तब राजा जयशाह भी उसके साथ थे। औरंगज़ेब असफल होकर लौट आया। सेना राजा जयशाह के साथ पीछे रह गई। वहाँ से लौटते समय जयशाह ने बड़ी चतुराई और वीरता दिखाई थी।

एक समय श्रीकृष्णजी गोपालों के साथ जंगल मे गौएँ चरा रहे थे, इतने में अघासुर राक्षस ने अजगर का रूप बनाकर धीरे-धीरे उन सब गोपालों को जब निगल लिया तो अपना मायावी रूप हटा दिया। उसके पेट में सब गोपाल और गौएँ व्याकुल हुईं, तब श्रीकृष्ण जी ने अपना शरीर फैलाया और अघासुर का पेट फट गया और सब गोपाल आदि बाहर निकल आये।

अलंकार—उदाहरण।

(९९)

घर घर तुरकिनि हिंदुनी देतिँ असीस सराहि।
पतिनु राखि चादर, चुरी तैं राखी, जयसाहि॥

शब्दार्थ :—तुरकिनि = मुसलमानियाँ। सराहि = प्रशंसा करके। राखि = रक्षा की। चुरी = चूड़ी।

भावार्थ :—हे जयशाह (बलख से सेना को निकाल लाने के कारण) घर घर में तुर्किनियाँ औरहिंदुनियाँ तुझको सराह (प्रशंसा) कर असीस देती हैं। (क्योंकि तूने) उनके पतियों की रक्षा करके उनकी चादर और चूड़ी की रक्षा की अर्थात् उनको विधवा होने से बचाया।

विशेषार्थ :—विधवा होने पर मुसलमानो की स्त्रियाँ चादर तथा हिन्दुओं की चूड़ी उतार देती हैं।

अलंकार—पुनरुक्तिप्रकाश, लाटानुप्रास और छेकानुप्रास।

(१००)

सीस-मुकुट कटि-काछनी कर-मुरली उर-माल।
इहिँ बानक मो मन सदा बसौ, विहारीलाल॥

शब्दार्थ :—कटि = कमर। कर = हाथ। उर = हृदय। इहिँ बानक = इस वेष में, ऐसे बनाव से। मो = मेरे।

भावार्थ :—हे विहारीलाल, मेरे हृदय में सदा इस बनाव से बसो कि आपके सिर पर मुकुट, कमर में काछनी, हाथ में मुरली और हृदय में वनमाला हो।

विशेषार्थ :—यह उक्ति श्रीकृष्ण के गोप-वेष के उपासक की है।

अलंकार—स्वभावोक्ति। पूर्वार्द्ध मे वृत्त्यनुप्रास। उत्तरार्द्ध में छेकानुप्रास।

द्वितीय भाग

द्वितीय भाग

रसनिधि के दोहे

(१)

लसत सरस सिंधुर-बदन भालथली नखतेस।
बिघन-हरन मंगल-करन गौरी-तनय गनेस॥

शब्दार्थ :—लसत=शोभित होता है। सिंधुर-बदन=सिंधुर हाथी के मुँहवाले। भालथली=माथा। नखतेस=नक्षत्रों के ईश चन्द्रमा। विघन=बाधाएँ। गौरी-तनय=पार्वती का पुत्र।

(२)

निसि-दिन गुंजत रहत जे बिरद गरीब-नेवाज।
है निज मधुकर-सुतन की कमल-नैन तुहि लाज॥

शब्दार्थ :—निखि दिन=रातदिन। बिरद=यश। गरीब-नेवाज=दीनो के रक्षक। मधुकर-सुतन=भौंरेरूपी पुत्र। कमल-नैन=श्रीकृष्ण।

(३)

सुबस बसत ते चित नगर जहाँ बसत हरि आइ।
ऐसे तो ऊजर परी तन की किती सराइ॥

शब्दार्थ :—चित नगर = मनरूपी नगर। ऊजर = उजड़ी हुई। किती = कितनी। सराइ = सरायें।

भावार्थ :—वे चित्तरूपी नगर ही अच्छी तरह बसे हुए हैं जहाँ ईश्वर आकर वास करते हैं, अर्थात् जो हरि का स्मरण करते हैं उन्हीं का शरीर सार्थक है। वैसे तो कितनी ही शरीररूपी सरायें उजड़ी पड़ी हैं।

अलंकार—यमक, रूपक।

(४)

कैइक स्वाँग बनाइ कै नाचौ बहु विधि नाच।
रीझत नहिं रिझवार वह बिना हिए के साँच॥

शब्दार्थ :—कैइक = कई एक, बहुत-से। रीझत नहिं = प्रसन्न नहीं होते। रिझवार = प्रसन्न होनेवाला, ईश्वर। हिए = हृदय। साँच = सत्य।

भावार्थ :—कई भाँति के भेष बनाकर मैं नाच चुका हूँ, अर्थात् मैं कितने ही जन्म ले चुका हूँ। परन्तु हे रिझवार! हृदय में सत्य के ज्ञान बिना कोई तृप्त नहीं होता, अर्थात् जीवन-मरण से मुक्त होकर परमानन्द में नहीं समाता।

विशेष :—बिहारी ने भी एक दोहे में ऐसा ही भाव वर्णन किया है :—

जपमाला छापा तिलक सरै न एकौ कामु।
मन-काँचै नाचै वृथा साँचै राँचै रामु॥

(५)

काल-पखेरू तै सही यों तन खेत उबेर।
यह बिरियाँ ऐसे समय हरिया हरिया टेर॥

शब्दार्थ :—काल......उवेर=मृत्युरूपी पक्षी से शरीररूपी खेत बचाओ। बिरियाँ=वेला, समय, बार। हरिया=ईश्वर। टेर=पुकारो।

(६)

रसनिधि वाको कहत हैं याही तें करतार।
रहत निरंतर जगत कौ वाही के कर तार॥

शब्दार्थ :—वाको=उसको। करतार=कर्त्ता, परमात्मा। वाही के=उसी के। कर=हाथ। तार=सूत्र, सब कार्यों का भार।

भावार्थ :—रसनिधि कहता है कि इसी लिए उस (परमात्मा) को करतार कहते हैं क्योंकि उसके हाथ में सदा संसार का सारा कार्यसूत्र रहता है।

अलंकार—परिकर, यमक।

(७)

घरी बजी घरयार सुन बजि कै कहत बजाइ।
बहुरि न पैहै यह घरी हरि-चरनन चित लाइ॥

शब्दार्थ :—घरी=घड़ी (२४ मिनट के बराबर का एक मान)। घरयार=घंटा। बहुरि=फिर, पीछे। पैहै=पावेगा, मिलेगा।

भावार्थ :—घड़ी और घंटे बजकर मानों यह कह रहे हैं कि फिर समय नहीं मिलेगा, ईश्वर के चरणों में चित्त लगाओ।

(८)

आपु भँवर आपुहि कमल आपुहि रंग सुबास।
लेत आपुही बासना आपु लसत सब पास॥

शब्दार्थ :—बासना = सुगन्धि । लसत = शोभित है । सब पास = सब जगह ।

(९)

कोटि घटन मैं बिदित ज्यौं रवि प्रतिबिम्ब दिखाइ ।
घट घट मै त्यौं हीं छिप्यौ स्वयं-प्रकासी आइ ॥

शब्दार्थ :—कोटि = करोडों । घटन = घडों । रवि = सूर्य । घट घट = प्रत्येक हृदय में वा शरीर में । स्वयं-प्रकासी = स्वयं प्रकाशित होनेवाला, परमात्मा ।

(१०)

आपु फूल आपुहि भँवर आपु सुवास बसाइ ।
आपुहि रस आपुहि रसिक लेत आपु रस आइ ॥

शब्दार्थ :—सुवास = अच्छी सुगन्ध ।

भावार्थ :—भगवान् स्वयं ही फूल हैं और आप ही भौंरा, स्वयं ही फूलों में सुगन्ध डालते हैं । वे सर्वव्यापक भगवान् ही रस हैं और वे ही रसिक और वे ही रस का आस्वादन करते हैं । अर्थात् सचराचर सृष्टि परब्रह्म परमेश्वर का ही स्वरूप है । "एकं ब्रह्म द्वितीयं नास्ति" ऐसा शास्त्र का भी मत है ।

(११)

पंचन पंच मिलाइ कै जीव ब्रह्म में लीन ।
जीवन-मुक्त कहावहीं रसनिधि वह परबीन ॥

शब्दार्थ :—पंचन = पाँचों को, अग्नि, जल, पृथ्वी, वायु और आकाशरूपी पाँच तत्त्वों को । पंच = पाँच तत्त्वों में । परबीन = प्रवीण, चतुर ।

भावार्थ :—शरीर के पाँच तत्त्वों को पाँच तत्त्वों से मिला-कर जीवात्मा परमात्मा में लीन हो जाता है। रसनिधि कहता है कि उस समय जीव को जीवन से मुक्त हुआ कहते हैं।

(१२)

अलख सबैई लखत वह लख्यौ न काहू जाय।
दृग तारिन के तिलक की झाँकि न झाँकी जाय॥

शब्दार्थ :—अलख = ईश्वर। सबैई = सबको। लखत = देखता हूँ। काहू = किसी (से भी)। दृग......जाय = दोनों आँखो के बीच के स्थान मे जो ईश्वर की झलक दिखाई पडती है वह देखी नही जाती। (योगी लोग समाधि मे मस्तक के बीच में ब्रह्म की ज्योति का दर्शन करते हैं।) झाँकि = शोभा। झाँकी = देखी।

(१३)

जब देखौ तब भलन तै सजन भलाई होहि।
जारै जारै अगर ज्यौं तजत नहीं खसबोहि॥

शब्दार्थ :—जारै = जलाने पर। अगर = अगर नाम की लकडी। खसबोहि = ख़ुशबू, सुगंधि।

(१४)

हित करियत यह भाँति सौं मिलियत है वह भाँत।
छीर नीर तैं पूछ लै हित करिबे की बात॥

(१५)

शब्दार्थ :—हित = उपकार, मित्रता। छीर = दूध। नीर = पानी।

पसु पच्छी हू जानहीं अपनी अपनी पीर।
तब सुजान जानौ तुमै जब जानो पर-पीर॥

शब्दार्थ :—सुजान = चतुर, अच्छी तरह जाननेवाले। पर-पीर = दूसरों की पीडा।

(१६)

लाल भाल पै लसत है सुन्दर बिंदी लाल।
कियौ तिलक अनुराग ज्यौं लखकै रूप रसाल॥

शब्दार्थ :—भाल = माथा। लसत है = शोभित है। लख कै = देखकर। रसाल = सुंदर।

विशेष :—यही भाव बिहारी के एक दोहे में पाया जाता है :—

भाल लाल बेंदी ललन आखत रहे बिराजि।
इंदुकला कुज मैं बसी मनौ राहु-भय भाजि॥

(१७)

जब लग हिय-दरपन रहै कपट-मोरचा छाइ।
तब लग सुदर मीत-मुख कैसे द्दगन दिखाइ॥

शब्दार्थ :—जब लग = जब तक। हिय-दरपन = हृदयरूपी शीशा। मोरचा = मैल। मीत = ईश्वर। द्दगन = आँखों से।

विशेष :—बिहारी ने भी इसी भाव का एक दोहा लिखा है :—

तौ लगु या मन-सदन मै हरि आवै किहिँ बाट।
विकट जटे जौ लगु निपट खुटैं न कपट-कपाट॥

अलंकार—रूपक, काकु वक्रोक्ति।

(१८)

द्दग दरजी बरुनी सुई रेसम डोरे लाल।
मगजी ज्यौं मो मन सियौ तुव दामन सौं लाल॥

शब्दार्थ :—बरुनी = नेत्रों के केश । मगजी = झालर । दामन = वस्त्र और मन ।

अलंकार—रूपक, श्लेष ।

(१९)

श्रवत रहत मन कौं सदा मोहन-गुन अभिराम ।
तातैं पायौ रसिकनिधि श्रवन सुहायौ नाम ॥

शब्दार्थ :—श्रवत रहत = बरसाते रहते हैं, टपकाते रहते हैं । तातै = इसी लिए ।

भावार्थ :—संस्कृत में कानों को श्रवण क्यों कहते हैं इसी पर कवि की कल्पना है कि इनके द्वारा मन में सदा ईश्वर का नामरूपी रस टपकता रहता है । इसी लिए इनका नाम श्रवण ठीक ही है ।

(२०)

मन मैला मन निरमला मन दाता मन सूम ।
मन ज्ञानी अज्ञान मन मनहि मचाई धूम ॥

भावार्थ :—मन ही का सब महत्त्व है । मन के आधार पर ही मनुष्य सदसत् कर्म करता है, मन की महत्ता से ही मनुष्य को मुक्ति मिलती है, और मन की लघुता के कारण मनुष्य विषयों में फंसा रहता है । अतएव ज्ञानप्राप्ति के लिए मन को वश में करना नितांत आवश्यक है ।

(२१)

मन गज मद-मौकल भयौ रहत न अपनै हाथ ।
लग्यौ रहत पर मोह कौ पीलवान् चित साथ ॥

शब्दार्थ :—मन-गज = मनरूपी हाथी । मद-मौकल = मस्त । मोह = अज्ञान । पीलवान = हाथीवान ।

(२२)

उड़्यौ फिरत जो तूल सम जहाँ तहाँ बेकाम।
ऐसे हरुये कौ धर्यौ कहा जान मन नाम ।।

शब्दार्थ :—तूल = रुई । हरुये = हलके । मन = चित्त, ४० सेर का तोल । कहा जानि = क्या समझकर ।

(२३)

को अवराधे जोग तुव रहु रे मधुकर मौन ।
पीतांबर के छोर तैं छोर सकै मन कौन ।।

शब्दार्थ :—अवराधे = आराधना करे । रहु...मौन = अरे भौंरे ! चुप करके बैठा रह । पीताम्बर = श्रीकृष्णजी का पीला दुपट्टा । छोर = किनारा । छोर = छोड़ ।

विशेष :—यह दोहा भ्रमर-गीत की शैली पर ऊधो जी के लिए कहा गया है । ऊधो जी जब गोपियों को योग का उपदेश देने आये थे, तब गोपियो ने भ्रमर की अन्योक्ति से उन पर बहुत आक्षेप किये । सूरदास का भ्रमरगीत प्रसिद्ध है ।

अलंकार—अन्योक्ति, यमक ।

(२४)

उदौ करत जब प्रेम-रवि पूरब दिसि तै आइ ।
कहू नैम तम जात है देखौ जात बिलाइ ।।

शब्दार्थ :—प्रेम-रवि = प्रेमरूपी सूर्य । नैम तम = नियम (योग के साधन नियम व्रत आदि)-रूपी अँधेरा । बिलाइ = नष्ट हो जाता है ।

अलंकार—रूपक ।

(२५)

असनेही जानै कहा नेही मन अनुराग।
कहुँ हंसन की चाल कौं चल जानत है काग।

शब्दार्थ :—असनेही = स्नेह से हीन। नेही = प्रेमी।

(२६)

और जवाहिर की प्रभा जहाँ धरौ तहँ होत।
हित मानिक की जगत मैं सरस प्रकासित जोत॥

शब्दार्थ :—जवाहिर = रत्न। प्रभा = प्रकाश। हित मानिक = प्रेम-रूपी पद्मराग।

(२७)

अँधियारी निस को जनम कारे कान्ह गुवाल।
चित-चोरी जो करत हौ कहा अचंभौ लाल॥

शब्दार्थ :- निस = (सं० निशा) रात्रि। चित-चोरी = मन को चुरा लेते हैं अर्थात् मोह लेते है।

(२८)

तेरे घर बिधि कौं दयौ दयौ न कोऊ खात।
गोरस हित घर घर लला काहे फिरत ललात॥

शब्दार्थ :—बिधि कौ दयौ = परमात्मा का दिया हुआ। दयौ = दही। गोरस = माखन। लला = कृष्ण। ललात = ललचाता हुआ।

भावार्थ :—एक पड़ोसिन यशोदा को उलाहना दे रही है—तेरे घर में परमात्मा का दिया हुआ दूध दही इतना है कि कोई भी नहीं खाता, यों ही पड़ा रहता है, परन्तु फिर

भी तेरा लाड़ला कृष्ण मक्खन के लिए घर-घर ललचाता फिरता है)

विशेष :—सूरदास का भी इसी भाव का एक पद्य है :—

महरि तू बड़ी कृपन है माई।
दूध-दही बिधि कौ है दीनों सुत-डर धरति छिपाई ॥
बालक बहुत नाहिं री तेरे, एकै कुँवर कन्हाई।
सोऊ तौ घर-हीं-घर डोलत, माखन खात चुराई ॥

× × × ×

(२९)

नंदलाल सँग लग गए बुध विचार वर ज्ञान।
अब उपदेसनि जोग व्रज आयौ कौन सयान ॥

शब्दार्थ :—सँग लग गए = साथ चले गये।

भावार्थ :—गोपियाँ ऊधो जी से कह रही हैं—नन्दलाल जी के साथ हमारी बुद्धि, विचार और ज्ञान चले गये थे। अब यह हमको योग सिखाने के लिए कौन चतुर व्रज में आया है ?

विशेष :—इसी प्रकार का एक दोहा मतिराम का है :—

पगीं प्रेम नँदलाल के हमें न भावत जोग।
मधुप राजपद पाइ के भीख न माँगत लोग ॥

(३०)

गोपी जो तुहि प्रेम करि करती नहीं सनाथ।
को कहतौ तुहिँ नंद-सुत जग मैं गोपीनाथ ॥

शब्दार्थ :—सनाथ = स्वामी।

(३१)

भूलै हूँ मत दरद कहु वेदरदिन के पास।
पीनसवारौ कव लहै सरस अतर की वास॥

शब्दार्थ :—दरद = दुःख। वेदरदिन = दुष्ट मनुष्य। पीन = नाक का रोग जिसमें सूँघने की शक्ति नष्ट हो जाती है।

(३२)

याही तैं यह आदरै जगत माह सब कोइ।
बोलै जबै बुलाइयै अनबोले चुप होइ॥

शब्दार्थ :—याही तैं = इसी लिए। माह = में।

(३३)

जग तरवर तै फल लगै जौ लग काँचौ गात।
पाके तै फल आप ही डारनि तैं छुटि जात॥

शब्दार्थ :—तरवर = तरुवर, श्रेष्ठ वृक्ष। जौ लग = जब तक। काँचौ = कच्चा। गात = (सं० गात्र) शरीर। डारनि = डाली।

भावार्थ :—जब तक शरीररूपी फल कच्चा है तब तक यह संसाररूपी श्रेष्ठ वृक्ष से लगा है, पकने पर अपने आप डाली से गिर पड़ेगा अर्थात् जब तक जीवित हो या अज्ञानी हो तब तक संसार का बन्धन है, फिर नहीं।

(३४)

विन औसर न सुहाइ तन चदन ल्यावै गार।
औसर की नीकी लगै मीता सौ सौ गार॥

शब्दार्थ :—औसर = अवसर। गार = घिसकर। नीकी = अच्छी। मीता = मित्र। गार = गाली।

(३५)

समै पाइकै लगत है नीचहु करन गुमान।
पाय अमर-पख दुजनि लौं काग चहै सनमान॥

शब्दार्थ :—अमर-पख = पितृ-पक्ष (श्राद्ध-पक्ष)। श्राद्ध में कौवे को ग्रास दिया जाता है। दुज = ब्राह्मण।

(३६)

रे कुचील तन तेलिया अपनौ मुख तौ हेर।
सुमननि वासे तिलन कौं काहे डारत पेर॥

शब्दार्थ :—कुचील तन = मैले शरीरवाले। हेर = देख। सुमननि वासे = फूलों में बसे हुए, सुगन्धित हुए। काहे डारत पेर = किस लिए पीर डालता है।

(३७)

अलगरजी घन सौं नहीं सुनियौ संत सुजान।
अरजी चात्रिक दीन की गरजी सुनै न कान॥

शब्दार्थ :—घन = बादल। चात्रिक = चातक।

(३८)

हरी करत है पुहुमि सब घन तूँ रस बरसाइ।
आक जवासे कौ अरै काहे देत जराइ॥

शब्दार्थ :—पुहुमि = पृथ्वी, भूमि। रस = जल। जवासा = काँटेदार। एक पौधा। जराइ = जलाकर।

(३९)

प्यास सहत पी सकत नहिँ औघट घाटनि पान।
गज की गरुवाई परी गज ही के गर आन॥

शब्दार्थ :—औघट = ऊँचे। घाटनि = किनारो पर। गरुवाई = गुरुता, बडप्पन, स्थूलता। गज . . . आन = हाथी का बडापन उसके गले मे ही आ पडा क्योंकि ऊँचे-ऊँचे किनारो पर हाथी पानी नहीं पी सकता।

(४०)

धरि सोनै कै पींजरा राखौ अमृत पिवाइ।
बिष कौ कीरा रहत है बिष ही में सुख पाइ॥

शब्दार्थ :—कीरा = कीडा।

भावार्थ :—सब कोई अपने अपने स्थान पर ही सुख पाते हैं। विष में रहनेवाला कीड़ा सोने के पिंजरे में अमृत पान करता हुआ भी मर जाता है। जल से बाहर निकाली हुई मछली मखमली गद्दों पर सावधानता से रखी हुई भी जीवित नहीं रह सकती।

(४१)

धरे जदपि बहु मोल के घरन जवाहिर हूब।
आनँद के औसर तऊ सीस बाँधियत दूब॥

शब्दार्थ :—घरन = घरो में। जवाहिर हूब = ख़ूबसूरत जवाहरात। दूब = (सं० दूर्वा) घास।

(४२)

बैठत इक पग ध्यान, धरि मीनन कौं दुख देत।
बक मुख कारे हो गए रसनिधि, याही हेत॥

शब्दार्थ :—इक = एक। पग = पाँव। मीनन = मछलियों को। बक = बगुला। कारे = काले। याही हेत = इस कारण से।

(४३)

सबही कौं पोषत रहै अमृत-कला सरसाइ।
ससि चकोर के दरद कों अजौ सकत नहिं पाइ॥

शब्दार्थ :—पोषत रहै=पालन करती है। अमृत-कला=चन्द्रमा की कलाएँ। सरसाइ=अधिकता। ससि=चन्द्रमा। अजौ=आज तक।

(४४)

अमित अथाहै हौ भरे जदपि समुद अभिराम।
कौन काम के जौन तुम आए प्यासन काम।

शब्दार्थ :—अमित=अपरिमित। अथाहै=अगाध। समुद=समुद्र।

भावार्थ :—यह अन्योक्ति किसी कृपण धनी के प्रति है। यदि कोई पुरुष समुद्र-तट पर खड़ा भी प्यासा ही रह जाता है, समुद्र उसकी प्यास बुझाने के काम नहीं आता, तो धिक्कार है ऐसे असीमित अगाध समुद्र को।

विशेष :—इसी भाव के आधार पर रहीम का एक दोहा है :—

रहिमन दानि दरिद्रतर तऊ जाँचिबे जोग।
ज्यों सरितन सूखा परै कुँवाँ खनावत लोग॥

यह उक्ति किसी कृपण धनी के प्रति है। कवि का तात्पर्य है कि कृपण धनी की अपेक्षा दानी साधारण व्यक्ति भी श्रेष्ठ है।

(४५)

जा गुलाब के फूल कौं सदा न रँग ठहराइ।
मधुकर मत पच तूँ अरे वासौं नेह लगाइ॥

शब्दार्थ :—मत पच = मत मर। वासौ = सुगन्धि से। नेह = स्नेह, प्रीति।

(४६)

उयै सोख जल लेत है बिना उयै दुख देत।
कठिन दुहूँ बिधि कमल कौ करै मीत सौं हेत॥

शब्दार्थ :—उयै = उदय हुआ। सोख जल लेत है = जल को सुखा लेता है। मीत = मित्र, सूर्य। हेत = हित, हेतु (के लिए)।

भावार्थ :—कमल का सूर्य मित्र है क्योंकि सूर्योदय होने पर कमल खिलता है और सूर्यास्त होने पर कमल भी बन्द हो जाता है। परन्तु सूर्य से मित्रता करने में कमल को बड़ी कठिनाई पड़ती है। जब सूर्य उदय होता है तब कमल के आधार जल को वह सुखाने लग जाता है, और जब सूर्य अस्त होता है तब कमल बन्द हो जाता है। अतएव कमल को दोनों अवस्थाओं में दुःख सहना पड़ता है।

(४७)

जानत सही चकोर कर ससि सौं प्रेम-सलूक।
अमृत-सराबी के रसहि समुझहि कहा उलूक॥

शब्दार्थ :—सही = ठीक। प्रेम-सलूक = प्रेम-व्यवहार। अमृत-सराबी = अमृत-स्रावी अर्थात् अमृत स्रवन करने (बहाने) वाला चन्द्रमा। रसहि = रस को। उलूक = उल्लू।

(४८)

चल न सकै निज ठौर तैं जे तन द्रुम अभिराम।
तहाँ आइ रस बरसिवौ लाजिम तुहि घनश्याम॥

शब्दार्थ :—निज ठौर तैं = अपने स्थान से (इसलिए वृक्षों को स्थावर कहा जाता है)। जे तन द्रुम अभिराम = जो शरीररूपी सुन्दर वृक्ष; जो सुन्दर वृक्षों के तने। रस = आनन्दरूपी रस, पानी। वरसिवौ = वरसना। लाजिम = आवश्यक। तुहि = तुमको। घनस्याम = काले बादल, श्रीकृष्ण जी।

भावार्थ :—(१) हे काले बादल! जो वृक्ष अपने स्थान से चल-फिर नहीं सकते (अन्यत्र तालाब आदि में अपनी पानी की आवश्यकता को पूरी नहीं कर सकते) हैं, उनके लिए उनके पास जाकर आपको जल बरसाना आवश्यक है।

(२) हे श्रीकृष्ण जी! जो (लूले, लँगड़े, बूढ़े) अपने स्थान से चल नहीं सकते हैं, उन शरीररूपी सुन्दर वृक्षों के लिए आपको उनके पास जाकर करुणारस की वृष्टि करनी आवश्यक है।

(४९)

रोम रोम जो अघ भर्यौ पतितन मैं सिरनाम।
रसनिधि वाहि निबाहिवौ प्रभु तेरोई काम॥

शब्दार्थ :—अघ = पाप। पतितन मैं सिरनाम = पतितो में सबसे बड़ा पातकी। निबाहिवौ = निबाहना, उभारना।

विशेष :—बिहारी ने अपने आपको इतना पतित बनाया है कि शायद पतितपावन प्रभु भी उनको तार नहीं सकेंगे।

ज्यौं ह्वैहौं त्यौं होउँगौ हौं हरि अपनी चाल।
हठु न करौ अति कठिनु है मो तारिबौ गोपाल॥

(५०)

गंग प्रकट जिहि चरन तै पावन जग कौ कीन।
तिहि चरनन कौ आसरौ आइ रसिकनिधि लीन॥

शब्दार्थ : – गंग = गंगा नदी। पावन = पवित्र। आसरौ = आश्रय।

विशेष :—विष्णु भगवान् जी के चरणों से गङ्गा के प्रकट होने के भाव पर श्री वियोगी हरि ने लिखा है :—

जिन पायनु तें जाह्नवी भई प्रकटि जग पूत।
तिनहीं तें प्रकटे नए तुम्हरे अनुज अछूत॥

(५१)

भगतन तौ तुम तारिहौ अधम कौन पै जाइ।
अधम-उधारन तुम बिना उन्हैं ठौर कहुँ नाँइ॥

शब्दार्थ :—अधम = नीच, पापी। उधारन = उद्धार करनेवाले।

अलकार—परिकर, काकु वक्रोक्ति।

(५२)

रबि ससि अवनि सघन पवन और अगिन की ज्वाल।
ऊँच नीच घर सम लखै दुबिधा तज कै लाल॥

शब्दार्थ :—रबि = रवि, सूर्य। ससि = शशि, चन्द्रमा। अवनि = पृथ्वी। सघन = अधिक, घना। सम लखै = बराबर देखते हैं; एक समान देखते है। दुबिधा = चिन्ता। तजकै = छोड करके। लाल = वत्स।

(५३)

मै गीधौ लखि गीध-गति गीधे गीधहि जान।
गीधे पतितहिँ तारिहौ तव वदिहौं प्रभु वान॥

शब्दार्थ :—मै गीधौ = मैं गर्वित हो गया। लखि गीध-गति = गिद्ध जटायु की सद्गति को देखकर। गीधे गीर्धहि जान = जटायु को ही जानकर (उसको ही एक पतित जानकर और उसका सहज ही उद्धार करके)। आप गीधे हो = परचे हो। गीधे पतितहिँ = गर्वित पतित को। तव वदिहौं प्रभु वान = तो मैं आपकी पतितो को तारने की वान प्रकृति को समझूँगा अर्थात् बड़ी प्रशंसा करूँगा।

विशेष :—बिहारी ने भी इसी प्रकार का भाव प्रकट किया है :—

कौन भाँति रहिहै विरदु अब देखिवी मुरारि।
बीधे मोसौं आइ कै गीधे गीधहिं तारि॥

अलंकार—संभावना, लाटानुप्रास, यमक।

(५४)

जौ करुनामय हेरिहौ मो करनी की ओर।
मोसों पतित न पाइहौ ढूँढ़े हूँ छिति-छोर॥

शब्दार्थ :—हेरिहौ = देखेंगे। करनी की ओर = कर्मों की ओर। ढूँढ़े हूँ छिति छोर = पृथ्वी के चारों कोनों में ढूँढने पर भी।

विशेष :—बिहारी ने भी भगवान् से यही कहा है :—

तौ बलियै भलियै बनी नागर नंदकिसोर।
जो तुम नीकैं कै लख्यौ मो करनी की ओर॥

अलंकार—सम्भावना, छेकानुप्रास।

(५५)

गह्यौ ग्राह गज जिहि समै पहुँचत लगी न बार।
और कौन ऐसे समै संकट काटनहार॥

शब्दार्थ :—गह्यौ = पकड़ा। ग्राह = मगरमच्छ। गज = हाथी। जिहि समै = जिस समय। संकट = दुःख। काटनहार = काटनेवाले।

विशेष :—एक बार एक गजराज को स्नान करते समय मगरमच्छ ने पकड़ लिया, डूबते समय उसने ईश्वर को स्मरण किया और विष्णु भगवान् ने उसी समय वहाँ पहुँचकर उसकी रक्षा की।

(५६)

अधम-उधारन बिरद कौ तुम बाँधौ सिर नेत।
रसनिधि अब या अधम की सुधि काहे नहिँ लेत॥

शब्दार्थ :—बिरद = यश, बड़ाई। नेत = पगड़ी।

(५७)

स्याही बारन तै गई मन तै भई न दूर।
समझ चतुर चित बात यह रहत बिसूर बिसूर॥

शब्दार्थ :—बारन = बालों से। बिसूर = रोकर, पश्चात्ताप करके।

(५८)

हेरत कहुँ जौ दीन तन वाहि आवती लाज।
प्रीतम तौ न कहावतौ दीन-बंधु ब्रजराज॥

शब्दार्थ :—हेरत = देखते। दीन तन = ग़रीब की ओर। वाहि = उसको।

(५९)

हौ दुरबल-तन प्रभु सुनौ उत भवसिंधु अपार।
तुमहीं राखत बार जो कौन लगावै पार॥

शब्दार्थ :—दुरबल-तन = निर्बल शरीरवाला। उत = उधर। भवसिंधु = संसार-सागर। अपार = अनंत। बार = देरी, किनारा। तुमही राखत बार जो — जब तुम ही देर करते हो; जब तुम ही किनारे पर रखे खड़े हो।

अलंकार—विषम, काकु वक्रोक्ति।

(६०)

जदपि अकरनी है करी मै हर भाँति मुरारि।
प्रभु करनी कर आपनी सब बिध लेहु उधारि।

शब्दार्थ :—अकरनी = अकार्य, पाप। मुरारि = मुर नामक असुर के शत्रु अर्थात् श्रीकृष्ण। करनी = कार्य।

भावार्थ := हे श्रीकृष्ण! यद्यपि मैंने सब प्रकार के पाप किये हुए हैं, मैं हर प्रकार से पापी हूँ, परन्तु आप अपना काम करें। आप लोगों का उद्धार करते हैं, हर प्रकार से मेरा उद्धार कर दीजिए।

विशेष :—विहारी ने भी ऐसी ही प्रार्थना की है :—

कीजे चित सोई तरे जिहिं पतितन के साथ।
मेरे गुन औगुन गननु गनौ न गोपीनाथ॥

——

भावार्थ :—गँवार यदि राजा की माला में लाल रत्नों को अंगारे समझकर छोड़कर चला जाता है तो क्रोध नहीं करना चाहिए।

(७)

कहा भयौ मतिराम हिय जौ पहिरी नँदलाल।
लाल मोल पावै नहीं लाल गुंज की माल॥

शब्दार्थ :—हिय = हृदय। नँदलाल = श्रीकृष्ण। लाल-श्रीकृष्ण। लाल = रत्न। गुंज = रत्ती।

(८)

गुन औगुन को तनकऊ प्रभु नहिं करत विचार।
केतकि कुसुम न आदरत हर सिर धरत कपार॥

शब्दार्थ :—औगुन = अवगुण। तनकऊ = तनिक भी, थोड़ा भी। केतकी = केवड़ा। न आदरत = आदर नहीं करते। हर = शिवजी। कपार = खोपड़ी।

(९)

निज वल कौं परिमान तुम तारे पतित विसाल।
कहा भयौ जु न हौ तरतु तुम खिस्याहु गोपाल॥

शब्दार्थ :—निज...परिमान = अपने बल के अनुसार। तारे = मुक्त कर दिये। विसाल = विशाल, महान्। जु = जो। खिस्याहु = नाराज़ हो।

भावार्थ :—भगवान्! अपने अतुल बल के अनुसार तुमने असंख्य बड़े-बड़े पातकी इस भव-सागर के बन्धन से तार दिये हैं, क्या हुआ है कि जो मुझे नहीं तार सके हो, इसमें लज्जा मत करो।

शब्दार्थ :—औगुन = बुराई। बरनि = कहकर। हरि-तनु = श्रीकृष्ण को। हेरि = देखकर। महरिहि = यशोदा को (श्रीकृष्ण की माता को) येहि = ये लोग।

विशेष :—कृष्ण के दंगों से तंग आकर गोपियाँ उनकी माता के पास शिकायत कर रही हैं पर जब कृष्ण को देखती हैं तो उनका क्रोध शान्त हो जाता है और शिकायत बन्द कर देती हैं। यही भाव यहाँ वर्णित है।

(४)

पानिप मैं घर मीन कौ कहत सकल संसार।
दृग-मीननि कौ देखियत पानिप पारावार॥

शब्दार्थ :—पानिप = जल। दृग-मीननि = नेत्ररूपी मीन (मछली)। पानिप = आभा, शोभा। पारावार = समुद्र।

(५)

नींद भूख अरु प्यास तजि करती हो तन राख।
जलसाई बिन पूजिहै क्या मन के अभिलाख॥

शब्दार्थ :—करती हो तन राख = शरीर को भस्म करती हो। जलसाई = जल में (समुद्र में) शयन करनेवाले भगवान्।

(६)

रोस न करि जो तजि चल्यौ जानि अँगार गँवार।
छिति-पालनि की माल मै तेहीं लाल सिँगार॥

शब्दार्थ :—रोस = रोष, क्रोध। छिति-पालनि = राजा। लाल = पद्मराग, लाल रंग का रत्न।

भावार्थ :—गँवार यदि राजा की माला में लाल रत्नों को अंगारे समझकर छोड़कर चला जाता है तो क्रोध नहीं करना चाहिए।

(७)

कहा भयौ मतिराम हिय जौ पहिरी नँदलाल।
लाल मोल पावै नहीं लाल गुंज की माल॥

शब्दार्थ :—हिय = हृदय। नँदलाल = श्रीकृष्ण। लाल-श्रीकृष्ण। लाल = रत्न। गुंज = रत्ती।

(८)

गुन औगुन को तनकऊ प्रभु नहिं करत विचार।
केतकि कुसुम न आदरत हर सिर धरत कपार॥

शब्दार्थ :—औगुन = अवगुण। तनकऊ = तनिक भी, थोड़ा भी। केतकी = केवड़ा। न आदरत = आदर नहीं करते। हर = शिवजी। कपार = खोपड़ी।

(९)

निज बल कौं परिमान तुम तारे पतित बिसाल।
कहा भयौ जु न हौं तरयु तुम खिस्याहु गोपाल॥

शब्दार्थ :—निज...परिमान = अपने बल के अनुसार। तारे = मुक्त कर दिये। बिसाल = विशाल, महान्। जु = जो। खिस्याहु = नाराज़ हो।

भावार्थ :—भगवान्! अपने अतुल बल के अनुसार तुमने असंख्य बड़े-बड़े पातकी इस भव-सागर के बन्धन से तार दिये हैं, क्या हुआ है कि जो मुझे नहीं तार सके हो, इसमें लज्जा मत करो।

(१०)

वसिबे कौं निज सरवरनि सुर जाकौं ललचाहिँ ।
सो मराल बक-ताल मैं पैठन पावत नाहिँ ॥

शब्दार्थ :—सरवरनि = तालाबों । सुर = देवता । मराल = हंस । बक-ताल = बगुलों से भरा हुआ तालाब । पैठन = घुसना ।

(११)

अद्भुत या धन कौ तिमिर मो पै कह्यो न जाइ ।
ज्यौं ज्यौं मनिगन जगमगत त्यौं त्यौं अति अधिकाइ ॥

शब्दार्थ :—तिमिर = अँधेरा । मनि-गन जगमगत = रत्नों का उजाला होता है ।

(१२)

कहा दवागिनि कै पियै कहा धरैं गिरि धीर ।
बिरहानल मै बरत जो बूड़त लोचन-नीर ॥

शब्दार्थ :—कहा = क्या । दवागिनि = वन की अग्नि । बरत = जलता । बूडत = डूबता ।

भावार्थ :—श्रीकृष्ण बाल्यकाल में व्रज में रहे फिर मथुरा चले गये थे। व्रज में उन्होंने गोपों की रक्षा के लिए वन की अग्नि को पी लिया और गोवर्धन को उठाकर वर्षा से डूबते हुए व्रज को बचाया। उनके चले जाने पर व्रजवासी उनके वियोग में जल रहे हैं और आँसुओं में डूब रहे हैं। इसी पर कवि कहता है कि श्रीकृष्ण ने बचपन में व्रज को बचाकर क्या किया, आज उसी व्रज पर फिर वही संकट आ रहा है, और वह भी उन्हीं के कारण सो कहाँ तक उचित है।

(१३)

कोटि कोटि मतिराम कहि, जतन करौ सब कोइ।
फाटे मन अरु दूध मैं नेह न कबहूँ होइ॥

शब्दार्थ :—कोटि = करोडो। नेह = स्नेह, प्रेम, घृत।

भावार्थ :—फटे दूध से घी (स्नेह) नहीं निकलता और फटे चित्त से प्रेम (स्नेह) प्रकट नहीं होता।

विशेष :—यही भाव रहीम ने ऐसा वर्णन किया है :—

बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोय।
रहिमन फाटे दूध को, मथे न माखन होय॥

(१४)

सुबरन बरन सुबास जुत सरस दलनि सुकुमार।
ऐसे चंपक कौं तजै तैंही भौंर गँवार।

शब्दार्थ :—सुबरन बरन = सोने का रंग। सुबास = सुगन्धि। दलनि = पंखडी। तैंही = तू भी। गँवार = मूर्ख।

विशेष :—यह प्रसिद्ध है कि भौंरा चंपा के फूल पर नहीं बैठता। वृन्द कवि ने यही भाव एक दोहे मे दिखाया है :—

बसिये तहाँ बिचारिकै जहाँ दुष्ट गति नाहिं।
होत न कबहुँ भँवर डर ज्यौं चंपक बन माँहि॥

(१५)

देखै हूँ बिन देखि हूँ लगी रहै अति आस।
कैसे हूँ न बुझाति है ज्यौं सपने की प्यास॥

शब्दार्थ :—देखैं हूँ = देखने पर भी।

(१६)

मो मन सुक लौ उड़ि गयौ अब क्यौं हूँ न पत्याइ ।
बसि मोहन बनमाल मैं रह्यौ बनाउ बनाइ ॥

शब्दार्थ :—सुक लौ = सुग्गे की तरह । पत्याइ = विश्वास करता है। मोहन = कृष्ण । बनमाल = पारिजात, वा कुंद वा कमल पुष्पों की माला । बनाउ = ख़ुशी, सजावट । बनाइ = भली भाँति ।

भावार्थ :—मेरा मन तोते की तरह उड़ गया, अब विश्वास क्यों नहीं करता है, वह श्रीकृष्ण की बनमाला में बस कर भली भाँति रम गया है, प्रसन्न हो गया है।

(१७)

सुबरनबेलि तमाल सौ घन सौं दामिनि-देह ।
तूँ राजति घनस्याम सौं राधे सरसि सनेह ॥

शब्दार्थ :—सुबरनबेलि = सुवर्णलता । तमाल = एक वृक्ष जिसका रंग दूर से सघन होने के कारण काला दिखाई देता है। घन = बादल । दामिनि = बिजली । राजति = शोभित होती है। घनस्याम = श्रीकृष्ण ।

भावार्थ :—जैसे सुवर्णलता तमाल-वृक्ष से शोभित होती है, बिजली बादल से शोभित होती है, वैसे, हे राधा ! तुम श्रीकृष्ण के साथ प्रेम के सरोवर में शोभायमान हो रही हो ।

(१८)

लसत बूँद अँसुवानि के बरुनिनि छोर उदार ।
दृग-तुरंग-फूलनि मनौ झलकत मुकुत सुढार ॥

शब्दार्थ :—लसत = शोभित। वरुनिनि = पलकों के बालो के। छोर = किनारा। उदार = गिरकर। दृग...फूलनि = नेत्ररूपी कनेर के फूलों से। मुकुत = मोती। सुढार = सुन्दर।

भावार्थ :—पलकों के बालों के किनारे से गिरकर आँसुओं की बूँदें शोभित हो रही हैं मानो नेत्ररूपी कनेर के फूलों से सुन्दर मोती शोभायमान हो रहे हैं।

(१९)

नर नारी सब जपत हैं घर घर हरि को नाउँ।
मेरैं मन धोखैं कढ़त परति गाज ब्रज-गाउँ॥

शब्दार्थ :—कढत = निकलता है। गाज = वज्र।

भावार्थ :—यह कृष्ण-वियोगिनी गोपी का वचन है! वह कहती है कि प्रत्येक नर-नारी हरि का नाम घर-घर में जपते हैं।

(२०)

अब तेरौ बसिबो यहाँ नाहिँन उचित मराल।
सकल सूखि पानिप गयौ भयौ पंकमय ताल॥

शब्दार्थ :—नाहिँन = नहीं। मराल = हंस। पानिप = पानी। पंकमय = कीचडवाला। ताल = तालाब।

(२१)

दुबराई गिरि जातु है कंकन कामिनि बाँह।
उपदेसन ठहरात ज्यौं दुरजन के उर माँह॥

शब्दार्थ :—दुबराई = दुबली हो गई। गिरि जातु = गिर जाते हैं, पड जाते हैं। कंकन = कडे। कामिनी = स्त्री। दुरजन = दुष्ट। माँह = में।

भावार्थ :—जैसे कड़े दुबली हो गई स्त्री की बाँह से गिर जाते हैं, वैसे दुष्ट के हृदय में उपदेश ठहरते हैं, अर्थात् हृदय से गिर जाते हैं।

(२२)

दुख दीनै हूँ सुजन जन छोड़त निज न सुदेस।
अगरु डारियत आगि मैं करत सुबासित केस॥

शब्दार्थ :—हूँ = भी। सुदेस = अच्छा स्वभाव। अगरु = चन्दन की तरह एक सुगन्धित लकड़ी जिसकी धूप देने से बाल सुगन्धित हो जाते हैं।

(२३)

बिनु देखैं दुख के चलैं देखैं सुख के जाहिँ।
कहौ लाल इन दृगनि के अँसुवाँ क्यौं ठहराहिँ॥

शब्दार्थ :—लाल = श्रीकृष्ण। दृगनि = आँख। अँसुवा = आँसू।

भावार्थ —कोई श्रीकृष्ण को कहता है कि तुम्हें न देखें तो दुःख के और देखें तो सुख के आँसू बहते हैं, अर्थात् आँसू तो दोनों अवस्थाओं में बराबर निकलते रहते हैं।

(२४)

सुजस-ओज सौं साह-सुत सिवा सूर-सरदार।
सरद चंद आतप कियौ सुचि आतप इक बार॥

शब्दार्थ :—सुजस = सुन्दर यश। ओज = प्रसिद्धि। साह-सुत = साह का पुत्र। सिवा = महाराज शिवाजी। सरद चंद आतप = शरद्-ऋतु की चाँदनी के समान। सुचि आतप = गरमी की धूप।

विशेष :—इस दोहे में शिवाजी की प्रशंसा की है। शिवाजी शाहजी भौंसला के सुपुत्र थे। मतिराम ने कुछ और छंदों में भी शिवाजी का यश-गान किया है। संभव है कि शिवाजी ने इन्हें कभी आश्रय दिया हो।

(२५)

पिसुन-वचन सज्जन चितै सकै न फोरि न फारि।
कहा करै लगि तोय मैं तुपक तीर तरवारि॥

शब्दार्थ :—पिसुन = चुगलख़ोर। चितै = हृदय को। सकै.. फारि = बदल नहीं सकते। तोय मै = पानी में। कहा करै = क्या करेगी। तुपक = तोप।

(२६)

तरु ह्वै रह्यौ करार कौ अब करि कहा करार।
उर धरि नंद-कुमार कौ चरन-कमल सुकुमार॥

शब्दार्थ :—तरु = वृक्ष। ह्वै रह्यौ = हो रहो। करार = नदी का किनारा। कहा = क्या। करार = इक़रार, प्रतिज्ञा। उर धरि = हृदय में धारण करके। नंद-कुमार = श्रीकृष्ण।

भावार्थ :—कवि मनुष्य की चपलता, भगवद्भक्ति-विरोध आदि के लक्ष्य से वृक्ष पर अन्योक्ति करके यह दोहा कहता है :—

श्रीकृष्ण के कोमल चरण-कमलों को हृदय में धारण करके (यमुना) नदी के तट पर हो रहो, अब (और) इक़रार (प्रतिज्ञा) करने से क्या (लाभ)? यही मुक्ति का सुगम उपाय है। श्रीकृष्ण यमुना नदी में विहार करते हैं, तुम उनकी

शाखा आदि को झुकाकर श्रीकृष्ण के चरण-युगल पर मस्तक झुकाता है, अर्थात् श्रीकृष्ण के चरण-युगल को हृदय से लगा कर भगवद्भक्ति में आसक्त हो जाता है।

अलंकार—अन्योक्ति।

(२७)

कुंद न पावत रदन रुचि कुंदन अंग-प्रकास।
चंद न पावत बदन-छबि चंदन अंग-सुबास॥

शब्दार्थ :—कुंद = चमेली। रदन = दाँत। रुचि = शोभा। कुंदन = सोना। बदन-छबि = मुख की शोभा।

अलंकार—यमक।

(२८)

ललित मंद कलहंस गति मधुर मंद मुसक्याति।
चली सारदा बिसद-रुचि सरद-चाँदनी राति॥

शब्दार्थ :—ललित = सुन्दर। कलहंस गति = सुन्दर हंस पर चढ़कर चलनेवाली (सरस्वती) और सुन्दर हंस जिसमें घूमते हो वह शरद की रात्रि। सारदा = सरस्वती।

भावार्थ :—इस दोहे में शरद-ऋतु की चाँदनी रात और सरस्वती की समानता श्लिष्ट शब्दों से कही गई है।

(२९)

प्रीति द्वैज द्विजराज की कला कलप करि चित्र।
जगत लोक वंदित उदित वढ़त मित्र जो मित्र॥

शब्दार्थ :—द्वैज = द्वितीया तिथि का। द्विजराज = चन्द्रमा कलप = बनाकर। लोक वंदित = ससार जिसकी पूजा करे। मित्र = सूर्य, दोस्त।

(३०)

तनु आगैं कौ चलतु है मन वाही मग लीन।
सलिल सोत मै ज्यौं चपल चलत चढ़ाऊ मीन॥

शब्दार्थ :—वाही = उसी पहलेवाले। मग = रास्ते। लीन = लगा हुआ। सलिल सोत = पानी की धार। चपल = चंचल। चढ़ाऊ = चढनेवाला। मीन = मछली।

भावार्थ :—पानी आगे बहता है पर मछली धार के विरुद्ध चली जाती है, उसी प्रकार शरीर आगे चलता है पर मन पीछे ही जा रहा है।

(३१)

प्रतिविम्बित तो विम्ब मैं भूतल भयौ कलंक।
निज निरमलता दोष यह मन मैं मानि मयंक॥

शब्दार्थ :—प्रतिविम्बित = परछाईं पड़ा हुआ। विम्ब = मण्डल। निरमलता = स्वच्छता। मयङ्क = चन्द्रमा।

(३२)

तिहिं पुरान नव-द्वै पढ़ैं जिहिं जानी यह बात।
जो पुरान सो नव सदा नव पुरान ह्वै जात॥

शब्दार्थ :—पुरान = पुराण। नव-द्वै = अठारह। पुरान = पुराना, पुरातन। नव = नया।

भावार्थ :—जो पुराना है वह सदा नया है और जो नया है वह पुराना हो जाता है। यह तथ्य जिन्होंने जान लिया है उन्होंने अठारहों पुराण पढ़ लिये हैं।

(३३)

सपने मैं सपनौ समुझि होति दूर ज्यौं संक।
संक छोड़ि संसार की रही जानि निरसंक॥

शब्दार्थ :—संक = शंका, भय। निरसंक = निर्भय।

(३४)

हियें बसत मुख हसत हौ हमकौं करत निहाल।
घट-घट-व्यापी ब्रह्म तुम प्रगट भए नँदलाल॥

शब्दार्थ :—निहाल करत = इतना धन देते हो कि फिर उसे माँगने की ज़रूरत नहीं पडती। घट-घट-व्यापी = व्यापक सब जगह रहनेवाला। ब्रह्म = ईश्वर।

(३५)

बरनत साँच असंग कै तुमकौ वेद गुपाल।
हियैं हमारे बसत हौ पीर न पावत लाल॥

शब्दार्थ :—बरनत = कहते हैं। साँच = सत्य। असंग = निर्लेप। पीर = दुःख।

भावार्थ :—ईश्वर को वेदों में असंग अर्थात् सब चीज़ों में रहकर भी उनसे परे रहनेवाला कहा है। उसी का इसमें वर्णन है कि हे कृष्ण! तुम हमारे हृदय में तो रहते हो पर हमारी पीड़ा से दूर रहते हो। उसका संसर्ग भी तुमसे नहीं होता।

(३६)

मेरे दृग-बारिद बृथा बरषत बारि-प्रवाह।
उठत न अंकुर नेह कौ तो उर ऊसर माँह॥

शब्दार्थ :—दृग-वारिद = नेत्ररूपी बादल। बरषत = बरसाते हैं। वारिप्रवाह = पानी की धारा। उर = हृदय। ऊसर = ऐसी ज़मीन जिसमे कुछ पैदा न हो। माँह = मे।

(३७)

सुखद साधुजन कौं सदा गजमुख दानि उदार।
सेवनीय सब जगत कौ जग-माया-सुकुमार॥

शब्दार्थ :—सुखद = सुख देनेवाला। गज......उदार = जिस प्रकार हाथी के मुँह से दान अर्थात् मद की धारा निकलती है उसी प्रकार जो सदा दान देनेवाला है। जगमाया-सुकुमार = बालरूप श्रीकृष्ण।

(३८)

मद-रस-मत्त मिलिन्द-गन गान मुदित गन-नाथ।
सुमिरत कवि मतिराम कै सिद्धि रिद्धि निधि हाथ॥

शब्दार्थ :—मद......नाथ = मस्त भौंरों के गाने से प्रसन्न गणेश जी। सिद्धि रिद्धि = धन-दौलत।

(३९)

अंग ललित सित-रंग पट अंगराग अवतंस।
हंस-वाहिनी कीजियै वाहन मेरौ हंस॥

शब्दार्थ :—हंस-वाहिनी = सरस्वती (हंस पर चढ़नेवाली); वाहन = सवारी। हंस = आत्मा। सितरंग पट = सफ़ेद कपड़ा; अंगराग = सुगन्धित लेप। अवतंस = गहना।

इस दोहे में सरस्वती की वंदना है।

(४०)

नृपति-नैन-कमलनि वृथा चितवत वासर जाहिँ।
हृदय-कमल मैं हेरि लै कमलमुखी कमलाहिँ॥

शब्दार्थ :—नृपति-नैन-कमलनि = राजाओं की नज़र। चितवत = देखते देखते। वासर = दिन। हेरि लै = देख लो। कमलाहिँ = लक्ष्मी को।

इस दोहे में लक्ष्मी की वंदना है।

(४१)

जो निसिदिन सेवन करै अरु जो करै विरोध।
तिन्हैं परम पद देत प्रभु कहौ कौन यह बोध॥

शब्दार्थ :—निसिदिन = रात-दिन। परम पद = मुक्ति। बोध = ज्ञान।

भावार्थ :—जो रात-दिन प्रभु की भक्ति में दत्तचित्त रहता है प्रभु उसे मुक्त करके उच्च पद देते हैं और जो प्रभु का तपस्या आदि के द्वारा विरोध करने लगता है प्रभु उसे भी उच्च पद देते हैं, तो भक्त और विरोधी का अन्तर क्या हुआ ?

(४२)

पगीं प्रेम नँदलाल के हमें न भावत जोग।
मधुप राजपद पाइ के भीख न माँगत लोग॥

शब्दार्थ :—पगीं = डूबी हुईं। मधुप = उद्धव नाम का कृष्ण का मित्र जो कृष्ण के वियोग से दुःखित गोपियों को योग का उपदेश देने गया था। उसी का गोपियो के साथ सवाद इस दोहे मैं वर्णित है। गोपियों ने कृष्ण की भक्ति और प्रेम मे योग को ठुकरा दिया था।

विशेष :—इसी भाव का एक दोहा रसनिधि का है :—

नंदलाल सँग लग गए बुध विचार बर ज्ञान।
अब उपदेसनि जोग ब्रज आयौ कौन सयान॥

(४३)

विषयनि तैं निरबेद उर ज्ञान जोग व्रत नेम।
विफल जानियौ ए विना प्रभु-पद-पंकज-प्रेम॥

शब्दार्थ :—विषयनि = संसार के भोग। निरबेद = विरक्ति। विफल = फ़िज़ूल। विना...प्रेम = ईश्वर की भक्ति विना।

(४४)

देखत दीपति दीप की देत प्रान अरु देह॥
राजत एक पतंग मैं बिना कपट कौ नेह॥

शब्दार्थ :—दीपति = प्रकाश। दीप = दीया। राजत = शोभित। पतंग = परवाना।

(४५)

प्रगट कुटिलता जो करी हम पर स्याम सरोस।
मधुप जोग विष उगलियै कछु न तिहारौ दोस॥

शब्दार्थ :— कुटिलता = दुष्टता। सरोस = नाराज़ होकर। मधुप = उद्धव। तिहारौ = तुम्हारा।

(४६)

उदै भयौ है जलद! तू जग कौ जीवन-दानि।
मेरौ जीवन हरतु है कौन बैर मन मानि॥

शब्दार्थ :—उदै = उदय। जलद = बादल। जीवनदानि = जल को देनेवाला। जीवन = प्राण। हरत है = लेते हो। (जीवन का अर्थ प्राण और जल दोनों ही है।)

(४७)

मो मन मेरी बुद्धि लै करि हर कौं अनुकूल।
लै त्रिलोक की साहिबी दै धतूर कौ फूल॥

शब्दार्थ :—मो = मेरा। अनुकूल = प्रसन्न। साहिबी = प्रभुता। लै = लेकर। दै = देकर।

भावार्थ :—कोई अपने मन को संबोधन करके कहता है कि तुम अपने आपको हर के अनुकूल बना लो। धतूरा के फूल भी चढ़ा देने से तुम्हें त्रिलोकी की प्रभुता प्राप्त हो जायगी। (धतूरा के फल विषैले होते हैं।)

(४८)

मधुप मोह मोहन तज्यौ यह स्यामनि की रीति।
करौ आपने काज कौ तुम्हे जाति सी प्रीति॥

शब्दार्थ :—मधुप = भौरा, उद्धव। मोहन = श्रीकृष्ण। स्यामनि = काले लोग, जो शरीर और हृदय के भी काले है। काज = काम। जाति—कृष्ण भी काले थे और भौंरा भी काला होता है, इसलिए दोनो एक ही जाति के हुए। सी = समान।

भावार्थ :—उद्धव! श्रीकृष्ण ने हमारा मोह छोड़ दिया है। काले (अथवा शरीर और हृदय के काले) लोगों का यही ढङ्ग होता है। तुम अपना काम करो, तुम श्रीकृष्ण का पक्ष ले रहे हो, क्यों न लो, वे तुम्हारी जाति के हैं, तुम्हें उनके साथ प्रीति स्वाभाविक है।

विशेष :—जाति के पक्षपात में रहीम ने ऐसे कहा है :—

रहिमन अपने गोत को, सबै चहत उत्साह ।
मृग उछरत आकास को, भूमी खनत बराह ॥

(४९)

खल वचननि की मधुरई चाखि साँप निज श्रोन ।
रोम रोम पुलकित भए कहत मोद गहि मौन ॥

शब्दार्थ :—खल = दुष्ट । वचननि = वचनों की । मधुरई = मिठास । श्रोन = कान । मोद = प्रसन्नता । मौन = चुप्पी ।

भावार्थ :—दुष्टों के वचनों की मिठास साँप अपने कान से सुनकर रोमाञ्चित होते हैं और मौन होकर प्रसन्नता प्रकट करते हैं। (वास्तव में न तो दुष्टों के वचनों में मिठास होती है और न साँप के कान होते हैं और न रोम ही। साँप आँख से ही सुनता है।)

अलंकार—इस दोहे में सभी बातें मिथ्या और असम्भव कही गई हैं, इसलिए इस दोहे में मिथ्याध्यवसित अलंकार है।

(५०)

कहा भयौ तजि जात है मलिन मधुप दुख मानि ।
सुबरन बरन सुवासजुत चंपक लहै न हानि ॥

शब्दार्थ :—कहा भयौ = क्या हुआ । तजि जात है = छोड़ जाता है । मलिन = नीच । मधुप = भौंरा । सुबरन बरन = सोने जैसा रंग । चंपक = चंपा का फूल । (यह प्रसिद्ध है कि भौंरा चंपा के फूल पर नहीं बैठता ।)

(५१)

उड़ि गुलाल पिय-करनि तैं लगत प्रिया-मुख-चंद।
मनौ कोकनद रजनिकर करत रजनिकर मंद॥

शब्दार्थ :—पिय-करनि तै = प्रीतम के हाथों से। मनौ = मानो। कोकनद = कमल (नायक के हाथ)। रजनिकर = पराग-समूह। रजनिकर = रात्रि करनेवाला चन्द्रमा।

भावार्थ :—श्री राधिका के चन्द्र-मुख पर गुलाल पड़ने से मुख ढँप गया है मानो कमल के परागसमूह ने चन्द्रमा को आच्छादित कर लिया है अर्थात् चन्द्रमा अस्त होने को है और अब सूर्योदय होने पर कमल खिलेगा।

(५२)

को हरि-बाहन, जलधि-सुत को को ज्ञान-जहाज।
तहाँ चतुर उत्तर दियौ एक बचन द्विजराज॥

शब्दार्थ :—को = कौन। हरि-बाहन = विष्णु की सवारी। जलधि-सुत = समुद्र का पुत्र।

भावार्थ :—ये तीन प्रश्न हैं—इनका एक ही उत्तर है—द्विजराज। अर्थात् द्विजराज = गरुड़ (विष्णु की सवारी), द्विजराज = चन्द्रमा (समुद्र का पुत्र) और द्विजराज = विद्वान् ब्राह्मण (ज्ञान-जहाज)।

(५३)

सेत वसन की चाँदनी परत गुलाल सुरंग।
मानौं सुर-सरिता मिलति सरसुति-तरलतरंग॥

शब्दार्थ :—सेत = सफ़ेद। वसन = वस्त्र। परत = पड़ता है। गुलाल = अबीर। सुरंग = सुन्दर रंग। सुरसरिता = गंगा। सरसुति

तरल तरंग = सरस्वती नदी की चञ्चल तरंगों से। सरस्वती नदी का लाल रंग माना जाता है।

(५४)

स्याम-रूप अभिराम अति सकल विमल गुन-धाम।
तुम निसिदिन मतिराम की मति बिसरौ मति राम॥

शब्दार्थ :—स्यामरूप = साँवला रूप। मतिराम = कवि का नाम। मति बिसरौ = मत भूलो। मति = बुद्धि।

(५५)

प्रतिपालक सेवक सकल खलनि दलमलत डाँटि।
संकर तुम सम साँकरै सबल साँकरै काटि॥

शब्दार्थ :—प्रति......सकल = सब सेवकों का पालन करनेवाला। खलनि = दुष्टों को। दलमलत = नष्ट करते हो। संकर = शिवजी। साँकरै = संकट के समय में। सबल = दृढ। साँकरै = ज़ंजीरे, बन्धन।

(५६)

सेवक सेवा के सुनें सेवा देव अनेक।
दीनबन्धु हरि जगत है दीनबन्धु हर एक॥

शब्दार्थ :—सेवा देव = सेवा करानेवाले देवता। दीनबन्धु = ग़रीबों के रक्षक। हर = शिव।

(५७)

अधम अजामिल आदि जे हौं तिनको हौं राउ।
मोहूँ पर कीजै मया कान्ह दया-दरियाउ॥

शब्दार्थ :—अधम = नीच। अजामिल = एक महापापी ब्राह्मण जो कि अपने नीच कर्मों से महापतित हो गया था पर मृत्यु-समय मे

अपने नारायण नाम के लड़के को नारायण का नाम लेकर पुकारने से मुक्त हो गया। हौ = मैं। हौं = हूँ। राउ = प्रधान राजा। मया = कृपा। दरियाउ = समुद्र।

विशेष :—सूरदास ने भी कहा है :—

कब तुम मोसो पतित उबारो।

पतितनि मे विख्यात पतित हौं, पावन नाम तिहारो।

बड़े पतित पासंगहुँ नाहीं, अजमिल कौन बिचारो॥

× × × ×

(५८)

निरखि तरनि कर-निकर कौ अरु बरनत आलोक।

होत प्रफुल्लित सोक तजि सकल कोकनद कोक॥

शब्दार्थ :—निरखि = देखकर। तरनि = सूर्य। कर = किरण। निकर = समूह। आलोक = प्रकाश। प्रफुल्लित = खिलना, प्रसन्न होना। कोकनद = कमल। कोक = चकवा।

(५९)

कीनौ अति अनुराग सौ पीतम आधे रूप।

मनौ लिये गुन गौरि तैं गुन-गौरि तै अनूप॥

शब्दार्थ :—कीनौ = कर लिया। अनुराग = प्रेम। सौ = से। पीतम = पति। आधे रूप = स्त्री पति की अर्धाङ्गिनी कही जाती है, सो अपना आधा शरीर। गौरि = पार्वती। तै = से। गुन-गौरि = उज्ज्वल गुणोंवाली स्त्री। अनूप = अनुपम, अनोखा।

भावार्थ :—कवि ने इस दोहे में बताया है कि किस कौशल से स्त्री ने अपने पति को अपना अर्ध-भाग बना लिया, मानो पार्वती जी से, अनुपम गुणोंवाली स्त्री से तुमने गुण ग्रहण कर लिये।

(६०)

जानति सौति अनीति है जानति सखी सुनीति ।
गुरुजन जानत लाज है प्रीतम जानत प्रीति ॥

शब्दार्थ :—सौति = सौतनि, सपत्नी । अनीति = अन्याय ।

भावार्थ :—यह किसी व्यवहार-कुशला वधू का वर्णन है। इसके दो अर्थ हो सकते हैं :—

(१) नव वधू को सौत अनीति और सखी सुनीति आदि समझाती हैं। इस अर्थ मे सौत आदि कर्ता और वधू कर्म है।

(२) दूसरे अर्थ में वधू कर्ता, सौत आदि सम्बन्धकारक और अनीति कर्म हो जाते हैं अर्थात् वधू सौतों को अनीति और सखियों की सुनीति आदि को जानती है।

(६१)

कलकल कलिका-कुल ललक कोकिल-कुल की केलि ।
लोलै कला कलोल कै लाल लाल कंकेलि ॥

शब्दार्थ :—कल = सुन्दर । कलिका-कुल = कलियों का समूह । ललक = इच्छा । कोकिल = कोयल । केलि = क्रीडा, खेल । लोलै = चचल । कलोल = क्रीडा । कंकेलि = अशोक वृक्ष ।

(६२)

कल्पद्रुम-पल्लव भयौ तूँ अति दानि निदान ।
भोगनाथ नर-नाथ के हाथ-साथ पढ़ि दान ॥

शब्दार्थ :—कल्पद्रुम-पल्लव = कल्पवृक्ष का पत्ता । दानि = दान देनेवाला । निदान = मूर्ख । भोगनाथ = बूँदी के राजा और मतिराम कवि के आश्रयदाता ।

(६३)

तुरतहिँ गयो बिलाइ कै हुत्यो परम अभिराम।
नाह रावरौ नेह यह भयो गंधरब-गाम॥

शब्दार्थ :—बिलाइ = नष्ट। हुत्यो = था। नाह = स्वामी। रावरौ = आपका। नेह = प्रेम। गंधरब-गाम = झूठा, देखते देखते नष्ट होनेवाला।

विशेष :—रात में पथिक मार्ग में कहीं प्रकाश देखकर समझता है कि गाँव पास ही है, वहाँ विश्राम करूँगा। परन्तु ज्यों ज्यों आगे बढ़ता है त्यों त्यों वह प्रकाश दूर हटता जाता है और अन्त में अन्तर्धान हो जाता है। इसे गंधर्वों का गाँव कहते हैं।

(६४)

छोड़ि नेह नँदलाल कौ हम नहिं चाहतिँ जोग।
रंग बाति क्यों लेत हैं रतन-पारखी लोग॥

शब्दार्थ :—रंग बाति = नक़ली रत्न। रतन-पारखी = जौहरी।

प्रसग :—यह भी उद्धव और गोपियो का संवाद है।

(६५)

भोगनाथ नर-नाथ के गुन-गन बिमल बिसाल।
भिच्छुक सेवत पानि है पग सेवत महिपाल॥

शब्दार्थ :—बिमल = निर्मल। पानि = हाथ। पग = चरण। महिपाल = राजा।

(६६)

निज स्वरूप प्रभु देत है साँच कहत मुनि-गोत।
भोगनाथ की रीझ मै भोगनाथ कवि होत॥

शब्दार्थ :—गोत = समूह। रीझ = प्रसन्नता। भोगनाथ = सब सुख सम्पत्ति से युक्त।

(६७)

कढ़त पियूषहुँ तें मधुर मुख सुरसति के सोत।
भोगनाथ नर-नाथ कें साथ वसें कवि होत॥

शब्दार्थ :—कढ़त = निकलते हैं। पियूषहुँ = अमृत से भी। सुर... सोत = गंगा की-सी धारा।

(६८)

लखत लाल मुख पाइहौ, वरनि सकै नहिं वैन।
लसत वदन सतपत्र सौं, सहसपत्र से नैन॥

शब्दार्थ :—लखत = देखते ही। लाल = श्रीकृष्ण। पाइहौ = चरणों को। वरनि = वर्णन करना। वैन = वचन। लसत = शोभित हैं। वदन = मुख। सतपत्र = शतपत्र कमल। सहसपत्र = सहस्रपत्र कमल।

भावार्थ :—मुख और नेत्र दोनों ही कमल-सदृश हैं। कवि ने मुख को सौ पंखुड़ियोंवाला कमल कहा है और नेत्रों को हज़ार पंखुड़ियोंवाला। इसका कारण यह है कि मुख से यदि सौ मनोभावों का पता चलता है तो नेत्रों से हज़ार का।

विशेष :—यही भाव विहारी ने भी प्रकट किया है :—

झूठे जानि न संग्रहे मन मुँह-निकसे वैन।
याही तें मानहु किये बातनु कौं विधि नैन॥

रस की सी रुख, ससिमुखी, हँसि हँसि बोलत बैन।
गूढ़ मानु मन क्यों रहै, भए बूढ़-रँग नैन॥

वृन्द ने भी इस भाव पर एक दोहा रचा है :--

नैना देत बताय सब हिय को हेत अहेत।
जैसे निर्मल आरसी भली बुरी कहि देत॥

(६९)

होत जगत मैं सुजन कौं दुरजन रोकनहार।
केतकि, कमल, गुलाब के कंटकमय परिहार॥

शब्दार्थ :—सुजन = सज्जन। कंटकमय = काँटों से भरा। परिहार = रोक।

(७०)

करौ कोटि अपराध तुम वाके हियैं न रोष।
नाह-सनेह-समुद्र मैं बूड़ि जात सब दोष॥

शब्दार्थ :—रोष = क्रोध। वाके = आपके। नाह = स्वामी। बूडि जात = डूब जाते हैं।

(७१)

छाँह बिना ज्यौं जेठ-रबि ज्यौं बिनु ओषधि रोग।
ज्यौं बिनु पानी प्यास ज्यौं तेरो दुसह बियोग॥

शब्दार्थ :—जेठ-रवि = ज्येष्ठ मास का सूर्य। दुसह = कठिन।

भावार्थ :—कोई भक्त ईश्वर के वियोग में अपनी अवस्था का वर्णन कर रहा है।

(७२)

मो दृग-कजनि कौं दियौ दरसनु मोद निदानु।
भोगनाथ मन-भावते भए भोर के भानु॥

शब्दार्थ :—मो = मेरे। दृग-कंजनि = नेत्ररूपी कमल। मोद = प्रसन्नता। निदानु = अन्त में। मन-भावते = मन को प्रसन्न करनेवाले। भोर = सवेरा। भानु = सूर्य।

(७३)

कपट वचन अपराध तैं निपट अधिक दुखदानि।
जरे अंग में संकु ज्यौं होत विथा की खानि॥

शब्दार्थ :—निपट = अत्यन्त। दुखदानि = दुःख देनेवाला। जरे = जले हुए। संकु = बर्छा। विथा = दुःख। खानि = खान।

(७४)

पीत झँगुलिया पहिरि कै लाल लकुटिया हाथ।
धूरि भरे खेलत रहैं व्रजवासिन व्रजनाथ॥

शब्दार्थ :—पीत = पीले रंग की। झँगुलिया = कुरता। लकुटिया = लाठी। व्रजवासिन = व्रज के लोगों में। व्रजनाथ = श्रीकृष्ण।

(७५)

मेरी मति मै राम है कवि मेरे 'मतिराम'।
चित मेरौ आराम मे चित मेरैं आराम॥

शब्दार्थ :— मति = बुद्धि। आ + राम = उद्यान, आराम अर्थात् हे राम, आओ, परब्रह्म का आनन्द।

भावार्थ :—मेरी बुद्धि में राम रहते हैं, कवि मेरे मतिराम हैं अर्थात् मैं मतिराम नाम का कवि हूँ। मेरा चित्त परब्रह्म के आनन्द में रहता है, अतएव राम! मेरे चित्त में आओ।

———

वृन्द के दोहे

(१)

श्री गुरुनाथ प्रभाव ते होत मनोरथ-सिद्धि।
घन ते ज्यों तरु वेलि दल फूल फलन की वृद्धि॥

शब्दार्थ :—मनोरथ-सिद्ध = मनोरथों की पूर्ति। दल = पत्ते।

अलंकार—दृष्टान्त, छेकानुप्रास, अंत्यानुप्रास।

(२)

नीकी पै फीकी लगै विन अवसर की बात।
जैसे वर्णन युद्ध में रस सिँगार न सुहात॥

शब्दार्थ :—नीकी = सुन्दर, अच्छी।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास।

(३)

हलन चलन की सकति है तौ लौं उद्यम ठानि।
अजगर ज्यौं मृगपति बदन मृग न परतु है आनि॥

शब्दार्थ :—हलन चलन की सकति = हिलने जुलने की शक्ति। तौ लौं = तब तक। अजगर = बड़ा साँप। मृगपति = सिंह। बदन = मुँह।

विशेष :—हितोपदेश में इसी भाव का एक पद्य है :—

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥

अलंकार—दृष्टान्त।

(४)

जो जाही को ह्वै रह्यौ सो तिहिं पूरे आस।
स्वाति बूँद बिन सघन में, चातक मरत पियास॥

शब्दार्थ :—जो......रह्यौ = जो जिसका होकर रहता है। स्वाति = एक नक्षत्र का नाम है। चातक = पपीहा। सघन = अधिक बादलों। स्वाति... . पियास = स्वाति नक्षत्र में गिरे पानी की बूँद के बिना चातक प्यासा मरता है।

विशेष :—यही भाव कबीर ने एक दोहे मे वर्णन किया है :—

कबिरा सीप समुद्र की रटै पियास पियास।
और बूँद को न गहै स्वाति बूँद की आस॥

(५)

कैसे निबहै निबल जन कर सबलन सों बैर।
जैसे बसि सागर बिषे करत मगर सों बैर॥

शब्दार्थ :—कैसे निबहै = कैसे निर्वाह हो सकता है। सागर बिषे = समुद्र के बीच में। मगर = मगरमच्छ।

विशेष :—यही दोहा 'रहीम-रत्नावली' मे रहीम के नाम दिया गया है। पहली पंक्ति मे 'बैर' के बदले 'गैर' है।

(६)

दीयो अवसर को भलो जासो सुधरे काम।
खेती सूखे बरसिबो घन को कौने काम॥

शब्दार्थ :—बरसिबो = बरसना।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास, लोकोक्ति।

(७)

ओछे नर की प्रीति की दीनी रीति बताय।
जैसे छीलर ताल जल घटत घटत घटि जाय॥

शब्दार्थ :—ओछे = नीच। छीलर = थोड़े पानीवाला। ताल = तालाब।

(८)

करिये सुख को होत दुख यह कहु कौन सयान।
वा सोने को जारिये जासों टूटत कान॥

शब्दार्थ :—सयान = समझदारी, चतुरता। जारिये = जला दो।

(९)

नैना देत बताय सब हिय को हेत अहेत।
जैसे निर्मल आरसी भली बुरी कहि देत॥

शब्दार्थ :—नैना = नयन, आँख। हिय = हृदय। हेत अहेत = भली बुरी बात। आरसी = दर्पण।

भावार्थ :—जो बातें हृदय प्रकट करने में असमर्थ है, वे आँखे प्रकट कर देती हैं।

विशेष :—बिहारी ने इस भाव को ऐसे वर्णन किया है :—

झूठे जानि न संग्रहे मन मुँह निकसे बैन।
याही ते मानहु किये बातनु को विधि नैन॥

मतिराम ने इसको इस प्रकार रखा है :—

लखत लाल मुख पाइहौ बरनि सकै नहिँ बैन।
लसत बदन सतपत्र सौ सहसपत्र से नैन॥

(१०)

मधुर बचन ते जात मिट उत्तम जन अभिमान।
तनिक सीत जल सों मिटै जैसे दूध उफान॥

शब्दार्थ :—अभिमान = गर्व, क्रोध। सीत = शीत, ठंडा। उफान = उबाल।

(११)

समै समुझिकै कीजिये काम वहै अभिराम।
सैधव माँग्यो जेवते घोरा को कह काम॥

शब्दार्थ :—समै = समय। अभिराम = अच्छा। सैधव = नमक और घोडा। जेवते = खाते हुए। घोरा = घोडा।

(१२)

असुभ करत सोइ होत सुभ सज्जन बचन अनूप।
स्रवन पिता दिय दशरथहिं शाप भयौ बररूप॥

शब्दार्थ :—स्रवन = श्रवणकुमार।

भावार्थ :—सज्जनों के अनोखे वचन बुरा भी करें तो भी उनसे भलाई ही होती है। श्रवण के पिता ने दशरथ को शाप दिया। लेकिन वह शाप उनके लिए वररूप सिद्ध हुआ।

विशेष :—राजा दशरथ के घर मे कोई सन्तान नहीं थी। एक दिन शिकार करते हुए उन्होने गलती से श्रवण को बाण से मार दिया। पुत्र-शोक से व्यथित होकर श्रवण के अंधे पिता ने दशरथ को शाप दिया। जैसे हम पुत्र-वियोग से मर रहे है वैसे तू भी पुत्र-वियोग से मरेगा। यह शाप दशरथ के लिए एक प्रकार

का वर सिद्ध हुआ; क्योंकि इसके पूरे होने के लिए दशरथ के घर में पुत्र का होना निश्चित हो गया।

(१३)

एक बुरे सबको बुरो होत सबल को कोप।
अवगुण अर्जुन के भया सब छत्रिन को लोप॥

शब्दार्थ :—सबल = बलवान्। कोप = क्रोध। अर्जुन = सहस्रबाहु अर्जुन। लोप = सत्यानाश।

भावार्थ :—बलवान् के क्रोध से यदि एक का (भी) बुरा हो तो (उसके संबंधी) सारों का बुरा होता है। जैसे परशु-राम के क्रोध के कारण सहस्रबाहु अर्जुन का नाश तो हुआ ही परन्तु साथ सब क्षत्रियों का इक्कीस बार सर्वनाश हो गया था।

विशेष :—परशुराम के पिता जमदग्नि की कामधेनु को देखकर सहस्रबाहु अर्जुन को इच्छा उत्पन्न हुई कि किसी तरह उस कामधेनु को लिया जाय। पहले तो उसने जमदग्नि से माँगा पर जब उसने देने में आनाकानी की तो सहस्रबाहु अर्जुन ने उसको मार दिया और कामधेनु ले गया। अपने पिता की ऐसी अवस्था देखकर परशुराम ने पहले अर्जुन को मारा और फिर इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित कर दिया था।

(१४)

अपनी अपनी ठौर पर शोभा लहत विशेष।
चरण महावर है भली नैनन अंजन रेख॥

शब्दार्थ :—ठौर = स्थान। शोभा लहत = शोभा प्राप्त करता है। महावर = मेंहदी। अंजनरेख = कज्जल की रेखा।

विशेष :—बिहारी ने भी यह भाव एक दोहे में कहा है :—

पाइल पाइ लगी रहै लगौ अमौलिक लाल।
भोडर हूँ की भासिहै बेंदी भामिनि-भाल ॥

(१५)

जैसे बन्धन प्रेम को तैसो बंध न और।
काठहि भेदै कमल कौं छेदि न निकरै भौर ॥

शब्दार्थ :—बंध = बंधन। काठहि = काष्ठ, लकडी को। भेदै = भेदन कर देता है। भौर = भौरा।

भावार्थ:—जैसा प्रेम का बन्धन होता है वैसा कोई और बन्धन नहीं होता। भौंरा लकड़ी को तो छेद देता है परन्तु कमल को नहीं क्योंकि कमल से उसका प्रेम है। सायकाल जब कमल बन्द होता है तो भौंरा बीच ही में बन्द हो जाता है और उसके भीतर प्रातःकाल तक बन्द रहता है परन्तु उसे छेदता नहीं। यह प्रेम-बन्धन का प्रभाव है। अपने प्रेमपात्र कमल-द्वारा कभी पीड़ा पहुँचने पर भी (अर्थात् सायंकाल में उसमें बन्द हो जाने पर भी) भौंरा शान्त रहता है, कमल को कुछ अनिष्ट नहीं करता।

विशेष :—यही भाव रसनिधि ने वर्णन किया है :—

कोलत काठ कठोर क्यो होत कमल में बंद।
आई मो मन-भँवर की इतनी बात पसंद ॥

(१६)

सूख वीते दुख होत है दुख बीते सुख होत।
दिवस गये ज्यौं निसि उदित निसिगत दिवस उदोत ॥

शब्दार्थ :—दिवस = दिन। निसि = रात। उदित = आ जाती है।

(१७)

पर घर कबहुँ न जाइये गये घटत है ज्योति।
रविमण्डल में जात शशि छीन कला छवि होति॥

शब्दार्थ :—ज्योति = प्रकाश, प्रभाव, मान।

भावार्थ :—पराये घर कभी नहीं जाना चाहिए, जाने पर मान घट जाता है। कृष्णपक्ष में सूर्य के घेरे में जाने पर चन्द्रमा की शोभा क्षीण हो जाती है।

विशेष :—रहीम ने यही भाव इस प्रकार कहा है :—

कौन बड़ाइ जलधि मिलि गंग नाम भो धीम।
केहि की प्रभुता नहिं घटी पर घर गये रहीम॥

(१८)

होय शुद्ध मिटि कलुषता सत संगति को पाय।
जैसे पारस को परसि लोह कनक ह्वै जाय॥

शब्दार्थ :—कलुषता = मलीनता। पाय = प्राप्त कर। पारस = एक पत्थर जिसके साथ लगने से लोहा सोना हो जाता है। कनक = सोना।

भावार्थ :—साधु पुरुषों की संगति को प्राप्त करके मनुष्य की मलीनता दूर हो जाती है और वह शुद्ध (ज्ञानवान) बन जाता है। जिस प्रकार पारस का स्पर्श करके लोहा सोना हो जाता है। विहारीलाल ने संगति की स्तुति यों की है :—

अजौं तर्‌यौना ही रह्यौ श्रुति सेवत इक अंग।
नाक वास वेसर लह्यौ बसि मुक्तन के संग॥

विशेष :— कबीर ने लिखा है :—

कबिरा संगत साध की हरै और की व्याधि ।
संगत बुरी असाध की आठो पहर उपाधि ।।

अलंकार—उल्लास, अर्थान्तरन्यास ।

(१९)

घटति बढ़ति सम्पति सुमति गति अरहट की जोय ।
रीती घटिका भरति है भरी सुरीती होय ।।

शब्दार्थ :—सुमति = बुद्धिमान् पुरुष । गति = चाल । अरहट = कुआँ जिससे पानी निकालने के लिए बैल जोडे जाते हैं । जोय = देख ले । रीती = ख़ाली । घटिका = घड़िया ।

भावार्थ :—हे बुद्धिमान् मनुष्य ! धन-दौलत सदा घटती और बढ़ती रहती है जिस तरह अरहट की चाल होती है कि ख़ाली घड़िया भर जाती है और भरी हुई ख़ाली हो जाती है ।

विशेष :—किसी नीतिकार ने कहा है :—

"चक्रस्येव परिवर्तन्ते दुःखानि सुखानि च ।"

रहीम ने लिखा है—

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय ।
पुरुष पुरातन की वधू, क्यों न चंचला होय ।।

(२०)

या जग की विपरीत गति समुझी देखि सुभाव ।
कहैं जनार्दन कृष्ण को हर को शंकर नाँव ।।

शब्दार्थ :—विपरीत = उल्टी । जनार्दन = जनों (मनुष्यों) का अर्दन (पीड़न) करनेवाला अर्थात् श्रीकृष्ण । हर = हरनेवाला,

सृष्टि का संहार करनेवाला, महादेव। शंकर=कल्याण करनेवाला। नाँव=नाम।

भावार्थ :– इस संसार की गति बड़ी उलटी है, यह अच्छी तरह से देख लिया। लोग कृष्ण (जो रसिक हैं) को तो जनार्दन (लोगों को दुःख देनेवाला) कहते हैं और हर, जो सृष्टि का संहार करते हैं, उनको शङ्कर अर्थात् (कल्याण-कारक) के नाम से पुकारते हैं।

(२१)

अनुचित अतिबल आपनो कहै अनादर होय।
संग्रह कियो न नृप दुहुनि रुक्म गयो पति खोय॥

शब्दार्थ :—संग्रह कियो न=नहीं अपनाया। दुहुनि=दोनो ने। रुक्म=कृष्णजी की पत्नी रुक्मिणी जी का भाई। पति=लाज।

भावार्थ :—अपने बल को अनुचित तौर पर बढ़ाकर कहने से अपमान होता है। जैसे रुक्म को (दुर्योधन और अर्जुन) दोनों राजाओं ने नहीं अपनाया और वह अपनी लाज खोकर चला गया था।

विशेष :—महाभारत के युद्ध में रुक्म को दुर्योधन और अर्जुन दोनों ने इसी लिए अपने पक्षों में नहीं मिलाया था कि उसने अपने बल को बढ़ चढ़कर बताया था।

(२२)

जिहिं प्रसंग दूषन लगै तजिये ताको साथ।
मदिरा मानत है जगत दूध कलाली हाथ॥

शब्दार्थ :—दूषन=दोष। तजिये=छोड़ दो। मदिरा=शराब। कलाली=कलालिन, शराब बेचनेवाली स्त्री।

भावार्थ :—कलालिन के हाथ में यदि दूध भी हो तो भी लोग उसे शराब ही समझते हैं।

विशेष :—रहीम भी इसी भाव को प्रकट करते हैं :—

रहिमन नीचन संग बसि लगत कलंक न काहि।
दूध कलारिन हाथ लखि मद समुझहिं सब ताहि॥

अलंकार—दृष्टान्त, लोकोक्ति।

(२३)

बिन स्वारथ कैसे सहै कोऊ करुवे बैन।
लात खाय पुचकारिये जु होय दुधारू धैन॥

शब्दार्थ :—कोऊ = कोई। करुवे = कड़वे। बैन = वचन। पुचकारिये = थापी देकर प्यार कीजिए। दुधारू = दूध देनेवाली। धैन = धेनु, गाय।

(२४)

सज्जन तजत न सजनता कीन्हेहु दोष अपार।
ज्यौं चन्दन छेदै तऊ सुरभित करहि कुठार॥

शब्दार्थ :—कीन्हेहु करने पर। अपार = अनगिनत। तऊ = तो भी। कुठार = कुल्हाडी।

(२५)

जाकौ जहँ स्वारथ सधै सोई ताहिँ सुहात।
चोर न प्यारी चाँदनी जैसे कारी रात॥

शब्दार्थ :—सधै = सिद्ध होता है। कारी = काली।

(२६)

अति ही सरल न हूजिये देखो ज्यों वनराय।
सीधे सीधे छेदिये बाँको तरु बचि जाय॥

शब्दार्थ :—सरल = सीधे। बाँको = टेढ़ा। तरु = वृक्ष। वनराय = वृक्ष।

विशेष :—विहारी का भी इसी भाव का एक दोहा है :—

बसै बुराई जासु तन ताही को सन्मानु।
भलौ भलौ कहि छोड़िये खोटै ग्रह जपु दानु॥

(२७)

कष्ट परेहूँ महत जन नेकु न होत मलान।
ज्यौं ज्यौं कंचन ताइये त्यों त्यों निर्मल बान॥

शब्दार्थ :—परेहूँ = पड़ने पर। नेकु = ज़रा भी। मलान = म्लान, घबराते। कंचन = सोना। ताइये = तपाइये। बान = चमक।

(२८)

विनसत गुणसत गुणिन के अगुण पुरुष के पास।
ज्यौं अंजनगिरि चन्दकर नेक न होत प्रकास॥

शब्दार्थ :—विनसत = नष्ट हो जाते हैं। गुणसत = सौ गुण। अंजनगिरि = कज्जल का पर्वत। चन्दकर = चन्द्रमा की किरणें। नेक = थोड़ा।

भावार्थ :—निर्गुणी मनुष्यों के पास रहने से गुणवानों के गुण भी नष्ट हो जाते हैं। जैसे कज्जल के पर्वत के ऊपर चन्द्रमा की किरणों का ज़रा भी प्रकाश नहीं होता।

विशेष :—यह भाव बिहारी के भी एक दोहे मे पाया जाता है :—

वे न इहाँ नागर, बढ़ी जिन आदर तो आब।
फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ गवँई गाँव, गुलाब॥

(२९)

उद्यम कबहूँ न छोड़िये पर आशा के मोद।
गागरि कैसे फोरिये उनयो देखि पयोद॥

शब्दार्थ :—पर.....मोद = दूसरे की उम्मीद की आशा में। उनयो = उमड़ते हुए, उमड़े हुए। पयोद = बादल।

(३०)

जो पहिले कीजे जतन सो पाछे फलदाय।
आग लगे खोदे कुँवा कैसे आग बुझाय॥

शब्दार्थ :—जतन = यत्न, परिश्रम। पाछे = पीछे, बाद मे।

(३१)

कहिये बात प्रमाण की जासो सुधरे काज।
फीको थोरे लोन ते अधिके खारो नाज॥

शब्दार्थ :—प्रमाण की = नपी-तुली।

(३२)

अरि के संग कुटुम्ब लखि जिय उपजत है त्रास।
बैसो लगे कुठार को तब बनराइ विनास॥

शब्दार्थ :—अरि = शत्रु। त्रास = डर। बैसो = बींटा, लकड़ी का हत्था। कुठार = कुल्हाडी। बनराइ = वृक्ष।

(३३)

धन बाढ़ै मन बढ़ि गयो नाहिन मन घट होय।
ज्यौं जल सँग बाढ़ै जलज जल घटि घटै न सोय ॥

शब्दार्थ —बाढ़ै = बढ़ने पर। जलज = कमल।

विशेष :—बिहारी का भी इसी प्रकार का एक दोहा देखिए :—

बढ़त बढ़त संपति-सलिलु, मन सरोजु बढ़ि जाइ।
घटत घटत सु न फिरि घटै, बरु समूल कुम्हिलाइ ॥

अलंकार—दृष्टान्त, असंगति, सहोक्ति।

(३४)

सब तें लघु है माँगिबौ या मे फेर न सार।
बलि पै याचत ही भये वामन तन करतार ॥

शब्दार्थ :—लघु = तुच्छ। माँगिबौ = माँगना। बलि = बलि नामक राजा। याचत ही = माँगते ही। वामन तन = ठिगने शरीरवाला। करतार = परमेश्वर।

भावार्थ :—माँगना सबसे तुच्छ कार्य है, इसमें कोई फेर नहीं। अर्थात् यह बिलकुल निश्चित है। बलि राजा के पास माँगते ही परमेश्वर ठिगने शरीरवाले (वामनावतार) बन गये थे।

विशेष :—रहीम ने भी इसी भाव को प्रकट किया है :—

माँगे घटत रहीम पद, कितौ करौ बढ़ि काम।
तीन पैग बसुधा करी, तऊ बावनै नाम ॥

अलंकार—अक्रमातिशयोक्ति परिकर।

(३५)

भले वचन मुख नीच के नाहिन होत प्रकास।
हींग लखुन में ना मिले घन कस्तूरी वास॥

शब्दार्थ :—लसुन = प्याज़। घन = कपूर।

विशेष :—बिहारी का भी इसी विषय पर एक दोहा है :—

संगति सुमति न पावही परे कुमति के धंध।
राखौ मेलि कपूर में हींग न होइ सुगंध॥

अलंकार—अवज्ञा, दीपक।

(३६)

जैसा थानक सेइये तैसा पूरे काम।
सिंह गुफा मुक्ता मिले स्यार खुरी खर चाम॥

शब्दार्थ :—थानक = स्थान। मुक्ता = मोती। स्यार = गीदड़। खुरी = गार। खर = गधा। चाम = चमड़ा।

भावार्थ :—जैसे स्थान को सेवन करें वैसे कार्य की सिद्धि होती है। जैसे शेर की गुफा में गजमोती मिलते हैं और गीदड़ की गार में गधे का चमड़ा।

विशेष :—शेर जब पंजों से हाथी को मारता है तो हाथी के मस्तक पर जो गजमोती होते हैं वे शेर के नाखूनों में फँसे रह जाते हैं और वह शेर के विश्राम के स्थानों पर पाये जाते हैं। सिंह के स्थान में मोतियों का प्राप्त होना।

वियोगी हरि जी ने भी लिखा है :—

छुद्र बात हू बृहत की है जग जानन-जोग।
वन सिंहन के खाँद हू खोजत-नापत लोग॥

अलंकार—सम।

(३७)

विपति बड़े ही सहि सकें इतर विपति तें दूर।
तारे न्यारे रहत हैं गहे राह शशि सूर॥

शब्दार्थ :—इतर = अन्य, बड़ों से भिन्न अर्थात् छोटे मोटे मनुष्य। न्यारे = पृथक्, अलग। गहे = प्राप्त करे। राह = रास्ता।

भावार्थ :—विपत्ति को बड़े मनुष्य ही सहन कर सकते हैं, दूसरे लोग तो विपत्तियों से दूर भागते फिरते हैं; राहु चन्द्रमा और सूर्य को ही ग्रसता है तारे तो अलग ही रहते हैं।

अलंकार—परिसंख्या, अर्थान्तरन्यास।

(३८)

विद्या गुरु की भक्ति सों कै कीन्हे अभ्यास।
भील द्रोण के बिन कहे सीख्यो बाण विलास॥

शब्दार्थ :—बाण विलास = बाणों के चलाने की विद्या।

विशेष :—एकलव्य भील ने एक समय द्रोणाचार्य, जो अर्जुन आदि के गुरु थे, से बाणविद्या सीखने के लिए प्रार्थना की। द्रोणाचार्य ने योग्य पात्र नहीं समझकर इन्कार कर दिया। परन्तु एकलव्य भील ने द्रोणाचार्य की मिट्टी की मूर्त्ति बनाकर उसमें गुरु की भक्ति धारण करके बाणविद्या का अभ्यास करना प्रारम्भ किया और थोड़े ही समय में बाणविद्या में प्रवीण हो गया।

अलंकार—विकल्प, विभावना।

(३९)

दुष्ट संग वसिये नहीं वस न कीजिये बात।
कदली बेर प्रसंग ते छिदै कंटकन पात॥

शब्दार्थ —बस = बसकर। कदली = केला। बेर = बेर का वृक्ष। प्रसंग = साथ। कंटकन = काँटे।

भावार्थ :—दुष्टों के समीप कभी नहीं रहना चाहिए। यदि रहना भी पड़े तो उनसे बातचीत नहीं करनी चाहिए। बेर के साथ से केले के पत्ते छिद जाते हैं।

विशेप : —बिहारी के दोहे में भी दुष्टों की संगति का प्रभाव दिखाया गया है : —

संगति-दोपु लगै सबनु कहै ते साँचे बैन।
कुटिल-बंक-भ्रुव-सँग भए कुटिल, बंक-गति नैन॥

(४०)

भूपति के सँग सुभटगण आपस में यह रीति।
वन अभीत ज्यों सिंह ते वन तै सिंह अभीत॥

शब्दार्थ : —भूपति = राजा। सुभट = वीर योधा। अभीत = निर्भय।

भावार्थ :—शूरवीर सिपाहियों का समूह राजा के साथ इस प्रकार रहता है जैसे शेर के निवास करने से वन सुरक्षित रहता है (क्योंकि भय के मारे कोई काटने नहीं आने पाता) और शेर वन से सुरक्षित रहता है (क्योंकि घने जङ्गल में शिकारियों द्वारा मारा नहीं जाता।)

(४१)

शूरवीर की संपदा कायर पै नहि जाय।
निहचै जानो सिंह भख स्यार न कबहूँ खाय॥

शब्दार्थ :—संपदा = संपत्ति। निहचै जानो = निश्चय से जानो। भख = भक्ष्य, भोजन। स्यार = गीदड़।

विशेष :—श्री वियोगी हरि जी ने इस भाव को ऐसे प्रकट किया है :—

ह्वैहै छार मलेच्छ! तैं छ्वै छत्रानी अंग।
रमिहै सिंह-किसोर ही सिंह-किसोरी अंग॥

(४२)

सब देखैं पै आपनो दोष न देखै कोइ।
करै उजेरो दीप पै तरे अँधेरो होय॥

शब्दार्थ :—उजेरो = उजाला।

विशेष :—विहारी ने भी इसी भाव का एक दोहा लिखा है :—

जगतु जनायौ जिहिं सकलु सो हरि जान्यौ नाँहि।
ज्यौं आँखिनु सबु देखियै आँखि न देखी जाँहि॥

निःसन्देह बिहारी की उड़ान बड़ी ऊँची है परन्तु भाव मे समता पाई जाती है।

(४३)

संत कष्ट सहि अति सुखी राखैं राखि समीप।
आप जरै तउ और को करै उजेरो दीप॥

शब्दार्थ :—संत........समीप = संत लोग स्वयं कष्ट सहन करके दूसरो को अपने समीप रखकर उनको बड़ा सुखी रखते हैं। आप जरै = स्वयं जल जाता है। करै उजेरो दीप = दिया प्रकाश करता है।

(४४)

कोऊ दूर न करि सकै बिधि के उलटे अंक।
उदधि पिता तउ चंद को धोय न सको कलंक॥

शब्दार्थ :—उलटे अक = दुर्भाग्य । उदधि = समुद्र ।

विशेष :—चन्द्रमा समुद्र से उत्पन्न हुआ था। चन्द्रमा के बीच में जो काला-सा बिन्दु दिखाई पड़ता है वह कवियों की कल्पना के अनुसार उसका कलंक है।

अलंकार—विशेषोक्ति, परिकर।

(४५)

सुन्दर थान न छोड़िये जौं लौं होय न और।
पिछलो पाँव उठाइये देखि धरनि को ठौर॥

शब्दार्थ :—थान = स्थान। धरनि = पृथ्वी।

सबल न पुष्ट शरीर को सबल तेजयुत होय।
लष्ट पुष्ट गज दुष्ट ज्यों अकुश के वश होय॥

शब्दार्थ :—सबल = बलवान्। पुष्ट = मोटा ताज़ा। तेजयुत = तेजयुक्त, तेजस्वी। लष्ट = हृष्ट। गज = हाथी। अकुश = हाथी के सिर पर मारने के लिए लोहे का एक बरछा।

अलंकार—विधि, अर्थान्तरन्यास।

(४७)

सुबुध बीच परि दुहुन को हरत कलह रस पूर।
करत देहरी दीप ज्यो घर आँगन तम दूर॥

शब्दार्थ :—सुबुध = बुद्धिमान्। दुहुन = दोनो। कलह = झगडा। रसपूर = प्रेमप्रवाह। देहरी दीप = दहलीज़ पर रखा हुआ दीपक। तम = अँधेरा।

भावार्थ :—बुद्धिमान् मनुष्य दो व्यक्तियों के झगड़े को उनके बीच में पड़कर प्रेम के प्रवाह से मिटा देता है। दहलीज़

विशेष :—श्री वियोगी हरि जी ने इस भाव को ऐसे प्रकट किया है :—

ह्वैहै छार मलेच्छ ! तैं छ्वै छत्रानी अंग।
रमिहै सिंह-किसोर ही सिंह-किसोरी अंग ॥

(४२)

सब देखैं पै आपनो दोष न देखै कोइ।
करै उजेरो दीप पै तरे अँधेरो होय ॥

शब्दार्थ :—उजेरो = उजाला।

विशेष :—विहारी ने भी इसी भाव का एक दोहा लिखा है :—

जगतु जनायौ जिहिं सकलु सो हरि जान्यौ नाँहि।
ज्यौं आँखिनु सबु देखियै आँखि न देखी जाँहि ॥

निःसन्देह बिहारी की उड़ान बड़ी ऊँची है परन्तु भाव मे समता पाई जाती है।

(४३)

संत कष्ट सहि अति सुखी राखै राखि समीप।
आप जरै तउ और को करै उजेरो दीप ॥

शब्दार्थ :—संत... .....समीप = संत लोग स्वयं कष्ट सहन करके दूसरों को अपने समीप रखकर उनको बड़ा सुखी रखते हैं। आप जरै = स्वयं जल जाता है। करै उजेरो दीप = दिया प्रकाश करता है।

(४४)

कोऊ दूर न करि सकै बिधि के उलटे अंक।
उदधि पिता तउ चंद को धोय न सको कलंक ॥

अलंकार—सुख और दुःख का क्रम से भारा और पतंग उदाहरण आये है इसलिए यथासंख्य।

(५१)

होय भले के सुत बुरो भलो बुरे के होय।
दीपक के काजल प्रकट कमल कीच ते जोय॥

शब्दार्थ :— सुत = पुत्र। कीच = कीचड। जोय = देख लो।

अलंकार— विषम प्रथम, यथासंख्य।

(५२)

सुख सज्जन के मिलन को दुर्जन मिले जनाय।
जानै ऊख मिठास को जब मुख नीम चबाय॥

शब्दार्थ :—जनाय = प्रतीत होता है। ऊख = गन्ना।

(५३)

मन देत न तन देत को मन मिलयो तन लाज।
ज्यो आँकुस को नटत को पै गिर सौं गजराज॥

शब्दार्थ :—तन = शरीर। को = कौन। मन......लाज = मन के मिल जाने पर तन मे कैसी लजा। आँकुस = अंकुश। नटत को = कौन नटता, अर्थात् आनाकानी करता है। गिर सौं = पहाड़ के समान।

भावार्थ :— मन दे देने पर शरीर को कौन नहीं दे देता? मन के मिल जाने पर शरीर को लज्जा कैसी? जैसे पहाड़ के समान हाथी को देकर छोटे से अंकुश के देने में कोई भी इनकार नहीं करता है।

विशेष :—रहीम ने भी कहा है :—

जेहि रहीम तन मन दियो किये हिये विच भौन।
तासो दुख सुख सहन की रही बात अब कौन॥

अलंकार—काकुवक्रोक्ति, उपमा।

(५४)

बसिये तहाँ विचारि कै जहाँ दुष्ट गति नाहिं।
होत न कबहूँ भँवर डर ज्यों चंपक वन माहिं॥

शब्दार्थ :—गति = पहुँच।

विशेष :-भौंर का चंपे से दूर रहना वियोगी हरि ने यों वर्णन किया है :—

चंचरीक चित्तौर में नहि पैहै रस जाल।
ह्वैहै चंपक माल लों तोहि पद्मिनी बाल॥

मतिराम ने भी एक दोहे में दिखाया है कि भौंरा चंपा के फूल पर नहीं जाता :—

सुबरन बरन सुबास जुत सरस दलनि सुकुमार।
ऐसे चपक कौ तजै तेहीं भौंर गँवार॥

(५५)

ठौर देखिकै हूजिये कुटिल सरल गति आप।
बाहर टेढ़ो फिरत है, बाँबी सूधो साँप॥

शब्दार्थ :—ठौर = स्थान। कुटिल = टेढ़ी। सरल = सीधी। बाँबी = मिट्टी की चट्टान जिसमें साँप रहा करते हैं। सूधो = सीधा।

(५६)

जामें विद्या नारदी बिगरन देर न लाग।
पैस चोट मुँसि स्वान को कहत धनी सों जाग॥

शब्दार्थ :—नारदी = नारद मुनि की (इधर की बातें उधर और उधर की इधर लगानी)। बिगरन = बिगडने मे। पैस = घुस जा। भुँसि = भौंक पड। स्वान = कुत्ता।

(५७)

मानधनी नर नीच पै जाँचन नाहीं जाय।
कबहुँ न माँगे स्यार पै बलि भूखो मृगराय॥

शब्दार्थ :—मानधनी = स्वत्वाभिमान को ही धन समझनेवाला मनुष्य। जाँचत = माँगने के लिए। स्यार = गीदड। बलि = देवता को चढ़ाया गया पदार्थ। मृगराय = शेर।

(५८)

ऊँचे पद को पाय लघु होय तुरत ही पात।
घन तैं गिर पर गिरत जल गिर हूँ तै ढरि जात॥

शब्दार्थ :—पद = स्थान। पाय = प्राप्त करके। लघु = छोटा पुरुष, नीच पुरुष। तुरत ही = शीघ्र ही। पात = गिरावट। घन = बादल। गिर = पर्वत। ढरि जात = ढल जाता है, बह जाता है।

(५९)

बड़े जु चाहे सो करै करन मतो उर धारि।
हरि गिरि तारे जलधि पर करी शिला ते नारि॥

शब्दार्थ : बड़े = महाप्रभावशाली पुरुष। करन......धारि = करने का इरादा हृदय में करके। हरि = श्री रामचन्द्र जी ने। जलधि = समुद्र। शिला = पत्थर।

भावार्थ :—बड़े आदमी कुछ करने का इरादा मन में करके जो कुछ भी करना चाहते हैं कर डालते हैं, जैसे राम-

चन्द्र जी ने पर्वतों को समुद्र के बीच में तार दिया और पत्थर की शिला से स्त्री बना दी।

विशेष :—लंका को पार करने के लिए रामचन्द्र जी ने पर्वतों को उखाड़कर समुद्र में तार दिया था और उस पर से सारी सेना लाँघ गई थी।

गौतम मुनि की धर्मपत्नी को यह शाप था कि वह पत्थर की शिला में परिणत हो जाय और रामचन्द्र जी के चरणकमलों के स्पर्श से फिर स्त्री बन जायगी। जब रामचन्द्र जी जंगल में भ्रमण करते थे तब उनका पैर उस शिला से लगा और गौतम की धर्मपत्नी अहिल्या प्रकट हो गई।

अलंकार—समुच्चय।

(६०)

भले बुरे निबहैं सबै महत पुरुष के संग।
चंद साँप जल अगिन ये रहत शम्भु के अंग॥

शब्दार्थ :—निबहैं = निभा लेते हैं। अगिन = अग्नि। शम्भु = शिव।—अंग = शरीर।

अलंकार—तुल्ययोगिता, सहोक्ति।

(६१)

बिना कहे हूँ सत पुरुष पर की पूरे आस।
कौन कहत है सूर्य को घर घर करत प्रकास॥

शब्दार्थ :—पर की = दूसरो की। पूरे = पूरी करता है।

अलंकार—वक्रोक्ति, विभावना।

(६२)

दूर कहा नियरे कहा होनहार सो होय।
धुर सींचे नालेर के फल में निकरै तोय ॥

शब्दार्थ :—नियरे = नज़दीक। नालेर = नारियल। निकरै तोय = पानी निकलता है।

(६३)

चिरजीवी तनहू तजै जाको जग जस वास।
फूल गये हूँ फूल की रहे तेल में वास ॥

शब्दार्थ :—चिरजीवी = बहुत समय तक जीनेवाला। जाको = जिसका। जस वास = यश विद्यमान होता है। वास = सुगन्ध।

भावार्थ :—जो वस्तु संसार में चिरस्थायी है उसके (स्थूल) शरीर के चले जाने पर भी उसका यश संसार में विद्यमान रहता है, जैसे फूल के नष्ट हो जाने पर भी उसकी सुगन्ध तेल में रह जाती है।

अलंकार—छेकानुप्रास।

(६४)

द्वै ही गति है बड़ेन की कुसुम मालती भाय।
कै सबके सिर पर रहैं कै बन माँहि बिलाय ॥

शब्दार्थ :—कुसुम......भाय = मालती के फूल की तरह। कै बन......विलाय = या वन के बीच में ही नष्ट हो जाते हैं।

अलंकार—उपमा, विकल्प।

(६५)

सब बिधि डरिये दुष्ट सो रहिये जतन समेत।
शम्भु सुधाकर शिर धर्‌यो विष विषधर के हेत ॥

शब्दार्थ :—सब विधि—हर प्रकार से। रहिये जतन समेत=सावधानतापूर्वक रहना चाहिए। विषधर=साँप। सुधाकर=चन्द्रमा। शंभु=महादेव।

अलंकार—हेतूत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास।

(६६)

ज्यों घर आवत शत्रु है सजन देत सुख चाहि।
ज्यों काटे तरु मूल कोउ छाँह करत रह ताहि॥

(६७)

प्रीति छुटे हू सजन के मन ते हेत छुटै न।
कमल नाल को तोरिए तदपि सूत टुटै न॥

शब्दार्थ :—सूत=तंतु, डोरा।

अलकार—विशेषोक्ति।

६८)

प्रभु को चिन्ता सबन की आपुन करिये नाहिं।
जनम अगाऊ भरत है दूध मात थन माँहि॥

शब्दार्थ :—अगाऊ=आगे, पहले।

अलंकार—अत्यन्तातिशयोक्ति।

(६९)

बिना तेज के पुरुष की अवसि अवज्ञा होय।
आगि बुझै ज्यों राख को आनि छुवै सब कोय॥

शब्दार्थ :—अवसि=अवश्य। अवज्ञा=निरादर। राख=भस्म। आनि=आकर।

(७०)

झूठे मंत्र जो लौं रहै करैं जु मिलि जन दोय।
गई छकानी बात तब जानि जात सब कोय॥

शब्दार्थ :—यंत्र = सलाह, षड्यंत्र। छकानी—छः कानो मे। जानि जात = मालूम कर लेते हैं।

विशेष :—यह दोहा पंचतन्त्र के पद्य के आधार पर है :—
"षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रः चतुष्कर्णो स्थिरो भवेत्।"

(७१)

एकै थल विश्राम को सो तासों छुटि जाय।
ज्यों पंछी सुजहाज को उड़ि उड़ि तहाँ बसाय॥

शब्दार्थ :—थल विश्राम = विश्राम का स्थान।

विशेष :—इसी भाव को सूरदास भक्ति की तरफ लगाकर कहते है :—

मेरो मनु अनत कहाँ सचु पावै।
जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी, पुनि जहाज पै आवै॥

वियोगी हरि ने इस भाव को ऐसे प्रकट किया है :—

ऐहै याही ठौर हम कहा फिरैं जग होत।
जैसे पंछी पोत कौ उड़ि आवतु पुनि पोत॥

(७२)

सेवक साहिब के बढ़ै बढ़ै बड़ाई ओज।
जेतो गहरो जल बढ़ै तेतो बढ़ै सरोज॥

शब्दार्थ :—साहिब = स्वामी। बढ़ै = उन्नति होने पर। बडाई ओज = तेज को बढ़ाकर। जेतो = जितना। सरोज = कमल।

अलंकार—दृष्टान्त, सम।

(७३)

मनभावन के मिलन को सुख को नाहिन छोर।
बोलि उठै नचि नचि उठै मोर सुनत घन घोर ॥

शब्दार्थ :—मनभावन=मन को अच्छा लगनेवाला। छोर= किनारा। घन=बादल। घोर=गर्जना के शब्द।

विशेष :—बिहारी ने इस भाव को इस प्रकार वर्णन किया है :—

नाचि अचानक ही उठै बिनु पावस बन मोर।
जानति हौं वंदित करी यह दिसि नंदकिसोर ॥

(७४)

उदर भरन के कारने प्राणी करत इलाज।
नाँचै बाँचै रन भिरै राँचै काज अकाज ॥

शब्दार्थ :—उदर भरन=पेट भरना। कारने=कारण से। नाँचै=नाचते है। बाँचै=कथा आदि बाँचते है। रन भिरै=युद्ध मे भिड़ते हैं। राँचै=रचते (करते) हैं। काज अकाज=कार्य-अकार्य।

विशेष :—रहीम भी पेट की समस्या पर कहते है—

रहिमन कहत सुपेट सो, क्यों न भयो तू पीठ।
रीते अनरीते करत भरे बिगारत दीठ ॥

अलंकार—कारक दीपक।

(७५)

एक एक को शत्रु है जो जाते बलवन्त।
जलहि अनल अनलहि पवन सरप जु पवन भखंत ॥

शब्दार्थ :—बलवन्त = बलवान्। अनल = अग्नि। सरप = साँप। भखंत = खाता है।

अलंकार—एकावली, अर्थान्तरन्यास।

देत न प्रभु कछु बिन दिये दिये देत यह बात।
ले तंदुल धन द्विजहिं मुनि त्रिपत किये भखि पात॥

शब्दार्थ :—दिये = देने पर। तंदुल = चावल। द्विज = ब्राह्मण सुदामा। त्रिपत = तृप्त, संतुष्ट। भखि = खाकर। पात = पत्ते।

विशेष :—एक समय जब द्रौपदी-सहित सब पांडव जंगल में थे तब कृष्णजी उनके पास गये। पांडव भोजन कर चुके थे परंतु द्रौपदीजी के पास साग के सूखे पत्ते मिले। उन्होंने वही खा लिये। इसके अनन्तर शिष्य-मण्डली सहित दुर्वासा मुनि उनके यहाँ उसी समय अतिथि आ गये, उनको श्रीकृष्णजी ने तृप्त कर दिया।

अलंकार—परिवृत्ति, आवृत्ति दीपक।

(७७)

काहू को हँसिये नहीं हँसी कलह को मूल।
हाँसी ही ते है भयो कुल कौरव निरमूल॥

शब्दार्थ :—कलह = झगड़ा। हाँसी = हँसी।

विशेष :—भरी सभा के बीच में भीमसेन की दुर्योधन ने और द्रौपदी की एक बार भानुमती ने हँसी की थी; जिससे क्रोधित होकर कौरवों का सत्यानाश करने के लिए भीमसेन ने प्रतिज्ञा कर ली थी।

अलंकार—लाटानुप्रास।

(७८)

दीन धनी आधीन है, शीश नवावत वाहि।
मान भंग की भूमि यह, पेट दिखावत ताहि॥

विशेष :—कवि रहीम दीनता को किसी और ही रङ्ग में दिखाते है :—

दिव्य दीनता के रसहिं का जाने जग अंधु।
भली विचारी दीनता दीनबंधु से बंधु॥

(७९)

मति फिरि जात विपत्ति में राव रंक इक रीत।
हेम हिरन पाछे गये राम गँवाई सीत॥

शब्दार्थ :—राव = राजा। रंक = ग़रीब। हेम = सोना। सीत = सीता।

विशेष :—किसी संस्कृत कवि ने भी कहा है :—

"विनाशकाले विपरीतबुद्धिः"।

रहीम ने भी कहा है :—

राम न जाते हरिन सँग सीय न रावन साथ।
जो रहीम भावी कतहुँ होति आपने हाथ॥

(८०)

प्यारी अनप्यारी लगै समय पाय सब बात।
धूप सुहावै सीत में सो ग्रीषम न सुहात॥

शब्दार्थ :—सीत = शीत-ऋतु।

बिहारी ने यही भाव यों प्रकट किया है :—

समै समै सुन्दर सबै रूप कुरूपु न कोइ।
मन की रुचि जेती जितै तित तेती रुचि होइ॥

(८१)

होत अधिक गुण निबल पै उपजत बैर निदान।
मृग मृगमद चमरी चमर लेत दुष्ट हत प्रान॥

शब्दार्थ :—उपजत = उत्पन्न होता है। निदान = कारण। मृगमद = कस्तूरी। चमरी = मृग-विशेष। चमर = चँवरी। हत प्रान = प्राणों को निकालकर।

(८२)

सरस्वति के भंडार की बड़ी अपूरब बात।
ज्यों खरचै त्यौं त्यौं बढ़ै बिन खरचै घट जात॥

शब्दार्थ :—सरस्वती = विद्या। अपूरब = अद्भुत।

अलंकार—विशेषोक्ति, बिभावना।

(८३)

चलै जु पंथ पिपीलिका समुद पार ह्वै जाय।
जो न चलै तो गरुड़ हू पैंडहु चलै न पाय॥

शब्दार्थ :—पिपीलिका = चींटी। समुद = समुद्र। गरुड़ = एक पक्षी जो बहुत दूर तक उडकर जा सकता है। पैंड = क़दम। चलै न पाय = चलने नहीं पाता।

(८४)

भले बुरे हू सों करत उपकारी उपकार।
तरवर छाया करत है नीच न ऊँच विचार॥

शब्दार्थ :—तरवर = तरुवर, वृक्ष ।

(८५)

चिदानन्द घट में बसै बूझत कहाँ निवास।
ज्यों मृगमद मृग नाभि में ढूँढ़त फिरत सुवास ॥

शब्दार्थ :—चिदानन्द = आनन्दस्वरूप परमात्मा । घट = घट घट मे, प्रत्येक स्थान पर ।

विशेष :—परमात्मा की इस सर्वव्यापकता को कबीर ने भी वर्णित किया है :—

ज्यों नैनन में पूतरी यों खालिक घट माँहिं ।
मूरख लोग न जानहीं बाहर ढूँढ़न जाहिं ॥

हरिण की कस्तूरी की अज्ञानता के भाव को वियोगी हरि जी यों लिखते हैं :—

जाहि भूलि भटकत फिरै ज्यों कुरंग बन भूरि ।
धन्य तिलक बोधित करी जन्म जात कस्तूरि ॥

अलंकार—दृष्टान्त, विशेषोक्ति ।

(८६)

जोति सरूपी ही सबै, सब शरीर में जोति ।
दीपक धारिये ताख में, सब घर आभा होति ॥

शब्दार्थ :—जोति = ज्योति । धारिए = रखिए । ताख = ताक, दरवाज़ा । आभा = प्रकाश, उजियाला ।

भावार्थ :—एक ज्योतिस्वरूप भगवान् की ज्योति ही सब प्राणियों के शरीरों में नज़र आती है, जैसे दीपक को यदि ताक पर रख दें तो घर के कोने कोने में उजाला हो जाता है ।

विशेष :—विहारी का भी ब्रह्म की सर्वव्यापकता के विषय का नीचे एक पद्य है :—

मैं समुझ्यौ निरधार यह जगु काँचो काँच सो।
एकै रूपु अपार प्रतिविम्बित लखियतु जहाँ॥

अलंकार—यमक, दृष्टान्त।

(८७)

वाँके नर के होत है वंदनीक सव लोय।
नमत दुतीया चन्द को पूरण चन्द न कोय॥

शब्दार्थ :—वाँके=भले, परोपकारी। वंदनीक=वन्दना करनेवाले। लोय=लोग।

भावार्थ :—भलेमानस परोपकारी मनुष्यों को सब लोग नमस्कार करते हैं। जैसे द्वितीया के चन्द्रमा को सब लोग नमस्कार करते हैं (क्योंकि अमावस्या तक चन्द्रमा अपनी कलाओं का अमृतओषधियों को प्रदान करता रहता है।) परन्तु पूर्णमासी के चन्द्रमा को कोई नमस्कार नहीं करता।

विशेष :—अमावस्या तक चन्द्रमा अपना अमृत ओषधियों को देता रहता है। (इसी लिए इसे ओषधिराज भी कहते हैं।) इन ओषधियों के रस को देवता पान करते हैं। इस प्रकार चन्द्रमा देवतो के हित के लिए दिन प्रतिदिन क्षीण होता रहता है। यही कारण है कि लोग द्वितीया के चन्द्रमा को बड़ी उत्सुकता से देखते है क्योंकि उसने अपनी सारी कलाओं को परोपकार में लगा दिया है और स्वयं क्षीण हो गया है।

(८८)

सुदृढ़ सूर ना चल चले कायर भगि रन घात।
देवल डिगे न पवन ते जैसे ध्वज फहरात॥

शब्दार्थ :—ना चल चले = चलायमान नहीं होता, भागता नहीं। रन घात = लड़ाई का घात। देवल = मंदिर। डिगे = गिरता। ध्वज = झंडी।

भावार्थ :—लड़ाई का घात देखकर मज़बूत शूरवीर चलायमान नहीं होते परन्तु कायर देखकर भाग जाते हैं, जैसे हवा के चलने से मंदिर तो गिरता नहीं परन्तु ऊपर की झंडी फरफराने लग पड़ती है।

विशेष :—वियोगी हरि ने भी शूरवीर और कायर का भेद प्रकट किया है :—

सहमि तमकि भाजत भजत, तुरत अधीर सुधीर।
पीत अरुण परिजात मुख लखि रण कादर बीर॥

(८९)

भले बुरे गुरु जन वचन लोपत कबहुँ न धीर।
राज काज को छाँड़िकै चले विपिन रघुबीर॥

शब्दार्थ :—न लोपत = उल्लंघन नही करते अर्थात् पालन करते हैं। धीर = धैर्यवान्। विपिन = जंगल। रघुबीर = रामचन्द्र।

(९०)

लोकन के अपवाद को डर करिये दिन रैन।
रघुपति सीता परिहरी सुनत रजक के बैन॥

शब्दार्थ := लोकन = लोग। अपवाद = निन्दा। दिन रैन = रात दिन। रजक = धोबी। बैन = वचन।

(९१)

देखत है जग जातु है तउ ममता सों मेल।
जानतु हौ या जगत में देखत भूलो खेल॥

शब्दार्थ :—तउ=तब भी।

भावार्थ :—संसार जा रहा है स्थिर नहीं, यह हम देख रहे हैं परन्तु फिर भो हम ममता से मेल करते हैं। मालूम होता है कि संसार इस विचित्र खेल को देखता हुआ भूल गया है।

(९२)

जहाँ सनेही तहँ रहत भ्रमत भ्रमत मन आय।
फिरत कटोरी मंत्र की चोरहि पै ठहराय॥

शब्दार्थ :—सनेही—स्नेही, प्रेमी।

भावार्थ :—मन घूम घूमकर वही आकर आ जाता है जहाँ अपना प्रेमी होता है, जैसे मन्त्र की कटोरी फिर फिर कर चोर ही पर जाकर ठहरती है।

विशेष :—जब किसी की चोरी होती है तो उन सव मनुष्यों को जिन पर शक होता है बुलाकर एक जगह बिठा दिया जाता है और बीच में एक कटोरी मत्र करके छोड़ दी जाती है। वह कटोरी उसी मनुष्य के पास जाकर ठहरती है जिसने चोरी की है।

विहारी ने भी इसी भाव को प्रकट किया है :—

सवही त्यौं समुहाति छिनु चलति सवनु दै पीठि।
वाहीं त्यौं ठहराति यह किवलनवी लौं दीठि॥

(९३)

श्रवन करी त्यों कीजिये मात पिता की सेव।
काँधे कावरि लै फिर्‌यो पूजे जैसे देव॥

शब्दार्थ :—कावरि=बहँगी।

(३५)

ता बिन सोह न काज सिधि जासो लागी बात ।
गुरु बिन होत न चौथ व्रत दूलह बिना बरात ॥

शब्दार्थ :—ता.......सिधि = उसके बिना कार्य की सिद्धि शोभा नहीं पाती । जा......बात = जिससे बात—प्रसग का सम्बन्ध हो । चौथ व्रत = गणेश चतुर्थी जो भाद्रपद के महीने मे होती है । दूलह ..... बरात = दूलह के बिना बरात का जलूस ।

अलंकार—विनोक्ति, लोकोक्ति ।

(८५)

विद्या लक्ष्मी पुरुष पै होय नहीं इक ठाँय ।
नाहिँ न दुख सुख सौत में पिय पै एक ही जाय ॥

शब्दार्थ :—ठाँय = स्थान । पिय = पति ।

अलंकार—तुल्ययोगिता ।

(९६)

उर उछाव हित धरम सों अशुभ कर्म की हानि ।
मन प्रसन्न रुचि अन्न सों ज्यों ज्वर छूटै जानि ॥

शब्दार्थ :—उछाव = उत्साह । अशुभ कर्म = बुरे कर्म ।

अलंकार—दृष्टान्त, समुच्चय ।

(९७)

कहा बड़े छोटे कहा जहँ हित तहँ चित लागि ।
हरि भोजन किय विदुर घर दुरजोधन को त्यागि ॥

शब्दार्थ :—हित = प्रेम। विदुर = एक निर्धन कौरव। हरि = श्रीकृष्ण जी।

भावार्थ :—बड़े और छोटे का कोई विचार नहीं, जहाँ प्रेम होता है वहीं मन लगता है। श्रीकृष्ण जी ने दुर्योधन जो बड़ा ऐश्वर्यशाली था उसे छोड़कर निर्धन विदुर के घर में भोजन किया था।

विशेष :—दीनों के प्रति भगवान् के पक्षपात को और कवियों ने भी कहा है। रहीम ने कहा है—

संतत संपति जानिके सबको सब कुछ देइ।
दीनबन्धु बिन दीन की को रहीम सुधि लेइ॥

बिहारी ने कहा है :—

जप माला छापा तिलक, सरै न एकौ काम।
मन काँचै नाचै वृथा, साँचै राँचै राम॥

तुलसीदास जी भी इस भाव को प्रकट करते हैं :—

ऐसे राम दीन हितकारी।
अधम जाति सबरी जोवित जड़ लोक वेद ते न्यारी।
जानि प्रीति दै दास कृपानिधि सोउ रघुनाथ उबारी॥

(९८)

पर जन सो सो मन करै परिहरि हरि सों प्रीत।
झूठै सों मानै हरष अहो जगत विपरीत॥

शब्दार्थ :—परजन = दूसरे लोग। परिहरि = छोड़कर। हरि = प्रभु। हरष = प्रसन्नता। विपरीत = उलटा।

भावार्थ :—प्रभु से प्रेम हटाकर दूसरे लोगों से दिल लगाता है, झूठे (मिथ्या) पदार्थों में प्रसन्नता (आनन्द) मानता है; बड़ा आश्चर्य है कि दुनिया कैसी उलटी है!

अलंकार—काव्यलिंग, यमक।

(९९)

यहै अबधि अविवेक की देखि कौन अनखाय।
काग कनक पिंजरा परे हंस अनादर भाय॥

शब्दार्थ :—अवधि = सीमा। अविवेक = अन्याय। अनखाय = क्रोधित हो। कनक = सोना। अनादर भाव = अनादर होता है।

(१००)

इक बिन माँगे ही लहै, माँगे एक लहै न।
घन जल सर सरिता भरै, चातक चोंच भरै न॥

शब्दार्थ :—लहै = प्राप्त करते हैं। सरिता = नदी।
अलंकार —अर्थान्तरन्यास, अप्रस्तुत प्रशंसा।

——

विक्रम के दोहे

(१)

कूल कलिंदी नीप तर सोहत अति अभिराम।
यह छबि मेरे मन बसो निसि दिन स्यामा स्याम ॥

शब्दार्थ :—कूल = किनारा। कलिदी = यमुना। नीप तर = कदम्ब वृक्ष। स्यामा = राधिका। स्याम = श्रीकृष्ण।

विशेष :—बिहारी ने भी अपने आराध्यदेव श्रीकृष्ण की स्तुति में एक ऐसा पद्य रखा है :—

सीस मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल।
यह बानिक मो मन बसौ सदा बिहारीलाल ॥

(२)

मन-मोहन मन मैं बसौ हृषीकेस हिय आहि।
कमलनैन नैननि बसौ मुरलीधर मुख माहिं ॥

शब्दार्थ :—हृषीकेस = श्रीकृष्ण। कमलनैन = कमल-नेत्रोवाले श्रीकृष्ण।

(३)

आधि अगाधा व्याधि हरि हरि-राधा जप सोइ।
साधि समाधा सिव कह्यौ बाधा-बाधक होइ ॥

शब्दार्थ :—आधि = दुःख। अगाधा = भारी। समाधा = समाधि। बाधाबाधक = दुःख-नाशक।

(४)

फिरि फिरि राधा-कृष्ण कहि फिरि फिरि ध्यान लगाइ।
फिरिहैा कुंजन बे-फिकिर कब बृंदावन जाइ॥

शब्दार्थ :—फिरि फिरि = बार बार।

(५)

मेरी करुना की अरज दीनबंधु सुनि कान।
ना तर करुनाकर तुम्है कैहै कहा जहान॥

शब्दार्थ :—करुना = करुणा, दीनता। सुनि-कान = कान से सुनिए; ध्यान से सुनिए। न तर = नहीं तो। करुनाकर = करुणा-सागर। कैहै = कहेगा। कहा = क्या। जहान = संसार।

अलंकार—परिकर।

(६)

नाउ जाजरी धार मै अधफर भौंर भुलान।
जदुपति पार लगाइए मोहिँ अपनो जन जान॥

शब्दार्थ :—नाउ = नौका। जाजरी = पुरानी (जाजर = जर्जर)। अधफर = आधे मैदान मे। भौंर = पानी का चक्कर। भुलान = भटकना। जदुपति = श्रीकृष्ण।

(७)

नदी-नीर तीछन बहै मेघ-वृष्टि अति घोर।
हरि बिनु को पारहि करै लै नैया बरजोर॥

शब्दार्थ :—नीर = जल। तीछन = तीक्ष्ण, तेज़। बरजोर = बलपूर्वक।

(८)

दीनबंधु ह्वै दीन की जौ तुम नहिँ सुध लेत।
नाम कियो इमि प्रगट किमि दीनबंधु केहि हेत ॥

शब्दार्थ :—इमि = इस प्रकार। केहि हेत = किस कारण।

विशेष :—इसी प्रकार का दोहा बिहारी का भी मिलता है :—

बंधु भए का दीन के, को तार्‌यो, रघुराइ।
तूठे तूठे फिरत हौ झूठे बिरद कहाइ ॥

(९)

करुना उर मैं धारि प्रभु बेग सुधारहु काज।
ना तर करुनाकर-बिरद छाँड़ि देहु ब्रजराज ॥

शब्दार्थ :—उर मैं = हृदय में। बेग = वेग से, शीघ्र। ना तर = नहीं तो। करुनाकर-बिरद = करुणा (दया) करने की उपाधि।

विशेष :—यही भाव विक्रम के ऊपर के दोहे में मिलता है। बिहारी आदि कवियों ने भी यह भाव वर्णन किया है।

(१०)

त्रन समान बज्रहि करत त्रन कहँ बज्र समान।
नंद-नंद जग-बंद प्रभु औढर-ढरन अमान ॥

शब्दार्थ :—त्रन = तिनका। नंद-नंद = श्रीकृष्ण। जगबंद = जगत् के वंदनीय। औढर = थोड़े में ही प्रसन्न होनेवाला। ढरन = रीझनेवाला अमान = अपार।

(११)

चंद सूर जाके हुकुम निस दिन आवहिं जाहिं।
श्रुति साके जाके कहत विक्रम ताके आहि॥

शब्दार्थ :—सूर = सूर्य। निस.....जाहिं = प्रतिदिन आते और जाते हैं। श्रुति = वेद। साके = शके, संवत्। जाके = जिसको। विक्रम ताके आहि = विक्रम उसकी शरण आया है।

(१२.)

कै तुव कान परी नहीं दीनवन्धु मम टेर।
चार जुगन सुनि चारि भुज लगी न एती देर॥

शब्दार्थ :—कै = क्या। तुव कान = तेरे कान में। मम टेर = मेरी पुकार। चार जुगन = सत्य, द्वापर, त्रेता और कलि ये चार युग। चारिभुज = चतुर्भुज; विष्णु भगवान्। एती = इतनी।

(१३)

निज सुभाय छोड़त नहीं कर देखौ हिय गौर।
अधम-उधारन नाम तुव हौं अधमन-सिरमौर॥

शब्दार्थ :—निज सुभाय = अपना स्वभाव। कर...गौर = हृदय में गौर करके देख लीजिए। अधम-उधारन = अधमों (पापियों) का उद्धार करनेवाले। हौं = मैं। अधमन-सिरमौर = पापियों में सबसे बड़ा पापी।

विशेष :—बिहारी का भी इसी प्रकार का एक दोहा है :—

मोहिं तुम्हैं बाढ़ी बहस को जीतै यदुराज।
अपनै अपनै विरद की दुहूँ निबाहन लाज॥

अलंकार—सम।

(१४)

दीनबंधु तुम दीन हौं यह नातो उर लेख।
ह्वै कृपाल सुन लीजिये बिक्रम बिनय बिशेष ॥

शब्दार्थ :—दीन हौं = मैं दीन हूँ। नातो = संबंध। उर-लेख = हृदय में धारण कीजिए। ह्वै कृपाल........कृपालु होकर। (कृपा करके) विक्रम की इस विशेष विनती को सुन लीजिए।

अलंकार—सम, बराबर के सबंध में।

(१५)

भू भारे तारे पतित गनि हारे स्रुति सेष।
हिय हारै कत जात अब तिहि गिनती मुहि लेख ॥

शब्दार्थ :—भू भारे = पृथ्वी के ऊपर जो भारस्वरूप थे, पापी। तारे = (उनका) उद्धार कर दिया। गनि हारे = गिनते-गिनते हार गये। स्रुति = वेद। सेष = (सहस्र मुँहोवाला) शेषनाग। हिय हारे = हृदय में हार खाते अर्थात् असमर्थता प्रकट करते। मुहि = मुझको।

अलंकार—अतिशयोक्ति, लाटानुप्रास।

(१६)

समुझि समुझि गुन आपुनै अपडर हिए सकात।
सुनि सुनि प्रभु तेरे गुननि तुव खातर कै जात ॥

शब्दार्थ :—समुझि...... आपुनै = अपने गुणों को समझकर (स्मरण कर)। अपडर = डर से। सकात = संकोच होता है। तुव = तेरी। खातर = आदर।

अलंकार—वीप्सा।

(१७)

सोहत जड़ित जराय के तरल तरौना कान।
मानहु परसत भानु जुग ससिमंडल को आन॥

शब्दार्थ :—सोहत......कान = रत्नों से जडा हुआ चंचल तरौना कान पर ऐसा शोभित होता है। परसत = स्पर्श करते हैं। भानु जुग = सूर्यों का जोडा। ससिमंडल = चंद्रमंडल = । आन = आकर।

विशेष :—तरौने की शोभा का वर्णन बिहारी भी बड़ी विचित्रता से करते हैं :—

लसतु सेत सारी ढप्यौ तरल तरयौना कान।
पर्यौ मनौ सुरसरि-सलिल रवि-प्रतिबिम्बु बिहान॥

अलंकार :—वस्तूत्प्रेक्षा।

(१८)

ऊधो कछु कहत न बनत कहत सु आवत लाज।
कै जानत मेरो हियौ कै जानै ब्रजराज॥

शब्दार्थ :—हियौ = हृदय को।

भावार्थ :— कृष्ण जी ने जब ऊधो को गोकुल भेजा था, तब राधा जी उनसे अपनी अवस्था सुना रही हैं—हे ऊधो! मुझसे कुछ कहा नहीं जाता, कहते हुए लज्जा लगती है। (इस बात को) या तो मेरा हृदय ही जानता है या श्रीकृष्ण जी जानते हैं।

अलंकार—आवृत्तिदीपक, विकल्प।

दै महँदी पग पर रही कहै चाहियत बात।
नहिँ राखै रँग जात है राखै सब रँग जात॥

शब्दार्थ :—पग=पाओं। नहिं राखै रँग जात है=महँदी को पाओं में न रखने से (महँदी का) सारा रंग जाता है। राखै सब रँग जात=(महँदी) रखने (लगाने) से (पाओं) सब रँगा जाता है।

विशेष :—बिहारी का इसी प्रसंग का एक दोहा है :—

कौहर सी एँड़ीन की लाली निरखि सुभाय।
पाइ महावर देइ को आप भई बे पाय॥

अलंकार—यमक।

(२०)

या ब्रज में सखि साँवरो जिन देखौ अँखियान।
लोकलाज नाखी न किन किन राखी कुलकान॥

शब्दार्थ :—साँवरो=साँवले रङ्ग का कृष्ण। नाखी न किन= किसने नहीं नष्ट की। किन राखी कुलकान=किसने कुल की मर्यादा की रत्ता की है, अर्थात् किसी ने भी नहीं।

विशेष :—विहारी ने कृष्ण जी की मुरली के बजने पर गोपियों की यही दशा वर्णन की है :—

किती न गोकुल कुलबधू, किहिं न काहि सिख दीन।
कौनै तजी न कुल-गली ह्वै मुरली-सुर-लीन॥

(२१)

झरत मंद मकरंद मद गुंजत मंजुल भृंग।
मनु बसंत महराज कौ माहत मत्त मतंग॥

शब्दार्थ :—झरत = झाडता है, चुवाता है। मकरंद = पुष्परस। मद = हाथी का मद। भृङ्ग = भौरे। गुंजत मंजुल = मधुर मधुर गूँज रहे हैं। मनु......मतंग = मानो वसन्तरूपी महाराज का पवनरूपी मतवाला हाथी।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, रूपक।

(२२)

झिर पिचकारी की मची आँधी उड़त गुलाल।
यह धूँधरि धँसि लीजिये पकरि छबीले लाल॥

शब्दार्थ :—झिर = कुएँ का स्रोत, अर्थात् धारा। आँधी...... गुलाल = गुलाल की आँधी उड रही है। धूँधरि = धुंध। धँसि = पड कर। छबीले लाल = सुन्दर कृष्ण को।

(२३)

लै लै मूठ गुलाल की घालत सबै समाज।
वह घालन औरै कछू ज्यौं घालत ब्रजराज॥

शब्दार्थ :—घालत सबै समाज = सारा समाज सब लोग डाल रहे हैं। घालन = डालना।

अलंकार—असंबंधातिशयोक्ति, लाटानुप्रास।

(२४)

हरित पीत अंकुर बसन नव लतानि के हार।
जनु अषाढ़ कीनी मही दुलही नयो सिँगार॥

शब्दार्थ :—हरित = हरी। पीत = पीली। अंकुर बसन = अंकुर-रूपी कपडे। नव...हार = नई लताओं के हार। अषाढ़ = आषाढ महीना। मही = पृथ्वी।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, रूपक।

(२५)

लहराती लतिकांत नित छहराती छितछोर।
छहराती कारी घटा रँगराती बनमोर॥

शब्दार्थ :—लहराती...नित = प्रतिदिन लताओं के अगले भाग लहराते रहते हैं। छितछोर = क्षिति (पृथ्वी) का किनारा। छहराती = छा जाती है। कारी घटा = काली घटायें। रँगराती बनमोर = जङ्गल के मोर आनन्द मनाते हैं।

अलंकार—स्वभावोक्ति, लाटानुप्रास।

(२६)

रहे घुमड़ि घन गगन घन भौ तमतोम बिसेष।
निसि बासर समुझ न परत प्रफुलित पंकज पेख॥

शब्दार्थ :—घन = बादल। घन भौ = घना हो गया। तमतोम = अन्धकार का समूह। निसि बासर = रात दिन। प्रफुलित = खिले हुए। पंकज = कमल। पेख = देखकर।

(२७)

मारतंड परचंड महँ फरकत जुग भुजदंड।
रघुनंदन दसकंध लखि टंकोर्‌यो कोदंड॥

शब्दार्थ :—मारतंड = सूर्य। परचंड = प्रचंड, तीव्र। फरकत जुग भुजदंड = दोनों भुजदंड फड़कते हैं। दसकंध = रावण। टंकोर्‌यो = टंकार की। कोदंड = धनुष।

अलंकार—वृत्त्यनुप्रास।

(२८)

हनूमान बहु गिरि लिए गरजत प्रभु को घेर।
लगी द्दगन मैं टकटकी रहे रिच्छ कपि हेर॥

शब्दार्थ :—द्दगन मैं = आँखों में। रिच्छ = भालू। कपि = बन्दर। हेर = तलाश।

(२९)

घाटौ अवनि अकास सर डाटौ दुज्जन जाल।
काटौ दस दसकंध के मुंड आज बिकराल॥

शब्दार्थ :—घाटौ = घटाओ। डाटौ = डाँटो, मारकर भगा दीजिए। दुज्जन जाल = दुर्जनो का समूह। दस दसकंध के मुंड = रावण के दस सिर। बिकराल = भयंकर।

(३०)

भूमि भूधराकार लखि उद्धत जुद्ध कराल।
कँपे रिच्छ लखि लच्छ कपि कुंभकरन जनु काल॥

शब्दार्थ :—भूधराकार = भूधर (पर्वत) के आकारवाली। लखि = देखकर। उद्धत = घमसान। कराल = भयंकर। कँपे = काँपे। लच्छ कपि = लाखों वानरो को। कुंभकरन जनु काल = मानो कुंभकरन की मृत्यु।

(३१)

रघुनन्दन दसकंध के काटे मुंड कराल।
छलक्यौ छतज कबंध ते कर्‌यो भूमि नभ लाल॥

शब्दार्थ :—छतज = क्षतज, ज़ख़्म से निकला हुआ रुधिर। कबंध = धड़। नभ = आकाश।

(६२)

रोदन करत सुलोचना पिय कौ मरन सुनाय।
रघुनंदन के दृग-कमल रहे आँसु उतराय॥

शब्दार्थ :—सुलोचना = रावण के पुत्र मेघनाद की स्त्री। पिय कौ मरन सुनाय = अपने पति की मृत्यु सुनाकर। दृग-कमल = कमलनेत्र। उतराय = उतर आये।

अलंकार—वाचकधर्मलुप्तोपमा।

(३३)

मघा मेघ बरसत विविध उमड़ि भरहिं दरियाउ।
चातक पातक आपनै कहत पियाउ पियाउ॥

शब्दार्थ :—मघा मेघ = सावन-भादों के बादल। दरियाउ = नदी आदि। पातक = पाप।

विशेष :—यही भाव विक्रम कवि ने एक दूसरे दोहे में भी कहा है :—

बरषत हर हरषित जगत पूरित अवनि अकास।
साँची प्रीति पपीहरै स्वात बुंद की आस॥

यही भाव तुलसीदास आदि कवियों ने भी वर्णन किया है :—

गंगा जमुना सुरसती सात सिंधु भरिपूरि।
तुलसी चातक के मते बिना स्वाति सब धूरि॥—तुलसी
एक भरोसो एक बल एक आस विश्वास।
स्वाति सलिल रघुनाथ बर चातक तुलसीदास॥—तुलसी

(३४)

कहा भयौ जौ लखि परत दिन दस कुसुमित नाहिँ ।
समुझि देखि मन मैं मधुप ए गुलाब वे आहिँ ॥

शब्दार्थ :—लखि परत = दिखाई पडता है। दिन...नाहिँ = दस दिन नहीं फूले हुआ। मधुप = भौंरा। ए...आहिँ = ये वही गुलाब हैं।

(३५)

कत गुमान गुड़हल करत समुझि देखि मति मंद।
छोड़ि नलिनि पीवत कहूँ अलिन मलिन मकरंद ॥

शब्दार्थ :—गुमान = घमण्ड। गुड़हल = जपा का फूल।

(३६)

लै कै दै राख्यौ तऊ गए पतालै स्यात।
बलि बावन लौं देखिए सब तै सब छल जात ॥

शब्दार्थ :—तऊ = तब भी। पतालै = पाताल को। बलि = बलि राजा विरेचन का पुत्र और भक्त प्रह्लाद का पौत्र था। बावन = वामन, विष्णु भगवान् का पाँचवाँ अवतार जो बलि को छलने के लिए हुआ था।

विशेष :—वामनावतार का कई कवियों ने वर्णन किया है। वामन ने पहले क़दम में पृथ्वी ढाँप ली, दूसरे में स्वर्ग और तीसरा पैर बलि के सिर पर रखकर उसे पाताल लोक में पहुँचा दिया।

माँगे घटत रहीम पद, कितो करो बढ़ि काम।
तीन पैग वसुधा करी, तऊ बामनै नाम ॥—रहीम

(३७)

नहिं जानत गुन जासु कौ सो तिहि निंदत जाइ ।
गजमुक्ता तजि कै अधम गुंजा लेत उठाइ ॥

शब्दार्थ :—निदत जाइ = निंदा किया जाता है। गजमुक्ता = गजमोती, हाथी के मस्तक में जो मोती पाया जाता है। गुंजा = घुँघची।

(३८)

केसर पूर कपूर सौ अगर धूर करपूर।
अति रस मोइ समोइ कै तजै प्याज नहिँ नूर ॥

शब्दार्थ :—पूर = पकवान में भरने की वस्तु। कपूर = कर्पूर। सौ = समान। अगर = (सं० अगुरु) एक सुगन्धित लकड़ी।

(३९)

पंकज के धोखे मधुप कियो केतकी संग।
अंध भयो कंटक विध्यौ भयो मनोरथ भंग ॥

शब्दार्थ :—पंकज = कमल। केतकी = एक फूल जिसमें काँटे होते हैं और पराग की धूल बहुत उड़ती है। कंटक = काँटा।

(४०)

परमारथ साधत सदा अवराधत गुन एक।
ते बिरले जग देखिये कहुँ हजार मै एक ॥

ब्दार्थ :—अवराधत = आराधना करते हैं।

(४१)

विटप तिहारे पुहुप हम सोभा देत बढ़ाइ।
और ठौर सीसन चढ़त पै रावरे कहाइ॥

शब्दार्थ :—विटप=वृक्ष। पुहुप=पुष्प, फूल। ठौर=जगह। सीसन=सिर पर। रावरे=आपके।

(४२)

सदा सत्यमय सत्यव्रत सत्य एक-पति इष्ट।
बिगत असूया सील सै ज्यों अनसूया सृष्ट॥

शब्दार्थ :—बिगत=विना। असूया=ईर्ष्या। अनसूया=यह अत्रि ऋषि की पतिव्रता स्त्री थी।

विशेष :—ब्रह्मा, विष्णु और शिव इसके सत्य की परीक्षा लेने आये परन्तु उसके तेज के आगे हार गये और उसने इन्हें बच्चे बनाकर पाला।

(४२)

श्रीफल दाख अँगूर अति नूत तूत फल भूर।
तजिकै सुक सेमर गयौ भई आस चकचूर॥

शब्दार्थ :—श्रीफल=नारियल। सुक=शुक, तोता। चकचूर=चकनाचूर।

(४४)

सोच मोच मृगलोचनी मिलि लीजै भरि अंक।
ब्रज मै पूरन चंद मैं है इक श्याम कलंक॥

शब्दार्थ :—सोच मोच=सोच को छोड दो। ब्रज मे...कलंक=ब्रज में एक श्याम कृष्णजी हैं और पूर्ण चन्द्रमा में एक काला कलंक है।

(४५)

मोर मुकुट कटि पीत पट उर बनमाल रसाल।
आवत गावत सखिन मग लखे आज नँदलाल॥

शब्दार्थ :—कटि=कमर। पीत पट=पीला दुपट्टा। उर=गले मे। रसाल=सुन्दर।

(४६)

बंसी धुनि स्रवनन सुनत तन मन अति अकुलाइ।
दौरी जावक दै दृगनि अंजन पगनि लगाइ॥

शब्दार्थ :—धुनि=ध्वनि। दौरी=दौडी। जावक=मेंहदी। पगनि=पैरों पर।

अलंकार—असंगति।

(४७)

मोर मुकुट कटि पीत-पट मुरली अधर बिराज।
पाइ दरस पायौ अली नैनन को फल आज॥

शब्दार्थ :—अली=सखी।

अलंकार—प्रहर्षण।

(४८)

जब जान्यौ या जीव कौ कहूँ नहीं बिस्राम।
सुन साके जुग चार के तातै ताके राम॥

शब्दार्थ :—बिश्राम=विश्राम। साके=यश।

(४९)

मन बच कर्म सुनाइ कर रघुपति पद अनुराग।
सो जानत सियराम हैं धन्य भरथ कौ भाग॥

शब्दार्थ :—बच = वचन।

(५०)

जो कछु पूरब कबिन तैं बरनी काव्य सुबानि।
से बिचार करु चारु मैं दोहा कहे बखानि॥

शब्दार्थ :—पूरब कबिन तैं = पहले कवियो से। बरनी = वर्णन किया गया है। चारु = सुन्दर।

राम के दोहे

(१)

श्रीस्यामा कों करत हैं रामसहाय प्रनाम।
जिन अहिपतिधर कों कियौ सरस निरंतर धाम॥

शब्दार्थ :—श्रीस्यामा = श्रीराधिका। अहिपतिधर = अहिपति (शेष-नाग) को धारण करनेवाला क्षीरसागर। सरस = जलयुक्त। निरंतर = स्थायी। धाम = स्थान।

(२)

अबलि अली लै बृजजली रली करीजै आय।
ते राधा माधव हरैं बाधा रामसहाय॥

शब्दार्थ :—अबलि = पंक्ति। अली = सखी, मित्र। रली = क्रीडा। माधव = श्रीकृष्ण।

(३)

मृदु धुनि करि मुरली पगी खगी रहै हरिगात।
या मुरली की है अली बनी भली बिधि बात॥

शब्दार्थ :—मृदु धुनि = कोमल शब्द। पगी = अभ्यस्त। खगी = गड़ गई। हरिगात = श्रीकृष्ण के शरीर में।

(४)

धन जोबन चय चातुरी सुंदरता मृदु बोल।
मनमोहन-नेहै बिना सब खेहै के मोल॥

शब्दार्थ :—चय = प्राचुर्य, अधिकता। मनमोहन-नेहै बिना = मन को मोहनेवाले श्रीकृष्ण के स्नेह बिना। खेहै = खेह, मिट्टी।

(५)

निपट कसनि कटि काछनी अंसनि लसनि सुवास।
मृदु बिहँसनि हेरनि हरी अरी करी दृग बास॥

शब्दार्थ :—निपट = निरा। कसनि = वह कपड़ा (वा रस्सी) जिससे कोई वस्तु कसी जाय। कटि-काछनी = कमर मे धोती। अंसनि = कंधो पर। लसनि = शोभायुक्त। सुवास = अच्छा वस्त्र। हेरनि = देखकर।

(६)

जुग जुग ये जोरी जियै यों दिल काहु दिया न।
ऐसी और तिया न है ऐसे और पिया न॥

शब्दार्थ :—जुग जुग = सदैव। जोरी = श्रीकृष्ण और राधिकाजी की जोडी। तिया = स्त्रियाँ। पिया = पति।

(७)

सिर धारी सारी हरी हरि गिरधारी होइ।
खरे धरे गिरिए कहाँ परे धरे गिरि दोइ॥

शब्दार्थ :—धारी = धारण करके। सारी = साड़ी। हरी = हरे रंग की। हरि = हरण करके; श्रीकृष्ण। खरे = खड़े। धरे = धारण करके। परे धरे = दूर रख देने पर। दोइ = दो।

भावार्थ :—श्रीकृष्ण ने राधिका जी की हरे रङ्ग की साड़ी लेकर सिर पर ले ली है। दूर से हरी साड़ी मानों हरे-भरे पर्वत के समान दिखाई देती है। इससे श्रीकृष्ण गिरधारी हो गये हैं। परन्तु साड़ी में पैर उलझ जाने से गिर पड़े हैं, साड़ी दूर हट गई है, अतएव हरा-भरा पर्वत और श्रीकृष्ण-रूपी श्यामवर्ण पर्वत दो भिन्न पर्वत जान पड़ते हैं। श्रीकृष्ण को साड़ी (वा ओढ़नी) लेने का ढँग नहीं आता था। इसी से उलझ पड़ना ठीक जँचता है। कवि ने कहा भी है :—

पहिरा री बे-हुनरी सुरँग चूनरी ल्याय।

(८)

चली कामिनी जामिनी भेटन नंदकिसोर।
झुके चकोर सुचाँदनी जानि दामिनी मोर॥

शब्दार्थ :—कामिनी = स्त्री। जामिनी = रात्रि। भेटन = मिलने को। नंदकिसोर = श्रीकृष्ण। दामिनि = बिजली।

विशेष :—यही भाव राजा रामसिंह ने इस प्रकार वर्णन किया है :—

बृंदाबन बिहरन फिरै राधा नंदकिसोर।
नीरद-दामिनि जानि सँग बोलें डोलें मोर॥

अलंकार—भ्रान्ति।

(९)

आज रहे बलबीर री बीर अबीर उड़ाय।
सोभा भाषि न जाय जो आँखिन देखि न जाय॥

शब्दार्थ :—बलबीर = बलराम के भाई श्रीकृष्ण। री बीर = सखी री। अबीर = गुलाल।

भावार्थ :—इस दोहे में कवि ने श्रीकृष्ण का गोपियों के साथ होली खेलने का भाव वर्णन किया है।

(१०)

नहिँ है बेनु बजावनो लेनु दही को दान।
यह है लाल मिटावनो राधा जी को मान॥

शब्दार्थ :—बेनु = बाँसुरी। लेनु = लेना। यह...मान = हे लाल! यह तो राधा जी का मान मिटाना है।

अलंकार—अपह्नुति।

(११)

आप भलो तौ जग भलो यह मसलो जुअ गोइ।
जौ हरि-हित करि चित गहो कहो कहा दुख होइ॥

शब्दार्थ :—मसलो = कहावत। जुअ = युक्त, उचित। गोइ = कहा गया है।

(१२)

चितवै चित आनंद भरि चारु चंद की ओर।
प्रीति करन की रीति कों सिखवैं चतुर चकोर॥

शब्दार्थ :—चितवैं = देखते हैं। चारु = सुन्दर, मनोहर। सिखवैं = सिखाते हैं।

भावार्थ :—हृदय में आनन्द भरकर चतुर चकोर मनोहर चन्द्रमा की ओर देखते हैं मानों प्रीति करने की रीति को सिखाते हैं।

विशेष :—चन्द्रमा से चकोर की प्रीतिका भाव कई कवियों ने वर्णन किया है।

अनुचित उचित रहीम लघु, करहिं बड़न के जोर।
ज्यों ससि के संयोग ते, पचवत आगि चकोर॥ रहीम
जानत सही चकोर कर ससि सौ प्रेम सलूक।
अमृत-सराबी के रसहि समुझहि कहा उलूक॥ रसनिधि

(१३)

सी सी कै उझकै झुकै चलत रुकै जदुराय।
नव मखमल के पावड़े हाय गड़े ये पाय॥

शब्दार्थ :—सी सी कै उझकै=सी सी करके चौक कर (अथवा उछलकर)। जदुराय = यदुपति, श्रीकृष्ण। पावडे—पायन्दाज़।

भावार्थ :—कवि ने नख-शिख का वर्णन करते हद कर दी है। इस दोहे के भावानुसार वह रमणी गुलाब की पत्तियों से भी मृदु होगी जिसके 'नव मखमल के पावड़े' पैरों में गड़े जाते हैं!

(१४)

यह अहनिसि विकसित रहै वह निसि मैं कुँभिलाय।
यातें तो मुख कमल लों कहो कहो किमि जाय॥

शब्दार्थ :—अहनिसि=दिन-रात। विकसित=खिला हुआ। कुँभिलाय=कुम्हला जाता है। कमल लो=कमल की तरह। किमि=कैसे।

अलंकार—व्यतिरेक।

(१५)

कौतुक जोहौ रास को अरु मोहौ बृजराज।
चलो भलो मसलो हलो एक पंथ द्वै काज॥

शब्दार्थ :—कौतुक = तमाशा। जोहौ = देखो। अरु... बृजराज = और श्रीकृष्ण को मोह लो। हलो = हल हो गया।

भावार्थ :—कवि ने इस दोहे में रास-क्रीड़ा की ओर संकेत किया है।

(१६)

मान विना सनमान नहिँ है यह लोक-प्रमान।
तेरे जान सयान है मेरे जान अयान॥

शब्दार्थ :—मान = गर्व; रूठने का भाव। लोक-प्रमान = जगत् में सबूत हुई। जान = समझ। अयान = अनजान।

(१७)

हरितन हरितन कत तकै हरि तन हरित निहारि।
चरित न तो तन लखि परै कित चित हित न बिसारि॥

शब्दार्थ :—हरितन हरितन = हरी हरी वस्तुओ को। कत = क्यो तकै = देखकर। हरि-तन हरित = श्रीकृष्ण का हरा (श्याम) शरीर। निहारि = देखकर। कित = कही। बिसारि = भुला देना।

भावार्थ :—श्रीकृष्ण के हरे (श्याम) शरीर को देखकर हरी हरी वस्तुओं को क्यों देखता है (वा देखती है)? उनके शरीर में चरित्र दिखाई नहीं पड़ता, कहीं (व्यर्थ में) अपना चित्त और हित (कल्याण) न भुला देना।

(१८)

सखि लखि नंदकिसोर सिर मोर मोर पर है न।
मनु सुमनस पति अकस सों सहस किए है नैन ॥

शब्दार्थ :—पर = पंख। सुमनसपति = देवताओं के स्वामी इन्द्र। अकस = डाह। सहस = सहस्र, हज़ार।

भावार्थ :—श्रीकृष्ण के सिर पर मोरों के पङ्ख देखकर, हे सखि! जान पड़ता है मानों देवराज इन्द्र ने ईर्ष्यावश हज़ार आँखें बना ली हैं। (मोर के पङ्खों पर जो चन्द्र-से चिह्न होते हैं, कवि उन्हें ही नेत्र मानकर ऐसी कल्पना कर रहा है।)

विशेष :—यह प्रसिद्ध है कि इन्द्र के सहस्र नेत्र हैं।

(१९)

यौं बाजूबँद मैं भली झबियनि झुमका झोंरि।
कनकलता मानहुँ फली मरकत मनि की घोंरि ॥

शब्दार्थ :—झबियनि = बाज़ूबन्द इत्यादि का कटोरीनुमा लटकन। झुमका = कान का एक आभूषण। कनकलता = सुवर्णलता। मरकत मनि = पन्ना। घोंरि = गुच्छा।

भावार्थ :—बाज़ूबन्द में जैसे झबिया और झुमके झूमते अच्छे लगते हैं वैसे स्वर्णलता में मरकत मनि के गुच्छे फल रहे हैं।

(२०)

गजराजनि के सीस चढ़ि निपट झुमाए बार।
ते अब तेरे गर परे झूमत मुकुताहार ॥

शब्दार्थ :—निपट = ख़ूब। गर = गले। परे = पडे।

(२१)

रिजु वृपभानुसुता लता तेजमान वृप भान।
तुमहि कहो कैसे सहो सुन्दर स्याम सुजान॥

शब्दार्थः—रिजु = ऋजु, सरल। वृपभानुसुता = वृपभानु की कन्या; जो वृपराशि के सूर्य में उत्पन्न हुई हो। वृपभान = वृप राशि का (प्रचण्ड) सूर्य। सुजान = प्रभु।

भावार्थ :—राधिका जी वृषभानु की सरल स्वभाव की कन्या हैं मानों राधिकारूपी लता हैं, श्रीकृष्ण वृप राशि के प्रचण्ड सूर्य हैं। इन दोनों का स्नेह गहरा हो सकता है क्योंकि राधिका जी सरल स्वभाव की हैं, वे श्रीकृष्ण का तेज (क्रोध) सहन कर लेंगी, इसलिए प्रेम अधिक रहेगा।

दूसरा भावार्थ यह होगा कि यदि श्रीकृष्ण क्रोध करेंगे तो राधिका भी कम नहीं रहेंगी, उनका भी सरल स्वभाव उग्र रूप धारण कर लेगा। वे भी तो वृषभानु की पुत्री हैं।

विशेष :—विहारी का दोहा इसका मूलस्थान है :—

चिरजीवौ जोरी, जुरै क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि ए वृषभानजा वे हलधर के बीर॥

(२२)

चतुराई धिक चपलई धिक धिक कारे काग।
तोहि अछत निधरक रहैं कूकत पिक कुल बाग॥

शब्दार्थ :—कारे = काले। अछत = सामने, रहते हुए। निधरक = निडर। पिक = कोयल।

(२३)

ऐसी ही सुकुमारता वा ती मैं जदुराय।
मिहँदी-रँग के भार सों पाय सकै न उठाय॥

शब्दार्थ :—सुकुमारता = नाजुकपन । ती = स्त्री । जदुराय = श्रीकृष्ण ।

विशेष :—यही भाव कवि ने एक और दोहे में कहा है :—

काहि छला पहिराव री हो वरजी बहु बार ।
जात सही नहिँ बावरी मिहँदी रँग को भार ॥

(२४)

झलके पग वनजात से झलके मग वन जात ।
अहह दई जलजात से नैननि तें जल जात ॥

शब्दार्थ :—वनजात = कमल । वन जात = वन जाते हुए । जलजात = जल से उत्पन्न हुआ कमल । जल जात = जल बहता है, अर्थात् आँसू बहते हैं ।

भावार्थ :—कमल-सदृश पैर चमकते हैं, वन जाते हुए मार्ग देदीप्यमान हो रहे हैं । अहह ! दो कमल नेत्रों से आँसू बह रहे हैं ।

(२५)

यह अचरज की वात सुनि को न अली पतियाइ ।
दिनहिँ दरसि तम संग लै चली चाँदनी जाइ ॥

शब्दार्थ :—अली = सखी । पतियाइ = विश्वास करती है ।

(२६)

हेरि हरी अचरज भरी कहति खरी करि सोर ।
दिनहिँ तरनिजा तीर री कूजित मुदित चकोर ॥

शब्दार्थ :—हेरि = देख करके। खरी = खड़ी। करि सोर = कोलाहल करके। तरनिजा = यमुना। कूजित = मधुर शब्द करना। मुदित = हर्षित।

भावार्थ :—दिन के समय श्रीकृष्ण को यमुना नदी के तीर पर देखकर कोई गोपी विस्मित हुई कहती है कि हे सखी! यमुना-तट पर चकोर ध्वनि कर रहे हैं अर्थात् राधिका जी भी वहाँ हैं, चकोर उन्हें चाँदनी समझकर प्रसन्न हो रहे हैं। श्रीकृष्ण की श्याम आभा पर राधिका के गौरवर्ण की कान्ति स्पष्ट मालूम देती है। चकोर उसे चाँदनी समझ रहा है।

(२७)

सखि हरि राधा संग दिन चले विपिन की ओर।
लखि अनंद सों सोर करि दौरे मोर चकोर॥

शब्दार्थ :—विपिन = वन। सोर = शोर।

भावार्थ :—बादलों को देखकर मोर प्रसन्न होते हैं और चाँदनी को देखकर चकोर। श्यामवर्ण श्रीकृष्ण को बादल समझकर मोर प्रसन्न होने लगे और गौरवर्ण राधा को चाँदनी जानकर चकोर हर्षित हो उठे।

विशेष :—यही भाव कवि ने एक और दोहे में वर्णन किया है।

चली कामिनी जामिनी भेटन नंदकिसोर।
झुके चकोर सु चाँदनी जानि दामिनी मोर॥

(२८)

मुख देखन कों पुर-बधू जुरि आईं नँदनंद।
सबकी अँखियाँ ह्वै गईं घूँघट खोलत बंद॥

शब्दार्थ :—पुर-वधू = गृह-वधू। नँदनंद = श्रीकृष्ण।

भावार्थ :—घर में ब्याहली बहू का मुख देखने के लिए स्त्रियाँ मिलकर आ गई हैं। बहू का घूँघट खोलते ही सबकी आँखें चुँधिया गई हैं। बहू के रूप-लावण्य के चमत्कार से सब की आँखें मुँद गई हैं।

विशेष :— कवि ने यहाँ बहू का रूप-लावण्य वर्णन न कर कालिदास के 'लब्धं नेत्रनिर्वाणम्' के समान एक-आध शब्द में ही सब कह दिया है।

(७९)

ज्यौं ज्यौ फूकै नव वधू पगी रसोई लागि।
त्यौं त्यौं धूमै दै अहो लगी तमासे आगि॥

शब्दार्थ : — नव वधू = ब्याहली बहू। पगी = दत्तचित्त। धूमै दै = धुआँ देती है। लगी तमासे आगि = आग में तमाशा लग गया।

भावार्थ :— ब्याहली बहू ज्यों ज्यों फूँक मारती हैं आग और और धुआँ देती है। इसका कारण यह है कि आग सोचती है कि यदि मैं जल जाऊँगी तो यह ब्याहली बहू अपना मुख दूर हटा लेगी, मुझे इसका दर्शन न होगा। अतएव आग और और धुआँ देती है।

कवि ने यहाँ सूक्ष्मता से यह भी दिखाया है कि ब्याहली बहू (प्रायः) रसोई के काम-काज में चतुर नहीं होती अथवा नया घर होने से अभी काम काज करने का ठीक अभ्यास नहीं होता और इसलिए काम ठीक नहीं होता। वह आग भी ठीक तरह नहीं जला पाती।

विशेष :—यह भाव बिहारी ने इस प्रकार कहा है :—

कन देबौ सौंप्यौ ससुर बहू थुरहथी जानि।
रूप-रहचटै लगि लग्यौ माँगन सबु जगु आनि॥

(३०)

तारे तरनि दुरे भए मुकुलित सरसिज दोइ।
सखि प्रभात तम-तोम मैं सोम सुहावन जोइ॥

शब्दार्थ :—तरनि = तरणि, सूर्य। मुकुलित = अधखिला। सरसिज = कमल। तम-तोम = अन्धकार का समूह अर्थात् घना अन्धकार। सोम = चन्द्रमा। जोइ = देखकर।

भावार्थ :—तारे और सूर्य के न होने पर दोनों कमल (रक्त कमल और श्वेत कमल) अधखिले हो रहे हैं। हे सखि! प्रभात के समय अंधकार-पुंज में देखने से चन्द्रमा सुहावना दिखाई देता है। श्वेत कमल चन्द्रोदय के साथ खिलता है और चन्द्रमा के अस्त होने पर बन्द हो जाता है। रक्तकमल सूर्योदय पर खिलता है और सूर्य के अस्त होने पर बन्द हो जाता है। प्रभात का समय दिन और रात्रि का संधिकाल है। अतएव दोनों कमल मुकुलित अवस्था में हैं।

(३१)

श्री राधा माधव हमैं निति राखो निज छाँह।
मेरो मन तुममैं वसो तुम मेरे मन माँह॥

शब्दार्थ :—निति = नित्य। निज छाँह = अपनी छाया में, अर्थात् अपने आश्रय में।

(३२)

ताको वा तरु के तरे सुचित नचत है मोर।
उतरि अपर द्विजगन मुदित ललित मचावत सोर॥

शब्दार्थ :—तरे = तले। सुचित = शान्त, निश्चिन्त। अपर = दूसरा। द्विजगन = पक्षीगण। मुदित = प्रसन्न हुए। ललित = मनोहर। सोर = शोर।

(३३)

किहि बिधि जाउँ बसंत मैं बिकसित बेलि निकुंज ।
मो मुख लखि चहुँ ओर तें झुकत झपत अलिपुंज ॥

शब्दार्थ :—बिधि = प्रकार । बेलि = मोंगरा फूल । निकुंज = लता-मण्डप । झपत = झपटते हैं । अलिपुंज = भौंरो का समूह ।

भावार्थ :—कवि लोगों का अनुमान है कि स्त्री के मुख से ऐसी सुगन्ध निकलती है कि भौंरे सुगन्धि की इच्छा से स्त्री के मुख पर बैठने लगते हैं ।

विशेष :—इसी भाव का प्रमाण शकुन्तला नाटक में मिलता है ।

पहले अंक में शकुन्तला जब चमेली की लता को सींचती है तो भौंरे उड़कर उसके मुख पर मँडराने लगते हैं, वह तंग होकर कहती है—"सखी ! मुझे इस धृष्ट भौंरे से बचाओ ।. . . ." तब राजा दुष्यन्त प्रकट होकर व्याकुलता का कारण पूछते हैं ।

(३४)

अँखिया अनमिष लेहु लखि चलन चहत घनस्याम ।
निति रहिहो घनस्यामहीं रसबस आठो जाम ॥

शब्दार्थ :—अनमिप = एकटक । रसबस = प्रेमवश । आठो जाम = आठो याम अर्थात् आठो पहर, निरन्तर ।

भावार्थ :—कोई भक्त श्रीकृष्ण के प्रति प्रार्थना करता है कि मैं तुम्हें एकटक देखता रहूँ, और सदैव तुम्हारे प्रेम के वश हुआ जीवन व्यतीत करूँ ।

(३५)

सुप्रसंसा या घात की करि जातीगन पास।
धनि जगती मैं चातकी इक स्वाती-घन आस॥

शब्दार्थ :—सुप्रसंसा = अधिक प्रशंसा। जगती मैं = जगत में। चातकी = पपीहे को। स्वाती-न आस = स्वाती नक्षत्र के बादल की आशा।

विशेष :—पपीहे का स्वाती नक्षत्र के बादलों के पानी का भाव कई कवियों ने वर्णन किया है :—

गंगा जमुना सुरसती सात सिंधु भरि पूरि।
तुलसी चातक के मते बिना स्वाति सब धूरि॥ तुलसी
चरग चंगु-गत चातकहिँ नेम प्रेम की पीर।
तुलसी पर-बस हाड़ पर परिहैं पुहुमी-नीर॥ तुलसी
बरसत हर हरषित जगत पूरित अवनि अकास।
साँची प्रीति पपीहरै स्वात बुंद की आस॥ विक्रम

(३६)

सारी सारी लै भजै चढ़े कदम की डाल।
अबला जन गड़ि जाति हैं अब लाजन गोपाल॥

शब्दार्थ :—सारी सारी = सारी साड़ियाँ। भजै = भाग गये। कदम = कदम एक वृक्ष का नाम है। अबला जन = स्त्रियाँ।

(३७)

आधे नख कर आँगुरी मेहँदी ललित बिराजि।
मन गुलाब की पाँखुरी बीरबधू रहि छाजि॥

शब्दार्थ :—ललित बिराजि = मनोहर लग रही है। बीरबधू = बीरबहूटी, लाल रङ्ग का बरसाती कीडा (इसे इन्द्रवधू भी कहते हैं)।

भावार्थ :—हाथ की अँगुलो के आधे नखून पर मेंहदी बड़ी शोभा दे रही है, मानों गुलाब की पांखुरी (रूपी अँगुली) पर इन्द्रवधू छा रही है।

(३८)

मोती झालर झलमलै झीने घूँघट माह।
मनु तारागन झलमलै सरवर अमल अथाह॥

शब्दार्थ :—झीने = पतले। मनु = मानो। झलमलै = चमक रहे हैं। सरवर = सरोवर। अमल = विमल, स्वच्छ।

भावार्थ :—स्त्री का मुख यदि चन्द्रमा कहा जाय तो झालर के मोती तारे कहे जा सकते हैं। पतले वस्त्र के घूँघट में से जैसे चन्द्रमुख चमकता है वैसे ही तारागणरूपी मोती चमकते हैं।

(३९)

पहिरा री बे-हूनरी सुरँग चूनरी ल्याय।
पहिरे सारी सौसनी कारी देह दिखाय॥

शब्दार्थ :—बे-हूनरी = बिना हुनर की, कला-हीन। सुरंग = अच्छा रंग। चूनरी = ओढनी। सारी सौसनी = लालिमामय कुछ नीले रंग की साडी। कारी = काली, श्यामवर्ण।

(४०)

अरुन अयन संगीत तन, वृंदावन हित जासु ।
नगधर कमला सकत वर विपुंगवासन आसु ॥

शब्दार्थ :—अरुन अयन = प्रेममार्ग (यदि पाठ अरुन नयन हो तो अर्थ होगा रक्ताक्ष) । नगधर = गिरिधारी, श्रीकृष्ण । कमला = लक्ष्मी । विपुगवासन = गरुड़ है वाहन जिनका, विष्णु भगवान्, श्रीकृष्ण । आसु = आशु, शीघ्र ।

भावार्थ :—जिसका (श्रीकृष्ण का) प्रेम-मार्ग है (अर्थात् जो प्रेम-पथ पर चलनेवाले हैं), जिसके शरीर में संगीत-कला है (अर्थात् संगीत में प्रवीण है), जिसमें वृन्दावन के लिए प्रेम है, जो गिरिधर हैं और गरुड़ जिनकी सवारी है, वे कमला (लक्ष्मी, शोभा वा सम्पत्ति) को वर (प्राप्त कर) सकते हैं ।

——

वियोगी हरि के दोहे

(१)

जयतु कंस-करि-केहरी ! मधु-रिपु ! केशी-काल ।
कालिय-मद-मर्द्दन ! हरे ! केशव ! कृष्ण कृपाल ॥

शब्दार्थ :—कंस-करि-केहरी = कंसरूपी हाथी के लिए सिंह । करि = हाथी । केहरि = सिंह । मधु-रिपु = मधु नामक दैत्य के शत्रु । केशी-काल = केशी नामक राक्षस को मारनेवाले । कालिय-मद-मर्द्दन = काली नामक सौ फनोंवाले सर्प के अभिमान को चकनाचूर करनेवाले । हरे = हे सब क्लेशों को हरनेवाले ।

विशेष :—कंस श्रीकृष्ण का मामा था । कंस ने अपने पिता उग्रसेन को मथुरा के सिंहासन से उतार दिया और स्वयं राज्य करने लगा । कंस की बहन देवकी यादव-कुमार वसुदेव से ब्याही गई थी । किसी ज्योतिषी ने कंस को बताया कि देवकी के पुत्र द्वारा उसकी मृत्यु होगी । अतएव कंस ने अपनी बहन देवकी और बहनोई वसुदेव दोनों को बंदीगृह मे डाल दिया । देवकी की जो भी सन्तान होती, कंस उसे मरवा डालता था । अन्त में श्रीकृष्ण का जन्म हुआ । इनका जन्म होते ही इन्हें नन्द नामक एक ग्रामीण मुखिया के घर भेज दिया गया और बदले में उसकी एक कन्या, जो उसी दिन उत्पन्न हुई थी, देवकी की गोद में रख दी गई । कंस ने इस कन्या को भी मारना चाहा किन्तु वह वैष्णवी रूप होकर आकाश को उड़ गई । इसके पश्चात् बड़ा होने पर श्रीकृष्ण ने कंस को मार दिया और अपने नाना उग्रसेन को बंदीगृह से मुक्त कर सिंहासन पर बैठाया ।

(२)

गिरिवरु जापै धारिकैं राखी ब्रज-जन-लाज।
ताही छिँगुनी कौ हमैं बल-बानो, यदुराज॥

शब्दार्थ :—गिरिवरु = पर्वत-श्रेष्ठ, गोवर्धन पर्वत। जापै = जिसके ऊपर। धारिकै = धारण करके। ताही = उसी। छिँगुनी = कनिष्ठा-गुलि, सबसे छोटी अँगुली। बल-बानो = बल दीजिए, बलवान् बनाइए।

भावार्थ :—जिस कनिष्ठांगुलि पर गोवर्धन पर्वत को उठाकर आपने ब्रजवासियों की लज्जा रख ली था, उसी छिँगुनी से हे यदुराज! हमें बल दीजिए।

अलंकार—"बल-बानो" यहाँ पर छेकानुप्रास।

(३)

फैंकि-फैंकि निज माँसु लिय संभरि-राय बचाय।
है तू शिवि तें घटि कहा सुभट संजमाराय॥

शब्दार्थ :—निज = अपना। संभरि-राय = पृथ्वीराज। शिवि = एक दानी राजा। सुभट = श्रेष्ठ वीर।

भावार्थ :—हे संयमराय, आप राजा शिवि से किसी प्रकार भी कम नहीं हैं; आपने अपना मांस गीधों को फेंक फेंककर पृथ्वीराज को बचा लिया था।

विशेष :—संयमराय महाराज पृथ्वीराज का एक शूर सामंत था। एक बार युद्धस्थल में महाराज पृथ्वीराज घोड़े पर से मूर्छित हो गिर पड़े। पास ही संयमराय भी आहत पड़ा था। यह समझकर कि महाराज मर गये है, गीध उन पर मँडराने लगे, दो एक ने तो चोंच भी चला दी। संयमराय से यह न देखा गया। उठने की चेष्टा की, पर उठ न सका। उधर ज़रा देर

ही करता है, तो गीध महाराज को खाये जाते हैं। सामन्त ने अपने शरीर से मांस काट-काटकर फेंकना शुरू किया। गीध को और क्या चाहिए। आनन्द से मांस खाने लगे। थोड़ी देर बाद महाराज होश में आये। आँख खोलते ही स्वामिभक्त संयमराय की यह दशा देखी, और गद्गद हो गये। किसी तरह उठकर गीधों को भगाने गये, पर सामन्त तो स्वर्ग को सिधार चुका था।

राजा शिवि बड़े दानी थे। उनकी परीक्षा करने के लिए इन्द्र ने बाज़ का और अग्नि ने एक कबूतर का रूप धारण किया। बाज़ से भागकर पक्षी राजा शिवि के पास आ गया। शिवि ने पक्षी को बचाना चाहा, परन्तु ऐसा करने पर बाज़ भूखा रह जाता था, वह भी उससे नहीं देखा जाता था। अतः उन्होंने अपना मांस काटकर बाज़ को दे दिया और पक्षी की रक्षा कर ली।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति, उदात्त, पुनरुक्तिप्रकाश।

(४)

फूँकन देतु न मृत सुवनु माँगतु तिय-तनु-चीर।
निरखि नृपति-सत-धर्म-धृति धृति हू भई अधीर॥

शब्दार्थ : सुवनु = सुत, पुत्र। तिय-तनु-चीर = पत्नी के शरीर का कपड़ा। निरखि = देखकर। नृपति-सत-धर्म-धृति = राजा की सत्य-धर्म में दृढ़ता। धृति = धैर्य। अधीर = चंचल।

भावार्थ :—जो राजा हरिश्चन्द्र स्त्री के कपड़े का टुकड़ा (श्मशान के कर के रूप में) माँग रहे हैं और अपने भी मरे हुए पुत्र को (बिना कर लिये) फूँकने नहीं देते हैं; उनकी

सत्य-धर्म में इस प्रकार की निष्ठा को देखकर स्वयं धैर्य भी चञ्चल हो गया।

अलंकार—अतिशयोक्ति, लाटानुप्रास।

(५)

चिंतामनि सौ लख कहा कोटिन कनक-पहाड़।
त्रिभुवन माहिँ सराहियै ऋषि दधीचि कौ हाड़॥

शब्दार्थ :—चिन्तामनि = एक मणि जिससे अभीष्ट पदार्थ मिलते हैं। सौ लख = करोड़। कनक-पहाड़ = सोने के पहाड़। त्रिभुवन = तीन लोक। सराहियै = प्रशंसा करनी चाहिए। हाड = हड्डी।

भावार्थ :—करोड़ चिन्तामणियों से क्या और करोड़ों सोने के पहाड़ों की भी कोई कीमत नहीं। तीनों लोकों के बीच में ऋषि दधीचि की हड्डियों को सराहना चाहिए।

ऋषि दधीचि के शरीर को गौओं ने अपनी जिह्वा से चाट चाटकर अस्थि-शेष कर दिया था।

अलंकार—व्यतिरेक, छेकानुप्रास।

(६)

औघट घाट कृपाण कौ समर-धार बिनु पार।
सन्मुख जे उतरे, तरे परे बिमुख मँझधार॥

शब्दार्थ :—औघट = ऊँचा। घाट = किनारा। कृपाण = तलवार। समर-धार = युद्धरूपी धारा। बिनु पार = जिसका कोई पार न हो। तरे = तरकर पार हो जाते हैं (मुक्त हो जाते हैं)।

भावार्थ :—तलवाररूपी नदी के बड़े बड़े ऊँचे किनारे हैं, युद्धरूपी धारा है जिसका कोई पार नहीं है। इसके सामने आकर जो उतर पड़ता है वह तो तर जाता है

(इसको लाँघकर पार हो जाता है) अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जो विमुख रहता है वह बीच में डूब जाता है।

अलंकार—एकदेशविवर्त्तिरूपक, यमक।

(७)

कोटिनु मधि कोऊ कहूँ कुल-दीपक इक होतु।
नेह-सहित निज सीसु दै दस दिसि करतु उदोतु॥

शब्दार्थ :—कोटिनु = करोडों के। मधि = मध्य में। कुल-दीपक = कुल को उज्ज्वल करनेवाला। नेह-सहित = प्रेम के साथ, तेल के साथ। उदोतु = उजाला।

भावार्थ :—करोड़ों (मनुष्यों) के बीच कोई एक ही कुल का दीपक होता है। जिस तरह दीपक तेल के साथ बत्ती को जलाकर चारों ओर उजाला करता है, उसी प्रकार यह भी प्रेम के साथ अपना सिर कटवाकर दसों दिसाओं में प्रख्याति कर देता है।

अलंकार—दीपक।

(८)

बोय सीसु सींच्यौ सदा हृदय-रक्त रण-खेत।
बीर-कृषक कीरति लही, करी मही जस-सेत॥

शब्दार्थ :—बोय = बीज बोकर। रण-खेत = युद्धरूपी खेती। बीर-कृषक = शूरवीररूपी किसान। मही = पृथ्वी। जस-सेत = यश से श्वेत करके।

भावार्थ :—शूरवीररूपी किसान ने सिररूपी बीज बोकर (कटवाकर) अपने ख़ूनरूपी पानी से युद्धरूपी खेती को सींचा और कीर्ति रूपी फ़सल को प्राप्त किया।

अलकार—हृदय-रक्त में पानी का आरोप और कीरति में फ़सल का आरोप अर्थ है। इसलिए एकदेशविवर्त्तिरूपक।

(९)

धन्य वनिक जो लै तुला बैठ्यो समर बजार।
अरि मुंडनु कौ धर्म सों कियौ वनिज व्यापार॥

शब्दार्थ :—समर = युद्ध।

भावार्थ :—वह (शूरवीर योधा) बनिया धन्य है जो तकड़ी लेकर युद्धरूपी बाज़ार में बैठकर शत्रुओं के शिरों का धर्म से व्यापार करता है।

अलंकार रूपक, न्यून से उत्तम का विनिमय परिवृत्ति।

(१०)

जटा मुकुट सिर चाप कर कलित कलेवर श्याम।
दसमुख करि केहरि रमौ दृगनि राम अभिराम॥

शब्दार्थ :—चाप कर = जिसके हाथ में चाप (धनुष) है। कलित = सुन्दर। कलेवर = शरीर। दसमुख = रावण। करि = हाथी। दस...... केहरि = रावणरूपी हाथी के लिए शेर। दृगनि = आँखो में।

भावार्थ :—हे रावणरूपी हाथी को मारनेवाले शेर, सुन्दर श्याम वर्ण शरीरवाले राम, आप जटा-मुकुट सिर पर धारण किये हुए और धनुष-बाण हाथ में लिये हुए मेरी आँखों आकर बस जाइए।

विशेष :—इसी प्रकार बिहारी ने भी लिखा है :—

सीस मुकुट, कटि काछनी कर मुरली उर माल।
या बानिक मो मन बसौ सदा बिहारीलाल॥

अलंकार—अश्लिष्ट परंपरित रूपक, अनुप्रास।

(११)

सिवा-सुजस-सरसिज-सुरस-मधुकर मत्त अनन्य।
रस-भूषण-भूषण, सुकवि-भूषण भूषण धन्य॥

शब्दार्थ :—सरसिज=कमल। सुरस=सुन्दर। रस=मकरंद। मधुकर=भौरा। मत्त=मतवाला। अनन्य=जिसके समान और कोई न हो। रस-भूषण=वीररस, रसों मे श्रेष्ठ। सुकवि-भूषण=कवियों में श्रेष्ठ। भूषण=शिवाजी का यश वर्णित करनेवाले प्रसिद्ध कवि भूषण।

भावार्थ :—भूषण कवि शिवाजी के यशरूपी कमल के मकरन्द (पान करनेवाले) मतवाले भौंरे हैं, वे रसों को भूषित करनेवाले अलङ्कारों को इस प्रकार अद्वितीय प्रयुक्त करते हैं जो इनकी योजना से अलंकार भी भूपित हो जायँ, सुकवियों के शिरोमणि हैं, भूषण कवि आप धन्य हैं।

अलङ्कार—पूर्वार्द्ध में परंपरित रूपक, उत्तरार्द्ध में लाटानुप्रास और यमक।

(१२)

ब्रज-जाटनु की रण कथा गाय सुजान-चरित्र।
भूषण लौं, सूदन! तुहूँ रसना कीन पवित्र॥

शब्दार्थ :—ब्रज-जाटनु=भरतपुर राज्य के वीर जाट जिन्होने दिल्ली को लूट लिया था। सुजान-चरित्र=अमुक नामवाला एक काव्य। रसना=जिह्वा। कीन=की।

विशेष :—सुजानचरित कविवर सूदन का रचा हुआ एक सुन्दर युद्ध-काव्य है। इसमें भरतपुर के सुप्रसिद्ध वीरवर महाराज सूरजमल उपनाम सुजानसिंह की युद्ध-गाथा ओजस्वी पद्यों में चित्रित की गई है।

(१३)

नहिँ पावसु, नहिँ घनघटा, भई कितै यह घोर।
करतु मत्त मृगराजु कहुँ, बिसें बीस बन रोर॥

शब्दार्थ :—पावसु = वर्षा-ऋतु। घनघटा = बादलों की घटा। घोर = भयंकर। मत्त मृगराजु = मतवाला शेर। बिसें बीस = निश्चय से। रोर = गर्जना।

भावार्थ :—न तो यह वर्षा है और न बादलों की घनघोर घटायें ही हैं, यह निश्चय से कहीं मतवाला शेर जङ्गल में गरज रहा है।

अलंकार—भ्रान्तापह्नुति, छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास।

(१४)

सुभट-नयन अंगारु, पै अचरजु एकु लखातु।
ज्यौं-ज्यौं परतु उमाह-जलु, त्यौं-त्यौं धँधकत जातु॥

शब्दार्थ :—सुभट........पै = वीरों के नेत्ररूपी अंगारों पर। अचरज = आश्चर्य। लखातु = दिखाई देता है। उमाह-जल = उत्साहरूपी पानी।

भावार्थ :—वीरों के नेत्ररूपी अंगारों में एक आश्चर्य दिखाई देता है कि जैसे जैसे उस पर उत्साहरूपी पानी पड़ता जाता है वैसे वे धधकते (लाल होते) जाते हैं।

अलंकार—पानी पड़ने से भी अंगारों का धधकते धधकते जाना विरोधाभास।

(१५)

पर्‌यौ समुझि नहिँ आजु लौं या अचरज कौ हेतु।
फर्‌यौ असित असि-लता तें सुजस-चारु-फल सेतु॥

शब्दार्थ :—परयौ समुझि नहिं = समझ में नहीं पड़ा। हेतु = कारण। फरयौ = फला। असित = काली। असिलता = तलवाररूपी लता। सुजस-चारु-फल = यशरूपी सुन्दर फल। सेतु = श्वेत, सफेद।

भावार्थ :—आज तक इस आश्चर्य का कारण समझ में नहीं आया कि काले रङ्ग की तलवाररूपी बेल में यशरूपी सुंदर सफ़ेद रङ्गवाला फल लगता है।

अलंकार—सांग रूपक से पुष्ट विषम, कारण के गुण से कार्य का गुण विरुद्ध।

(१६)

बिसिख भुजँग तुव फुङ्करत, उड़ि नभ-लगि मँडरात।
अरि-अपजसु, तेरो सुजस सँग लपेटि लै जात॥

शब्दार्थ :—बिसिख = बाण। भुजंग = साँप। तुव = तेरा। फुङ्करत = फुँकारा। नभ-लगि = आकाश तक। अरि = शत्रु। अपजस = बदनामी।

भावार्थ :—हे बाणरूपी साँप तेरा फुँकार (टंकार) उड़कर आकाश में मँडराता है और शत्रुओं की अकीर्त्ति तथा तेरी कीर्त्ति को साथ ही लपेटकर ले जाता है।

अलंकार—रूपक, समुच्चय।

(१७)

दै तौ मैया ! नैक तूँ मेलो तील-कमान।
चंदै भूमि गिलाउँगो मालि अचूक निछान॥

शब्दार्थ :—नैक = ज़रा। मेलो = मेरो। तील = तीर। चंदै = चन्द्रमा को। गिलाउँगो = गिराऊँगा। मालि = मारि, मारकर। निछान = निशान।

भावार्थ :—माता ! मेरा ज़रा तीर-कमान तो दे, मैं अचूक निशाना लगाकर चन्द्रमा को भूमि पर गिराऊँगा।

(१८)

चूर-चूर ह्वै अंत लौं रखियौ कुल की लाज।
जननि-दूध-पितु-खड्ग की अहै परिच्छा आज ॥

शब्दार्थ :— अंत लौं = अंत तक। जननि-दूध = माता का दूध। पितु-खड्ग = पिता की तलवार। परिच्छा = परीक्षा।

भावार्थ :—(हे बेटा) चूर चूर होकर भी कुल की शान को अन्त तक बनाये रखना। माता के दूध और पिता के खड्ग की आज ही परीक्षा है।

(१९)

त्रिभुवनेश्वरी ! त्रयनयनि ! जय त्रिशूलिनी अम्ब !
जन-त्रिताप-उपशमन में क्यों अब करति बिलम्ब ? ॥

शब्दार्थ :—त्रिभुवनेश्वरी = पाताल, भूतल और स्वर्ग इन तीनों भुवनों की स्वामिनी। त्रयनयनि = तीन नेत्रोंवाली। त्रिशूलिनी = त्रिशूल को धारण करनेवाली। अम्ब = माता। जन-त्रिताप = मनुष्यो के तीन प्रकार के दुःख—शारीरिक, मानसिक, आधिभौतिक। उपशमन में = दूर करने में। बिलम्ब = देरी। जन......बिलम्ब = मनुष्यों के शारीरिक, मानसिक और आधिभौतिक दुःखों को दूर करने में क्यों देर कर रही हो ?

अलंकार—परिकर, जो तीनों भुवनों की स्वामिनी, तीन नेत्रोंवाली और त्रिशूलवाली है, वह अवश्य ही त्रिताप को दूर करेगी। तीनों विशेषण साभिप्राय है।

(२०)

कलपि कलपि भूखन मरति तुव संतति अभिराम।
कहा जानि, धार्यौ जननि! 'अन्नपूरणा' नाम॥

शब्दार्थ: कलपि कलपि=कलप कलपकर। भूखन=भूख से। सतति=सन्तान। अन्नपूरणा=अन्न पूरण करनेवाली। भगवती चण्डी का नाम है।

भावार्थ:—आपकी कोमल सन्तान भूख से कलप-कलप कर मर रही है। हे माता! आपने क्या जानकर अपना नाम अन्नपूर्णा रक्खा है।

अलंकार—परिकरांकुर विशेष्य साभिप्राय।

(२१)

जौं न घालि घननाद कों यमपुर आजु पठाउँ।
हौ रामानुज मुख कबौ जियत न औध दिखाउँ॥

शब्दार्थ:—घालि=मारकर। घननाद=मेघनाद, रावण का पुत्र। रामानुज=रामचन्द्र जी का छोटा भाई। जियत=जीता हुआ। औध=अवध, रामचन्द्र जी की जन्मभूमि।

विशेष:—इस दोहे का आधार रामचरितमानस की चौपाई है।

जौं तेहि आज बधे बिनु आवउँ। तौ रघुपति-सेवक न कहावउँ॥
जौं सत संकर करहिं सहाई। तदपि हतउँ रघुबीर दुहाई॥

अलंकार—छेकानुप्रास।

(२२)

सरनि ढाँपि रवि-मंडलहिँ शोणित-सरित अन्हाय।
तेरी ही सौं तोहि हरि! रहिहौं अस्त्र गहाय॥

शब्दार्थ :—सरनि = बाणों से। ढाँपि = ढाँपकर। शोणित-सरित = लहू की नदी। अन्हाय = स्नान कर। सौं = शपथ है। गहाय = पकड़वाकर।

भावार्थ :—सूर्यमण्डल को बाणों से ढाँपकर और लहू की नदी में स्नान करके; हे कृष्ण, मैं आपकी शपथ लेकर कहता हूँ, आपसे शस्त्र पकड़वा छोड़ूँगा।

विशेष :—महाभारत के युद्ध के प्रारम्भ में श्रीकृष्ण जी ने प्रतिज्ञा की थी कि मै रहूँगा तो पांडवों की ओर परन्तु कौरवों पर शस्त्र नहीं उठाऊँगा। अतः भीष्म पितामह जी भी यह प्रतिज्ञा करते हैं कि मै भी आपसे शस्त्र पकड़वा छोड़ूँगा। इस प्रतिज्ञा को भक्त-वत्सल श्रीकृष्ण ने अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर पूरा किया था।

सूरदास का भी एक पद यही भाव वर्णन करता है :—

आज जौं हरिहिं न शस्त्र गहाऊँ।
तौ लाज गंगा जननी कों, सन्तनु-सुत न कहाऊँ॥
स्यंदन खंडि महारथ खंडौ, कपिधुज सहित डुलाऊँ।
इती न करौ सपथ मोंहि हरि की, छत्रिय-गतिहिँ न पाऊँ॥
पांडव-दल सनमुख ह्वै धाऊँ, शोणित-सरित बहाऊँ।
'सूरदास' रणभूमि विजय बिन जियत न पीठि-दिखाऊँ॥

अलंकार—स्वभावोक्ति।

(२३)

जौ न स्वामि निज उद्धरौं, बदल नाम लजाउँ।
पिऊँ न जल मेवाड़ कौ, जियत न मूँछ रखाउँ॥

शब्दार्थ :—उद्धरौं = उद्धार करूँ।

भावार्थ :—यदि मैं अपने स्वामी का उद्धार न करूँ तो अपने बादल नाम से शर्माऊँगा और मेवाड़ का पानी नहीं पीऊँगा तथा जीता हुआ कभी मूँछें नहीं रखूँगा।

विशेष :—बादशाह अलाउद्दीन के कारागार से अपने पति महाराज भीमसिंह को मुक्त कराने के लिए जब महारानी पद्मिनी अपने चचेरे भाई बादल की सहायता लेने को उसके पास गई थी तब उसने यह वीर-प्रतिज्ञा की थी। इस अवसर पर गोरा बादल दोनों भाइयों ने अपूर्व वीरता दिखाई थी। इस प्रतिज्ञा का वर्णन कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने भी किया है।

(२४)

महल नाहिँ पगु धारिहौं रहिहौं कुटी छवाय।
हौं प्रताप जौं लौं न ध्वज दई फेरि फहराय॥

शब्दार्थ :—पगु = पग, पाओं। जौ लौ न = जब तक न। ध्वज = पताका।

भावार्थ :—यदि मैंने फिर चित्तौर में अपनी पताका को न फहरा दिया तो मैं प्रताप होकर महलों मे पाँव नहीं रखूँगा, और कुटिया बनाकर उसी में रहूँगा।

अलंकार—छेकानुप्रास।

(२५)

रहियौं यौंही भेंटिबे, प्रिये! बढ़ायें बाहिँ।
भेदि भानु-मंडलहिँ मैं मिलिहौं सुर-पुर माहिँ॥

शब्दार्थ :—भेटिबे = मिलती रहना। भेदि = भेदन करके। भानुमंडल = सूर्यमण्डल। मिलिहौंमिलूँगा। सुर = पुर = स्व माहिँ = बीच।

भावार्थ :—युद्ध में जाते समय योद्धा अपनी स्त्री से विदा होते समय यह उक्ति कहता है। हे प्रिये! तुम मुझे इसी प्रकार मिलती रहना, मैं सूर्यमण्डल को भेदन करके तुझे स्वर्ग में आकर मिलूँगा।

विशेष :—नीतिशास्त्र का मत है कि दो ही पुरुष सूर्यमण्डल को भेदन कर सकते है, एक योगी और दूसरा युद्ध के मैदान में मरनेवाला शूरवीर।

अलंकार—पर्यायोक्ति।

(२६)

मनु मेरो चित्तौर पै लखि तेरो जल-थंभ।
भ्रमतु, हँसतु रोवतु अहो! सुभट-मौलि नृप कुंभ॥

शब्दार्थ :—जस-थंभ = यशःस्तम्भ। सुभट-मौलि = वीर-शिरोमणि।

विशेष :—महाराणा कुम्भा ने वि० सं० १४९७ में मालवे के सुल्तान महमूद शाह खिलजी को प्रथम बार परास्त कर उसकी यादगार में अपने इष्टदेव विष्णु के निमित्त यह कीर्तिस्तम्भ बनवाया था। इसकी प्रतिष्ठा वि० सं० १५०५ माघ बदि १० को हुई थी। यह भारतवर्ष में अपने ही ढंग का स्तम्भ है। वास्तव मे यह हिन्दुओं के पौराणिक देवताओं का एक अमूल्य कोश है।

(२७)

साँचेहुँ, हल्दीघाट! तुव छाती कुलिस-प्रचंड।
बिछुरत वीर प्रताप के भई न जो सतखंड॥

शब्दार्थ : साँचेहुं = सत्य ही। तुव = तेरी। कुलिस-प्रचंड = कुलिश (वज्र) की तरह मज़बूत। सतखंड = सौ टुकड़े।

विशेष :—हल्दीघाट मेवाड़ की एक सुप्रसिद्ध घाटी और युद्धस्थली जहाँ पर महाराणा प्रतापसिंह और बादशाह अकबर की सेना में युद्ध हुआ था।

अलंकार—गम्योत्प्रेक्षा।

(२८)

देखि ओरछा भौन ए विमल बेतवै-तीर।
सुनि हरदौल-कथा अजौं मनु ह्वै जातु अधीर॥

शब्दार्थ :—भौन = भवन।

भावार्थ :—बेतवा नदी के निर्मल तीर पर ओरछा के राजप्रासादों को देखकर और हरदौल की कथा को सुनकर मन आज भी अधीर हो जाता है।

विशेष :—बुन्देलखंड में ओरछा एक प्राचीन राज्य है। महाराज मधुकरशाह के पुत्र ओरछाधीश जुझारसिंह जी प्रायः दिल्ली में रहा करते थे। राज्य-प्रबन्ध का भार महाराज की अनुपस्थिति में उनके भाई कुमार हरदौल के सिर पर रहता था। अधिकारी लोग कुमार से ईर्ष्या करते थे और राज्य-प्रबन्ध अपने हाथ में लेना चाहते थे। राजकुमार पर राजमहिषी का पुत्र-स्नेह था। एक समय ईर्ष्यालु अधिकारियों ने राजा से चुग़ली लगाई कि महारानी और राजकुमार हरदौल का संबंध अनुचित है। महाराजा को विश्वास हो गया, उन्होंने महारानी को अपने हाथ से विष देकर कुमार को मारने के लिए आज्ञा दी। महारानी ने विष-मिश्रित पान देते समय रोते रोते कुमार को सब हाल सुनाया। कुमार ने कहा, यदि मेरे मरने से आपके सतीत्व की रक्षा और पूज्य भ्राता का संदेह दूर होता है तो मेरा मरण धन्य है। यह कहकर उन्होंने हँसते हँसते वह पान खा लिया और रामचन्द्र जी के मंदिर के सामने चौकी पर बैठकर और उनका ध्यान

कर प्राण विसर्जन किये। आज भी प्रत्येक माङ्गलिक अवसर पर विघ्न-निवारणार्थ पहले 'हरदौल लाला' के ही गीत गाये जाते हैं।

अलंकार—भाविक।

(२९)

झाँसी-दुर्गम-दुर्ग धनि, महिमा अमित अनूप।
जहाँ चचला अवतरी प्रकट चंडिका रूप॥

शब्दार्थ :—दुर्गम दुर्ग=कठिनता से पहुँचने के योग्य क़िला। महिमा=गौरव। अमित=जिसका कोई परिमाण न हो सके। चंचला=लक्ष्मी।

भावार्थ :—हे झाँसी के दुर्गम दुर्ग, तू धन्य है। तेरी महिमा अपरिमित और अनुपम है। इस स्थान पर रूप धारण करके चण्डी ने अवतार लिया था।

अलंकार—गम्योत्प्रेक्षा।

(६०)

यहिँ आल्हा-ऊदल लरे, भिरे मरद मलखान।
यही महोबा-भूमि है उन बीरनु की खान॥

शब्दार्थ :—लरे=लड़े।

विशेष :—आल्हा और ऊदल महोबे के अधीश चंदेल परमाल के बनाफर सामन्त थे। इन दोनों वीर भ्राताओं की विरुदावली के ओजस्वी गीत आज भी गाँव-गाँव में आल्हा के नाम से गाये जाते हैं। आल्हा-काव्य वास्तव में अपनी शैली का एकमात्र वीर-काव्य है।

मलखान आल्हा और ऊदल का चचेरा भाई, एक महान् साहसी और वीर योधा था। चंदेलों के इतिहास में यह भी

अपना विशेष स्थान रखता है। महोबे की लड़ाई में वीरवर मलखान काका कन्ह के हाथ से मारा गया था।

अलंकार—उदात्त।

(३१)

मरनु भलो निज धर्म मे भय-दायक पर धर्म।
पराधीन जानैं कहा यह निज-पद कौ मर्म॥

शब्दार्थ :—मर्म = तत्त्व।

भावार्थ :—अपने धर्म में मर जाना भी अच्छा है, परन्तु दूसरे का धर्म भय का कारण है (अविश्वसनीय है अत. कदापि ग्रहण करने के योग्य नहीं)। पराधीन मनुष्य इस अपने और पराये के रहस्य को क्या समझ सकता है ?

विशेष : —गीता में भी लिखा है—

स्वधर्मे निधनं श्रेय: परधर्मो भयावह:।

(३२)

निज भाषा, निज भाव, निज असन-बसन, निज चाल।
तजि परता, निजता गहूँ, यह लिखियौ, बिधि ! भाल॥

शब्दार्थ :—भाव = विचार। असन = भोजन। बसन = वस्त्र। परता—परायापन। निजता = स्वत्व। भाल = मस्तक।

भावार्थ :—अपनी भाषा, विचार, भोजन, वस्त्र और अपनी ही गति तथा परायेपन को छोड़कर मैं स्वत्व को प्राप्त करूँ; हे विधाता ! यही मेरे भाग्य में लिखना।

(३३)

जौ अधीन, तौ छाँड़ियै स्वर्गहुँ बिभव-बिलास।
जौ पै हम स्वाधीन, तौ भलौ नरक कौ बास॥

भावार्थ :—यदि मनुष्य पराधीन है, तो स्वर्ग का सुख भी छोड़ देना चाहिए। यदि मनुष्य स्वाधीन है, तो नरक का निवास भी अच्छा है। बिहारी ने भी इस भाव को प्रकट किया है—

जौ न जुगुति पिय-मिलन की, धूरि मुकुति-मुँह दीन।
जौ लहियै सँग सजन, तौ धरक नरक हूँ कीन॥

(३४)

धन्य, उत्तरा-उर-धनी ! धन्य, सुभद्रा-नंद!
धनि भारत-भट-अग्रनी ! पार्थ-पयोनिधि-चंद !॥

शब्दार्थ :—उत्तरा = अभिमन्यु की पत्नी, विराट की लड़की। उत्तरा-उर-धनी = उत्तरा का हृदय ही है धन जिसका। सुभद्रा-नंद = सुभद्रा (अर्जुन की पत्नी और श्रीकृष्ण जी की बहन) का पुत्र। भारत-भट-अग्रनी = भारत के योधाओं मे अग्रगण्य (सर्वश्रेष्ठ)। पार्थ-पयोनिधि-चंद = अर्जुनरूपी समुद्र का चन्द्रमा।

अलंकार—परंपरित रूपक।

(३५)

छाँड़ि, कहा कृष्णा-कचनु करषत माँड़ि उमाहु।
करिहै केस-कृसानु यह कौरव-कानन-दाहु॥

शब्दार्थ :—कहा = क्या। कृष्णा-कचनु = द्रौपदी के केस। करषत = खींचते हो। उमाहु = उत्साह। केस-कृसानु = केशरूपी अग्नि। कौरव-कानन = कौरवरूपी वन। दाहु = भस्म।

अलंकार—परंपरित रूपक। वृत्त्यनुप्रास।

(३६)

पितु-पति-कुल-कूलनु अरे ! दैहै बाढ़ि ढहाय।
कलह-धार संयोगिता-सरिता, संभरिराय ! ॥

शब्दार्थ :—पितु......कूलनु = पिता और पति के कुल हैं किनारे जिसके ऐसी। दैहै = देगी। ढहाय = गिरा देगी, बहा ले जायगी। कलह-धार = झगडारूपी धारा। सयोगिता-सरिता = संयोगितारूपी नदी। सभरिराय = पृथ्वीराज।

भावार्थ :—हे पृथ्वीराज ! यह संयोगितारूपी नदी की कलहरूपी धारा पिता और पति के कुलरूपी किनारों को बहा ले जायगी।

विशेष :—संयोगिता कन्नौज के राजा जयचंद की बहन थी जिसको पृथ्वीराज हरकर ले गया था। इसका बदला लेने के लिए जयचंद और पृथ्वीराज के बीच बड़ा भारी युद्ध हुआ, जिसमें हज़ारों राजपूतो के घराने नष्ट हो गये थे।

अलकार—समस्त वस्तुविषयक सावयव रूपक।

(३७)

दियौ बिदेसिनु अरपि धन-धरति, धरमु स्वच्छंद।
हमैं फूट अब देत तूँ, धिक, दानी जयचद ! ॥

शब्दार्थ :—बिदेसिनु = विदेशियो को। फूट = एक फल, वैमनस्य।

विशेष :—जयचंद ने पृथ्वीराज से बदला लेने के लिए ग़ज़नी से मुहम्मद ग़ोरी को पृथ्वीराज से युद्ध करने के लिए बुलाया था। मुहम्मद ग़ोरी और जयचंद दोनो ने मिलकर पृथ्वीराज को परास्त किया था। पृथ्वीराज क़ैद होकर ग़ज़नी ले जाया गया था।

अलंकार—व्याजस्तुति।

(३८)

चंचरीक ! चित्तौर में नहिँ पैहै रस-जाल।
ह्वैहै चंपक-माल-लौं तोहि पद्मिनी बाल ॥

शब्दार्थ :—चंचरीक = भौरा। पैहै = प्राप्त करेगा। रसजाल = पुष्प-रस की राशि। ह्वै है = होगी। चंपकमाल = चंपे के फूलों की माला। पद्मिनी = चित्तौर के राणा भीमसेन की पत्नी। बाल = बाला, स्त्री, और कमलिनी।

भावार्थ :—हे (अलाउद्दीन खि़लजी) भौंरे, तू इस चित्तौर में पुष्परस नहीं प्राप्त कर सकता। यह कमलिनी (पद्मिनी) तेरे लिए चम्पे के फूलों की माला की तरह होगी। 'चम्पे के फूलों के पास भौंरा नहीं जाता' ऐसी प्रसिद्धि है। जिस प्रकार भौंरा चम्पे के फूलों की माला के पास जा नहीं सकता उसी प्रकार अलाउद्दीन पद्मिनी के समीप नहीं जा सकता।

अलंकार—श्लिष्ट समासोक्ति।

(३९)

क्यों न धारियै सीस पै वह जौहर-व्रत-राख।
भव-तनु-भूषन भसम तें जो पुनीत गुन लाख॥

शब्दार्थ :—जौहर = एक व्रत, जिसको धारण करती हुई राजस्थान की क्षत्राणियाँ युद्ध में मरे हुए पतियों के शरीर के साथ या अकेली ही भस्म हो जाया करती थीं। व्रत-राख = व्रत की चिता की धूलि। भव-तनु-भूपन = महादेव के शरीर का अलंकार। भसम = राख। पुनीत = पवित्र।

अलंकार—व्यतिरेक।

(४०)

गरब करत कत बावरे उमँगि उच्च गिरि शृंग!।
जस-गौरव सिवराज कौ इत नभ ते हु उतङ्ग॥

शब्दार्थ :—बावरे = बावले, पगले। उमँगि = उछलकर।

गिरि=पर्वत। शृङ्ग=चोटी। जस-गौरव=यश की महिमा। नभ तें=आकाश से। उत्तङ्ग=ऊँची।

अलंकार—प्रतीप, उपमेय का उपमान से तिरस्कार।

(४१)

गहि कृपान कुस नृप छता दियौ तोहि नित दानु।
तऊ कृतघ्नी काल! तैं नहिँ मानत एहसानु॥

शब्दार्थ :—गहि=लेकर। कृपान-कुस=तलवाररूपी कुशा। छता=महाराज छत्रसाल जो कि चम्पतराय के लडके थे।

अलंकार—रूपक। व्याजस्तुति और की निन्दा से और की स्तुति का निकलना।

(४२)

जय अकाल-आनन्द-भव नव मकरन्द-मलिन्द।
शक्ति-साधना-सिद्धवर, असि-धर गुरु गोबिन्द॥

शब्दार्थ :—अकाल=भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों से रहित निराकार परब्रह्म परमात्मा। आनन्द-भव=आनन्द से उत्पन्न हुआ। नव मकरन्द=नया पुष्परस। मलिन्द=भौंरा। शक्ति=चण्डी। साधना=आराधना। सिद्धवर=सिद्ध करनेवालों में सर्वश्रेष्ठ। असिधर=तलवार धारण करनेवाले। ब्रह्मानन्द से उत्पन्न हुआ जो नया पुष्परस उसके (पीनेवाले) भौंरे, चण्डी की आराधना करने मे सिद्ध पुरुषो में श्रेष्ठ, तलवार को धारण करनेवाले गुरु गोविन्द आपकी जय हो।

विशेष :—गुरु गोविन्द सिक्खों के अन्तिम गुरु थे। इनके पिता का नाम तेग़बहादुर था जो कि नवें गुरु थे। इनके दो

लड़कों को सूबा सरहिन्द ने जीते दीवार में चुनवा दिया था।

अलंकार—रूपक, छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास।

(४३)

मति सोवै सुख-नींद यों, अब, सूवा सरहिन्द।
गाजत बंदा सीस पै पठयौ गुरु गोविन्द॥

शब्दार्थ :—पठयौ = भेजा है।

विशेष :—बंदा वैरागी गुरु गोविन्द का शिष्य था, इसको फ़र्रुख़सियर ने क़ैद कर लिया था और फिर बुरी तरह से मारा था।

(४४)

दलौ त्रिशूल त्रिशूल-धर ! त्रिभुवन-प्रलयं कारि।
हर त्र्यम्बक, त्रैलोक्य-पर त्रिदश-ईश त्रिपुरारि॥

शब्दार्थ :—दलौ = दलन करे, नष्ट करे। त्रिशूल = तीन प्रकार के शूल अर्थात् दुःख, शारीरिक, मानसिक, आधिभौतिक। त्रिभुवन-प्रलयंकारि = तीनों लोकों में प्रलय करनेवाले। हर = सासारिक कष्टो का हरण करनेवाले। त्र्यम्बक = तीन नेत्रोवाले। त्रैलोक्य-पर = तीनो लोको से परे। त्रिदश-ईश = त्रिदश-देवता; देवताओं के स्वामी। देवताओ को त्रिदश इसलिए कहते हैं कि देवताओ की जो स्वर्ग मे ही रहते तीन ही अवस्थाये होती है, बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था अर्थात् चौथी मरणावस्था जो मनुष्यों की होती है देवताओं की नही होती। इसी लिए इन्हे अमर भी कहते हैं। त्रिपुरारि = त्रिपुरासुर के शत्रु। त्रिशूल से आगे सारे पद महादेव जी के ही विशेषण हैं जिनसे तीन प्रकार के दुःखो को दूर करने के लिए प्रार्थना की जा रही है।

अलंकार—यमक, परिकर।

(४७)

तूँ अठौर राठौर-कुल, भयौ ठसक की ठौर।
दुर्जय दुर्गादास ! धनि धीर-बीर-सिर-मौर॥

शब्दार्थ :—अठौर = जिसे कोई स्थान नहीं था, अनाथ। राठौर-कुल = राठौर एक राजपूत जाति। ठसक = महत्त्व, गौरव। ठौर = शरण। दुर्जय = दुःख से जीते जाने के योग्य। धीर......मौर = धैर्यवान् शूरवीरों के शिरोमणि।

विशेष :—बादशाह औरङ्गज़ेब ने जब जोधपुर-नरेश महाराज यशवन्तसिंह को धोखे से मरवा डाला और उनकी रानी एवं नवजात बालक अजीतसिंह का कोई रक्षक न रहा, तब वीरवर दुर्गादास राठौर ने ही अपने बाहुबल से राठौरकुल की मान-मर्यादा अक्षुण्ण रक्खी थी।

अलंकार—यमक, अनुप्रास।

(४६)

वज्र-कवच-तनु, कंध धनु, कर-कृपान, कटि-ढाल।
गढ़मंडल-दुर्गावती रण-दुर्गा विकराल॥

शब्दार्थ :—वज्र-कवच = वज्र के समान दृढ़ कवच (बख़्तर)। तनु = शरीर। कंध धनु = कंधे पर धनु। कटि-ढाल = कमर में ढाल। युद्ध मे अपनी रक्षा के लिए बनी हुई लोहे की थाली के आकार की होती है। रण-दुर्गा = रणचण्डी। विकराल = भयंकर।

विशेष :—यह महोबे के चंदेल राजा की पुत्री और गढ़-मंडले के गोंड राजा दलपति की रानी थी। दलपति के स्वर्ग-वासी होते ही अकबर के हुक्म से उज्जैन के नवाब आसफ ने गढ़मंडले पर चढ़ाई कर दी। महारानी दुर्गावती ने बड़ी वीरता

से नवाब के साथ युद्ध किया और मुग़ल-सेना को परास्त कर भगा दिया।

अलंकार—स्वभावोक्ति, उपमा, यमक।

(४७)

जय झाँसी-गढ़ लच्छमी राजति त्रिबिध अनूप।
गति चपला, द्रुति चंद्रिका समर चंडिका-रूप॥

शब्दार्थ :—लच्छमी = लक्ष्मीबाई। राजति = शोभित होती है। गति = चाल। चपला = बिजली। द्रुति = द्युति, कान्ति। चन्द्रिका = चाँदनी। समर = युद्ध।

(४८)

बनत बहादुर बादिहीं दीन हीन मृग मारि।
क्यों न भरत लौं बाघ के गिनत दाँत मुख फारि॥

शब्दार्थ :—बादिहीं = व्यर्थ ही।

(४९)

बरसत विषम अँगार चहुँ, भयौ छार बर बाग।
कवि-कोकिल कुहकत तऊ नव दंपति-रति-राग॥

शब्दार्थ :—चहुँ = चारों ओर। छार = भस्म। बर = सुन्दर। दंपति = पति और पत्नी का जोड़ा। रति-राग = शृङ्गार-रस।

भावार्थ :—चारों ओर भयंकर अंगारे बरस रहे हैं, सुन्दर उद्यान जलकर भस्म हो गया है, तो भी कविरूपी कोयलें शृङ्गाररस के राग ही अलापती जाती हैं।

विशेष :—यह पद्य आधुनिक कविपतन को लक्ष्य करके कहा है। इन कवियों के ऊपर आक्षेप किया गया है, कि आज-कल

जब कि देश और जाति संकट में है, लोगों को खाने को रोटी नहीं मिलती ऐसी अवस्था में भी ये कवि लोग शृङ्गार-रस की कविता करते हैं। आजकल तो वीर, करुण, भक्ति आदि रसों की आवश्यकता है।

अलंकार—रूपक, विरोधाभास।

(५०)

धारत हे रणभूमि जे अरि-मुंडनु कौ हार।
तिनके कुल के करन अब सरस सुमन-सिंगार॥

शब्दार्थ :—अरि-मुंडनु कौ = शत्रुओं के सिरों का।

अलंकार—विषम।

(५१)

बृष-रबि-आतप-तपि कृषक मरत कलपि बिनु नीर।
इत लेपत तुम अरगजै, बिटपि उसीर-कुटीर॥

शब्दार्थ :—बृष-रबि = ज्येष्ठ महीने का सूर्य। आतप = धूप। कृषक = किसान। बिनु नीर = पानी के बिना। अरगजै = चंदन आदि ठंडी वस्तुओं का लेप। उसीर-कुटीर = खसखस की टट्टी जो गर्मी के दिनों मे दरवाजे पर लगाई जाती है ताकि लू न आये।

भावार्थ :—यह पद्य धनी और निर्धन का अन्तर दिखाता है।

अलंकार—विषम, अनुप्रास।

(५२)

अब कोयल ! वह ऋतु कहाँ कहँ कूजन तरु डार ?।
वह रसाल-रस-बौर कहँ, वह वन-विहँग विहार॥

शब्दार्थ :—रसाल-रस-बौर = आम के फूल।

विशेष :—बिहारी ने भी इस विषय पर एक पद्य लिखा है :—

जिन दिन देखे वे कुसुम गई सुबीति बहार।
अब अलि, रही गुलाब में अपत कटीली डार॥

(५३)

हैं ठाढ़े जा डार पै, काटत सोइ मतिमंद।
घर-घर भारत-भाग तेँ भरे भूरि जयचन्द॥

शब्दार्थ :—ठाढे = ठहरे। डार = डाल, शाखा। मतिमंद = मूर्ख। भूरि = बहुत।

विशेष :—राजा जयचन्द का राजा पृथ्वीराज चौहान से द्वेष था। उसे पराजित करने के लिए जयचन्द ने मुहम्मद ग़ोरी को भारत पर आक्रमण करने को बुलाया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने फूट पर अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं :—

जग में घर की फूट बुरी।
घर की फूटहिं सों विनसाई सुबरन-लंक पुरी॥
फूटहिं सों सब कौरव नासे भारत-युद्ध भयौ।
जाकौ घाटो या भारत में अब लौं नहिं पुजयौ॥
फूटहिं सों जयचन्द बुलायौ जवनन भारत-धाम।
जाको फल अब लौं भोगत सब आरज होइ गुलाम॥
फूटहिं सों नवनंद बिनासे, गयौ मगध कौ राज।
चन्द्रगुप्त को नासन चाह्यौ आपु नसे सहसाज॥
जो जग में धन मान और बल आपुन राखन होय।
तौ अपुने घर में भूले हूँ फूट करौ मति कोय॥

रहीम के भी एक-दो दोहे यही भाव दिखाते हैं :—

रहिमन अब वे बिरछ कहँ, जिनकी छाँह गँभीर।
बागन बिच बिच देखियत सेहुड़ कञ्ज करीर॥

अलंकार—काकुवक्रोक्ति, अन्योक्ति।

(५४)

भर्यौ बिभीषण-पुज ते यह भारत-ब्रह्माण्ड।
क्यो न होय गृह-भेद ते गृह-गृह लकाकाण्ड॥

शब्दार्थ :—बिभीषण-पुंज = विभीषण-सदृश चुग़लख़ोर और घर के भेदी मनुष्यों के समुदाय। भारत-ब्रह्माण्ड = भारतरूपी संसार। गृह-भेद = घर की फूट। लंकाकाण्ड = सर्वनाश।

भावार्थ :—अब यह भारतवर्ष विभीषण के समान चुग़ल-ख़ोर, घर के भेदी मनुष्यों से भर गया है इसलिए प्रत्येक घराने का सर्वनाश कैसे न हो। अर्थात् अश्वमेव होगा। यहाँ पर विभीषण शब्द गौणी लक्षणा से विभीषण-सदृश व्यक्ति का बोध कराता है, और लंकाकाण्ड शब्द शुद्धा लक्षणा के द्वारा सर्वनाश अर्थ को बताता है।

विशेष :—विभीषण ने अपने भाई रावण के साथ विरुद्ध होकर उसके शत्रु रामचन्द्र जी से मैत्री करके उनको सारा भेद बता दिया था। यद्यपि भगवान् की शरण में जाना और नास्तिकों के विरुद्ध काम करना कोई बुरा काम नहीं, तथापि राजनीति की दृष्टि से बड़ा भारी अपराध है।

अलंकार—रूपक, काव्यलिंग, वीप्सा, वक्रोक्ति।

(५५)

जहाँ पराजय ही बिजय मानत सभ्य-समाज।
कहाँ जानि आयौ तहाँ फेरि दसहरो आज॥

शब्दार्थ :—सभ्य-समाज = शिक्षित लोग ।

भावार्थ :—जहाँ अपनी हार को ही सभ्य पुरुष जीत मानते हैं, अर्थात् वे उसी से सन्तुष्ट हैं; वहाँ दसहरा किस लिए फिर आज आया। यह पद्य दसहरे के उपलक्ष्य में लिखा गया है।

विशेष :—दसहरे वाले दिन रामचन्द्र जी ने रावण को मारकर लङ्का पर विजय प्राप्त की थी। इन शरद्-ऋतु के दिनों राजा लोग चढ़ाई करना प्रारम्भ करते हैं, ऐसा नीतिकारों का भी मत है।

(५६)

नीलकंठ तन पेखि धरु नीलकंठ-सुभ ध्यान।
तुमहूँ परहित-हेतु यौ करौ हलाहल-पान ॥

शब्दार्थ :—नीलकंठ = एक पक्षी। तन = शरीर। पेख = देखकर। नीलकंठ = महादेव। तुमहूँ = तुमने ही। परहित-हेतु = परोपकार के लिए। हलाहल-पान = विष-पान।

भावार्थ :—नीलकंठ पक्षी के शरीर को देखकर महादेव जी का ध्यान धारण कर लो और यह सोचना चाहिए कि आप (महादेव जी) ने ही परोपकार के लिए ज़हर पी लिया था। इस प्रकार से दसहरे के दिन हमको शिक्षा लेनी चाहिए।

विशेष :—विजयदशमी के दिन नीलकंठ पक्षी का दर्शन शुभ माना जाता है।

जब क्षीरसागर को देवताओं ने मथन किया तो उससे विष और अमृत निकले। विष को महादेव जी पी गये थे ताकि बाक़ी सृष्टि को कष्ट न हो।

(५७)

अनासक्ति सों जोरिये कार्यकर्म-अनुरक्ति।
ज्यौं-त्यौं करि आराधिये, सुचित साधिये शक्ति॥

शब्दार्थ :—अनासक्ति = आसक्ति के बिना, फल की इच्छा के बिना। कार्यकर्म-अनुरक्ति = कार्य करने मे अनुराग। सुचित = शुद्ध मन से। शक्ति = आत्मबल।

भावार्थ :—फल की इच्छा छोडकर कर्म के करने में अनुराग करना चाहिए। अर्थात् निष्काम कर्म करना चाहिए, क्योंकि फल में करनेवाले का अधिकार नहीं है अत: उसकी इच्छा भी करनी चाहिए। इसी का नाम कर्मयोग है। जिस प्रकार भी हो सके शुद्ध मन से आत्मबल प्राप्त करना चाहिए। मन की शुद्धि इसलिए आवश्यक है कि मलिन मन मनुष्य को विषयवासनाओं की ओर खींचकर ले जाता है और मनुष्य आत्मिक बल नहीं प्राप्त कर सकता एवं निष्काम कर्म (कर्मयोग) के बिना मुक्त नहीं हो सकता। गीता में भी लिखा है—

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।

(५८)

रैयत-भार सँभारिहैं किमि सुकंध सुकुमार।
जीवनहू जब ह्वै रह्यौ नितहीं भार पहार॥

शब्दार्थ :—रैयत-भार = प्रजा का भार।

भावार्थ :—आजकल के अयोग नरेशों के प्रति कवि ने कहा है कि ये प्रजा के कार्य्यों का भार अपने कोमल कंधों

पर कैसे सहन कर सकते हैं जब कि अपना जीवन का ही पहार जितना भार हो रहा है।

विशेष :—बिहारी ने इसी भाव के सुन्दरता का वर्णन करते हुए यों प्रकट किया है :—

भूषण-भारु सँभारिहै क्यों इहिं तन सुकुमार।
सूधे पाइ न धर परैं सोभा ही कै भार॥

(५९)

त्याग त्याग कत बकत, रे, राग-त्याग अति दूर।
त्याग-त्यागही तैँ बँधे यती सती अति सूर॥

शब्दार्थ :—कत=क्यो, किसलिए।

भावार्थ :—त्याग त्याग क्या कहते फिरते हो? राग-ममत्व का त्याग करना बहुत कठिन है। त्याग के तन्तु से ही यती, सती और शूरवीर बँधे हुए हैं।

अलंकार—रूपक, तुल्ययोगिता।

(६०)

महा असिव हू सिव भयौ जाहि सीस पै धारि।
छुवत न तासु सहोदरनु, रे द्विज! कहा बिचारि॥

शब्दार्थ :—असिव=घृणित। सिव=कल्याणकारक। सहोदरनु=एक उदर से उत्पन्न हुए भाई को।

भावार्थ :—जिस (गङ्गा) को सिर पर धारण करने से बड़ा भारी घृणी (महादेव) भी शिव (कल्याणकारक) बन गया; अरे मूर्ख ब्राह्मण, उस (गङ्गा) के सहोदर भाइयों (अछूतों) को क्या जानकर नहीं छूते हो।

अलंकार—विरोधाभास, उदात्त।

(६१)

अहे गरब कत करत तूँ खरब पाइ अधिकार।
रहे न जग दस कंध से दिग बिजयी जुग चार॥

शब्दार्थ :—जुग चार = चार युग अर्थात् सदा।

अलंकार—अर्थापत्ति।

(६२)

दीन हीन जानै कहा सेइ राज-दरबार।
उनकैँ तौ आधार बस दीनबन्धु कौ द्वार॥

शब्दार्थ :—कहा = क्या। सेइ = सेवा।

भावार्थ :—दीन-हीन मनुष्य राजदरबार में सेवा करना क्या जान सकते हैं। उनका आश्रय तो केवल भगवान् जो कि दीनों के बन्धु हैं उन्हीं का दरवाज़ा है। अर्थात् राजदरबारों में चापलूस और मालदार व्यक्ति ही सम्मान पाते हैं, भूखे निर्धनों को भगवान् के द्वार का ही सहारा है।

अलंकार—परिकरांकुर।

(६३)

किये भीष्म पै अनल-लौं क्यों हरि, नैन रिसाय ? !
जानत हौं, ब्रज-दौ वहै दियौ दृगनि दरसाय॥

शब्दार्थ :—अनल-लौं = अग्नि की तरह। रिसाय = क्रोधित होकर। ब्रज-दौ = ब्रज की अग्नि। दृगनि = आँखो मे। दरसाय = दिखा।

भावार्थ :—हे भगवान् कृष्ण ! आपने भीष्म पितामह के ऊपर क्रोधित होकर, नेत्र अग्नि के समान लाल क्यों किये

हैं। जानता हूँ जो आपने ब्रज की आग पी ली थी उसी को आप आँखों में प्रकट करके दिखा रहे हैं।

विशेष :—बिहारी ने भी दावानल-पान के संबंध में एक दोहा लिखा है :—

सखि सोहति गोपाल के उर गुञ्जन की माल।
बाहर लसति मनौ पिये दावानल की ज्वाल॥

अलंकार—उत्तर।

(६५)

जाव भलैं कुरुराज पै धारि दूत-बरवेस।
जइयौ भूलि न कहुँ वहाँ केसव! द्रौपदी-केस॥

शब्दार्थ :—कुरुराज = दुर्योधन। बरवेस = सुन्दर वेप। केसव = श्रीकृष्ण भगवान्। द्रौपदी-केस = द्रौपदी के केश जिन्हें दु:शासन ने भरी सभा के बीच खींचा था।

विशेष :—पांडवों ने कौरवों के साथ संधि करने के लिए श्रीकृष्ण जी को भेजा था। संधि में पांडवो ने कौरवो से केवल पाँच गाँव रहने के लिए माँगे थे; क्योंकि श्रीकृष्ण जी यह कहते थे कि जहाँ तक हो सके युद्ध न हो। परन्तु अभिमानी दुर्योधन ने इस शर्त को भी स्वीकार नहीं किया था, और कहा था कि मैं बिना युद्ध के सुई की नोक जितनी भी भूमि नहीं दूँगा।

अलंकार—प्रथम आक्षेप।

(६५)

अथयौ सो अथयौ, न पुनि उनयौ भीषम-भानु।
आर्य-शक्ति-जय-पद्मिनी परी तबहिँ तेँ म्लान॥

शब्दार्थ :—अथयौ = अस्त हुआ। उनयौ = उदय हुआ। भीषम-भान = भीष्मपितामहरूपी सूर्य। आर्य......पद्मिनी = आर्यों की शक्ति की जयरूपी कमलिनी। तत्र......म्लान = उसी समय से मुरझाई हुई पड़ी है।

भावार्थ :—भीष्म पितामह रूपी सूर्य एक बार जो अस्त हुआ तो सदा के लिए ही अस्त हो गया, फिर उदय हुआ ही नहीं। (भीष्म पितामह जैसा शूरवीर फिर भारतवर्ष में कोई भी पैदा नहीं हुआ।) आर्यों की शक्ति की विजयरूपी कमलिनी उसी समय से मुरझाई हुई पड़ी है। अर्थात् आर्यों की शक्ति ने महाभारत के युद्ध के बाद कहीं भी विजय नहीं पाई इसका ह्रास ही होता गया।

अलङ्कार—रूपक, लाटानुप्रास।

(६६)

तजि देती जोपै कहूँ कोइल! काग-कुठौर।
तौ होती पच्छीनु मे साँचेहुँ तै सिर-मौर॥

शब्दार्थ :—जो पै = यदि। कुठौर = बुरा स्थान। सिर-मौर = श्रेष्ठ।

भावार्थ :—अरी कोयल! यदि दुष्ट कौए के स्थान को छोड़ देती तो पक्षियों में सचमुच ही तू सबसे श्रेष्ठ हो जाती। यह बात प्रसिद्ध है कि कोयल का बच्चा जब तक उड़ने के लिए समर्थ नहीं होता है तब तक कौए के घोंसले में पलता है। इसी लिए कवि का संकेत है कि कोयल का स्वर तो अच्छा है परन्तु कौए के संसर्ग से उसमें हीनता आ जाती है।

अलङ्कार—संभावना।

(६७)

उपमा भट-भुजदंड की तो संग जा दिन दीन।
तबही तें गज-सुण्ड! तैं थिरता पलहुँ गही न॥

शब्दार्थ :—भट = योधा।

भावार्थ :—हे गज की सूँड़! जब से तेरी उपमा वीर के बाहुदण्ड से दी उसी दिन से तूने एक क्षण भर भी स्थिरता नहीं प्राप्त की।

(६८)

पावस ही में धनुष अब, सरित-तीर ही तीर।
रोदन ही में लाल दृग नौरस ही में वीर॥

शब्दार्थ :—पावस = वर्षा ऋतु। सरित-तीर = नदी का किनारा। तीर = बाण। रोदन = रोना। लाल दृग = लाल आँख। नौरस = शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त। वीर = योधा।

भावार्थ :—आजकल 'धनुष' शब्द का अर्थ लोग इन्द्र-धनुष जो वर्षाऋतु में आकाश में पड़ता है, ही समझते है। तीर का अर्थ नदी का तीर ही समझते हैं। आज-कल लाल आँखें क्रोध में और जोश में नहीं बल्कि रोने में ही समझते हैं। वीर का अर्थ योधा नहीं परन्तु साहित्यशास्त्र के नौ-रसों में वीररस ही समझते हैं।

अलंकार—परिसंख्या।

(६९)

'सुई-नोक भरि भूमि हरि! नहिं दूँगो बिनु युद्ध।
धनि, दुर्योधन-पैज वह, यद्यपि धर्म-विरुद्ध॥

शब्दार्थ :—पैज = प्रतिज्ञा ।

(७०)

नभ जिमि बिन ससि सूर के, जिमि पंछी बिन पाँख ।
बिना जीव जिमि देह, तिमि बिना ओज यह आँख ॥

शब्दार्थ :—नभ = आकाश । ससि-सूर = चन्द्रमा और सूर्य । पाँख = पक्ष, पंख । ओज = तेज ।

भावार्थ :—आकाश जैसे सूर्य और चन्द्रमा के बिना (अच्छा नहीं लगता), पक्षी जैसे पङ्खों के बिना, शरीर जैसे बिना आत्मा के है वैसे ही ओज के बिना आँख भी अच्छी नहीं लगती ।

अलङ्कार—विनोक्ति से पुष्ट मालोपमा ।

(७१)

सहमि तमकि भाजत भजत, तुरत अधीर सुधीर ।
पीत अरुण परि जात मुख, लखि रण कादर बीर ॥

शब्दार्थ :—सहमि = घबडाकर । तमकि = जोश में आकर । भाजत = भाग जाता है । भजत = युद्ध में भाग लेता है । पीत = पीला । अरुण = लाल । परि जात मुख = मुख पड जाता है । कादर = कायर ।

भावार्थ :—रण को देखकर कायर घबड़ाकर भाग जाता है और वीर जोश में आकर युद्ध में धँस जाता है, कायर अधीर हो जाता है और वीर धैर्य धारण करता है; कायर का मुँह पीला पड़ जाता है और वीर का मुँह लाल हो जाता है ।

अलंकार—यथासंख्य ।

(७२)

कलपावत कब ते' हमैं धारि निठुरता-रूप।
करुणाघन! तुमहूँ भये आजु-कालि के भूप॥

शब्दार्थ :—करुणाघन = दया के बादल। भूप = राजा।

विशेष :—बिहारीलाल जी ने भी इसी प्रकार का एक दोहा लिखा है :—

थोरे ही गुन रीझते बिसराई वह बानि।
मनहुँ कान्ह तुमौ भये आज कालिह के दानि॥

(७३)

हृदय-जीत-सी जीत नहिँ, भरम-भीति-सी-भीति।
धर्म-नीति-सी नीति नहिँ, कृष्ण-प्रीति-सी-प्रीति॥

शब्दार्थ :—भरम = भ्रम, शंका।

भावार्थ :—हृदय की जीत के समान कोई जीत नहीं, जिसने मन को जीत लिया उसने सब कुछ ही जीत लिया। भ्रम के डर समान कोई डर नहीं, धर्मनीति के समान कोई नीति नहीं और भगवान् श्रीकृष्ण जी के प्रेम के समान और कोई प्रेम नहीं क्योंकि सांसारिक अनित्य पदार्थों का प्रेम भी अनित्य ही होता है।

अलंकार—धर्मोपमानलुप्तोपमा माला।

(७४)

'आये रण में जूझिकै' लला लाड़िले काम।'
सुनि, छाती फूली, फटी, गई जननि सुर-धाम॥

शब्दार्थ :—जूझिकै = युद्ध में प्राण देकर।

भावार्थ :—(वीर) माता को यह सुनकर, कि उसके सुन्दर लाड़ले लड़के युद्ध करके रण में काम आये (अर्थात् लड़ते लड़ते मारे गये।), (हर्ष से) छाती फूलकर फट गई और वीर माता भी स्वर्ग को सिधार गई।

अलंकार—द्वितीय पर्याय, अतिशयोक्ति।

(७५)

क्षात्र धर्म, यश कौमुदी, कृष्ण-रूप-रुचि-राग।
होउ हरे! संगमु सदा यहै सुहाग-प्रयाग॥

शब्दार्थ :—क्षात्र धर्म = क्षत्रियधर्म। कौमुदी = चाँदनी। कृष्ण... राग = कृष्ण भगवान् जी के रूप में प्रेम। सुहाग = सौभाग्य। प्रयाग = सगम। * प्रयागराज जहाँ गङ्गा और जमुना दोनों पवित्र नदियाँ मिलती है। प्रयागराज भारतवर्ष के सारे तीर्थों का राजा माना गया है।

भावार्थ :—हे भगवान्, (भारतवर्ष में) क्षत्रिय धर्म, यश की चाँदनी और कृष्ण भगवान् की भक्ति इन तीनों का संगम ही सदा सौभाग्यशाली प्रयागराज तीर्थ बने।

अलंकार—पर्याय, वृत्त्यनुप्रास।

———

प्रतीप-अनुक्रमणिका—प्रथम भाग

(कवि का संक्षिप्त नाम और दोहा नं० दिया गया है)

प्रतीप-अनुक्रमणिका—प्रथम भाग

प्रतीप-अनुक्रमणिका—द्वितीय भाग

(कवि का संक्षिप्त नाम और दोहा नं० दिया गया है)

य

र

ल

——